शिव-सूत्र

प्रवचन-क्रम

1. जीवन-सत्य की खोज की दिशा..2
2. जीवन-जागृति के साधना-सूत्र...23
3. योग के सूत्रः विस्मय, वितर्क, विवेक...44
4. चित्त के अतिक्रमण के उपाय..65
5. संसार के सम्मोहन और सत्य का आलोक..86
6. दृष्टि ही सृष्टि है..103
7. ध्यान अर्थात चिदात्म सरोवर में स्नान..123
8. जिन जागा तिन मानिक पाइया...142
9. साधो, सहज समाधि भली!..158 10...साक्षित्व ही शिवत्व है 176

शिव-सूत्र
पहला प्रवचन

जीवन-सत्य की खोज की दिशा

ओम नमः श्रीशंभवे स्वात्मानन्दप्रकाशवपुषे।
अथ
शिव-सूत्रः
चैतन्यमात्मा।
ज्ञानं बंधः।
योनिवर्गः कलाशरीरम्।
उद्यमो भैरवः।
शक्तिचक्रसंधाने विश्वसंहारः।

ओम स्वप्रकाश आनंद-स्वरूप भगवान शिव को नमन।
(अब) शिव-सूत्र (प्रारंभ)
चैतन्य आत्मा है।
ज्ञान बंध है।
योनिवर्ग और कला शरीर है।
उद्यम ही भैरव है।
शक्तिचक्र के संधान से विश्व का संहार हो जाता है।

जीवन-सत्य की खोज दो मार्गों से हो सकती है।
एक पुरुष का मार्ग है--आक्रमण का, हिंसा का, छीन-झपट का। एक स्त्री का मार्ग है--समर्पण का, प्रतिक्रमण का।
विज्ञान पुरुष का मार्ग है; विज्ञान आक्रमण है। धर्म स्त्री का मार्ग है; धर्म नमन है।
इसे बहुत ठीक से समझ लें।
इसलिए पूरब के सभी शास्त्र परमात्मा को नमस्कार से शुरू होते हैं। और
वह नमस्कार केवल औपचारिक नहीं है। वह केवल एक परंपरा और रीति नहीं है। वह नमस्कार इंगित है कि मार्ग समर्पण का है, और जो विनम्र हैं, केवल वे ही उपलब्ध हो सकेंगे। और जो आक्रामक हैं, अहंकार से भरे हैं; जो सत्य को भी छीन-झपट करके पाना चाहते हैं; जो सत्य के भी मालिक होने की आकांक्षा रखते हैं; जो परमात्मा के द्वार पर एक सैनिक की भांति पहुंचे हैं--विजय करने, वे हार जाएंगे। वे क्षुद्र को भला छीन-झपट लें, विराट उनका न हो सकेगा। वे व्यर्थ को भला लूट कर घर ले आएं; लेकिन जो सार्थक है, वह उनकी लूट का हिस्सा न बनेगा।
इसलिए विज्ञान व्यर्थ को खोज लेता है; सार्थक चूक जाता है। मिट्टी, पत्थर, पदार्थ के संबंध में जानकारी मिल जाती है, लेकिन आत्मा और परमात्मा की जानकारी छूट जाती है। ऐसे ही जैसे तुम राह चलती एक स्त्री पर हमला कर दो, बलात्कार हो जाएगा, स्त्री का शरीर भी तुम कब्जा कर लोगे, लेकिन उसकी आत्मा तुम्हें न मिल सकेगी। उसका प्रेम तुम न पा सकोगे।
तो जो लोग आक्रमण की तरह जाते हैं परमात्मा की तरफ, वे बलात्कारी हैं।
वे परमात्मा के शरीर पर भला कब्जा कर लें--इस प्रकृति पर जो दिखाई पड़ती है, जो दृश्य है--उसकी चीर-फाड़ कर लें, विश्लेषण कर लें, उसके कुछ राज खोज लें, लेकिन उनकी खोज वैसी ही क्षुद्र होगी, जैसे किसी पुरुष ने किसी स्त्री पर हमला किया हो और बलात्कार किया हो। स्त्री का शरीर तो उपलब्ध हो जाएगा, लेकिन उपलब्धि दो कौड़ी की है; क्योंकि उसकी आत्मा को तुम छू भी न पाओगे। और अगर उसकी आत्मा को न छुआ, तो उसके भीतर जो प्रेम की संभावना थी--वह जो छिपा था बीज प्रेम का--वह कभी अंकुरित न होगा। उसकी प्रेम की वर्षा तुम्हें न मिल सकेगी।
विज्ञान बलात्कार है। वह प्रकृति पर हमला है; जैसे कि प्रकृति कोई शत्रु हो; जैसे कि उसे जीतना है, पराजित करना है। इसलिए विज्ञान तोड़-फोड़ में भरोसा करता है--विश्लेषण तोड़-फोड़ है; काट-पीट में भरोसा करता है। अगर

वैज्ञानिक से पूछो कि फूल सुंदर है, तो तोड़ेगा फूल को, काटेगा, जांच-पड़ताल करेगा। लेकिन उसे पता नहीं, तोड़ने में ही सौंदर्य खो जाता है। सौंदर्य तो पूरे में था। खंड-खंड में सौंदर्य न मिलेगा। हां, रासायनिक तत्व मिल जाएंगे। किन चीजों से फूल बना है, किन पदार्थों से बना है, किन खनिज और द्रव्यों से बना है--वह सब मिल जाएगा। तुम बोतलों में अलग-अलग फूल के खंडों को इकट्ठा करके लेबल लगा दोगे। तुम कहोगे--ये केमिकल्स हैं, ये पदार्थ हैं; इनसे मिल कर फूल बना था।
लेकिन तुम एक भी ऐसी बोतल न भर पाओगे, जिसमें तुम कह सकोः यह सौंदर्य है, जो फूल में भरा था। सौंदर्य तिरोहित हो जाएगा। अगर तुमने फूल पर आक्रमण किया तो फूल की आत्मा तुम्हें न मिलेगी, शरीर ही मिलेगा। विज्ञान इसीलिए आत्मा में भरोसा नहीं करता। भरोसा करे भी कैसे? इतनी चेष्टा के बाद भी आत्मा की कोई झलक नहीं मिलती। झलक मिलेगी ही नहीं। इसलिए नहीं कि आत्मा नहीं है; बल्कि तुमने जो ढंग चुना है, वह आत्मा को पाने का ढंग नहीं। तुम जिस द्वार से प्रवेश किए हो, वह क्षुद्र को पाने का द्वार है। आक्रमण से, जो बहुमूल्य है, वह नहीं मिल सकता।
जीवन का रहस्य तुम्हें मिल सकेगा, अगर नमन के द्वार से तुम गए। अगर तुम झुके, तुमने प्रार्थना की, तो तुम प्रेम के केंद्र तक पहुंच पाओगे। परमात्मा को रिझाना करीब-करीब एक स्त्री को रिझाने जैसा है। उसके पास अति प्रेमपूर्ण, अति विनम्र, प्रार्थना से भरा हृदय चाहिए। और जल्दी वहां नहीं है। तुमने जल्दी की, कि तुम चूके। वहां बड़ा धैर्य चाहिए। तुम्हारी जल्दी, और उसका हृदय बंद हो जाएगा। क्योंकि जल्दी भी आक्रमण की खबर है। इसलिए जो परमात्मा को खोजने चलते हैं, उनके जीवन का ढंग दो शब्दों में समाया हुआ हैः प्रार्थना और प्रतीक्षा। प्रार्थना से शास्त्र शुरू होते हैं और प्रतीक्षा पर पूरे होते हैं। प्रार्थना से खोज इसलिए शुरू होती है।
इस शास्त्र का पहला चरण हैः
"ओम स्वप्रकाश आनंद-स्वरूप भगवान शिव को नमन!"
"और अब शिव-सूत्र प्रारंभ।"
इस नमन को बहुत गहरे उतर जाने दें। क्योंकि अगर द्वार ही चूक गया, तो पीछे महल की जो मैं चर्चा करूंगा, वह समझ में न आएगी।
पुरुष को थोड़ा हटाएं। आक्रामक वृत्ति को थोड़ा दूर करें। यह समझ कुछ बुद्धि से आने वाली नहीं है; हृदय से आने वाली है। यह समझ कुछ तुम्हारे तर्क पर निर्भर न करेगी; यह तुम्हारे प्रेम पर निर्भर करेगी। इस शास्त्र को तुम समझ पाओगे; लेकिन वह समझ ऐसी न होगी जैसे कोई गणित को समझता है। वह समझ ऐसी होगी, जैसे कोई काव्य को समझता है। कविता पर तुम झपट नहीं पड़ते। तुम कविता का धीरे-धीरे स्वाद लेते हो, चुस्की लेते हो; जैसे कोई चाय को पीता है। तुम उसे गटक नहीं जाते। वह कोई कड़वी दवा नहीं है। तुम उसका स्वाद लेते हो, चुस्की लेते हो--धीरे-धीरे, उसके स्वाद को लीन होने देते हो। और एक ही कविता को समझना हो, तो बहुत बार पढ़ना पड़ता है। एक गणित को तुमने एक बार समझ लिया, फिर दुबारा करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती; गणित समाप्त हो गया। कविता कभी भी समाप्त नहीं होती; क्योंकि हृदय का कोई ओर-छोर नहीं है। और तुम जितना ही प्रेम करते हो, उतना ही उदघाटित होता है। इसलिए पूरब में हम शास्त्र का अध्ययन नहीं करते; हम शास्त्र का पाठ करते हैं।
अध्ययन शास्त्र का हो भी नहीं सकता। अध्ययन का अर्थ हैः एक बार समझ लिया, फिर कचरे में फेंक दिया, जैसे कि बात खतम हो गई। जब समझ ही लिया तो अब दुबारा क्या करना है! पाठ का अर्थ होता हैः समझ बुद्धि की होती तो एक बार में पूरी हो जाती, इसकी तो चुस्कियां बार-बार लेनी पड़ेंगी। इसे तो जाने- अनजाने न मालूम कितनी बार दोहराना पड़ेगा। इसे बहुत से भाव-क्षणों में, बहुत सी मनोदशाओं में--कभी सुबह जब सूरज उगता है तब, कभी रात जब सब अंधकार हो जाता है तब, कभी मन जब प्रफुल्लित होता है तब, और कभी मन जब उदासी से भरा होता है तब--विभिन्न चित्त की दशाओं में, विभिन्न मनों-क्षणों में, इसमें उतरना होगा, तब इसके सभी पहलू धीरे-धीरे प्रकट होंगे। फिर भी तुम इसे चुकता न कर पाओगे।

कोई शास्त्र कभी चुकता नहीं। जितना ही तुम पाओगे कि खोज लिया, उतना ही तुम पाओगे खोज के लिए और भी ज्यादा बाकी रह गया। जितने तुम गहरे उतरोगे, पाओगे गहराई बढ़ती चली जाती है। शास्त्र को कभी पाठी चुका नहीं पाता। पाठ का मतलब ही यही है कि बार-बार, बहुत बार।
पश्चिम इस बात को समझ भी नहीं पाता। उनकी पकड़ के बाहर है कि लोग गीता
को हजारों साल से क्यों पढ़ रहे हैं? और एक ही आदमी रोज सुबह उठ कर गीता पढ़ लेता है; पागल हो गया है?
उनको ख्याल में नहीं है कि पाठ की प्रक्रिया हृदय में उतारने की प्रक्रिया है। उसका समझ से बहुत वास्ता नहीं है; स्वाद से वास्ता है। तर्क और गणित और हिसाब से उसका कोई भी संबंध नहीं है। उसका संबंध तो अपने हृदय को और उसके बीच की जो दूरी है, उसको मिटाने से है। धीरे-धीरे हम इतने लीन हो जाएं उसमें कि पाठी और पाठ एक हो जाए; पता ही न चले कि कौन गीता है और कौन गीता का पाठी।
ऐसे भाव से जो चले--यह स्त्री का भाव है। यह समर्पण की धारा है। इसे ख्याल में ले लेना।
नमन से हम चलें तो शिव के सूत्र समझ में आ सकेंगे। उन्हें तुम अपने में उतरने देना, और जल्दी निर्णय की मत करना कि वे ठीक हैं कि गलत हैं। क्योंकि सूत्रों के संबंध में एक बात ख्याल रख लेना--तुम्हारे ऊपर निर्भर नहीं है तय करना कि वे ठीक हैं या गलत हैं। तुम निर्णय कर भी कैसे पाओगे? जो अंधेरे में खड़ा है, वह प्रकाश के संबंध में क्या निर्णय करेगा! और जिसने कभी स्वास्थ्य नहीं जाना, जो रोग की शय्या से ही बंधा रहा है, उसे स्वास्थ्य की परिभाषा कैसे समझ में आएगी! जिसने कभी प्रेम की स्फुरणा नहीं पहचानी और जो जीवन भर घृणा, ईर्ष्या और द्वेष में जीया है, वह प्रेम की कविता तो पढ़ सकता है, क्योंकि शब्द उसकी समझ में आ जाएंगे; लेकिन शब्दों में जो छिपा है, अंतरगुंफित है, वह द्वार तो उसके लिए बंद ही रहेगा। इसलिए तुम निर्णय मत करना कि क्या ठीक, क्या गलत।
तुम सिर्फ पीना--समझना भी नहीं कहता हूं--तुम सिर्फ पीना, तुम सिर्फ स्वाद में उतरना। और अगर वह स्वाद तुम्हारे भीतर रहस्य के लोक खोलने लगे, और वह स्वाद अगर तुम्हारे भीतर नई सुगंध को जन्म दे दे, और तुम पाओ कि क्षण भर को भी सही, तुम्हारे दुर्गंध का व्यक्तित्व विलीन हो गया है, तुम्हारे भीतर कोई फूल खिला है और तुम सुगंधित हुए हो, क्षण भर को भी तुम पाओ कि तुम अंधकार नहीं हो, कोई दीया जल गया, एक झलक मिली; जैसे अंधेरे में बिजली कौंध गई हो, उसी से--उसी से समझ आएगी। तुम्हारे समझने से नहीं, तुम्हारे अनुभव की झलक से समझ आएगी। इसलिए तुम विनम्र रहना।
दूसरी बात, सूत्र का अर्थ होता हैः संक्षिप्त से संक्षिप्त, सारभूत, टेलीग्राफिक। वहां एक-एक शब्द अत्यंत घना है; विस्तार नहीं होता सूत्र में, घनत्व होता है। लंबा नहीं होता सूत्र, बड़ा छोटा होता है; जैसे छोटा सा बीज होता है। उसमें सारा वृक्ष समाया होता है।
जैसे बीज है, ऐसा सूत्र है। बीज में तुम वृक्ष को देख भी नहीं सकते। देखना भी चाहोगे तो बीज में तुम वृक्ष को पाओगे नहीं, क्योंकि उसके लिए बड़ी गहरी आंखें चाहिए--जो बीज में वृक्ष को देख लें, जो वर्तमान में भविष्य को देख लें, जो आज कल को देख लें, जो दृश्य से अदृश्य को खोज लें--बड़ी पैनी आंखें चाहिए। वैसी पैनी आंखें तुम्हारे पास अभी नहीं हैं। अभी तो तुम्हें बीज बीज ही दिखाई पड़ेगा। वृक्ष को देखना हो तो बीज को तुम्हें बोना पड़ेगा, और कोई रास्ता तुम्हारे पास देखने का नहीं है। और जब बीज टूटेगा जमीन में और वृक्ष अंकुरित होगा, तभी तुम पहचान पाओगे।
ये सूत्र बीज हैं। इन्हें तुम्हें अपने हृदय में बोना होगा। तुम अभी निर्णय मत करना। क्योंकि अभी तुमने अगर बीज पर निर्णय लिया तो तुम इसे फेंक ही दोगे; कचरा कूड़ा मालूम पड़ेगा।
बीज में, कंकड़-पत्थर में कोई ज्यादा फर्क नहीं है। कभी-कभी तो कंकड़-पत्थर ज्यादा चमकीले, रंगीन, खूबसूरत, कीमती होते हैं। लेकिन बीज और कीमती से कीमती कोहिनूर में भी एक फर्क है कि तुम कोहिनूर को बो दो, तो उसमें से कुछ पैदा न होगा। वह कीमती कितना ही हो, मुर्दा है। उसका मूल्य नासमझ कितना ही समझते हों, लेकिन जीवन उसमें नहीं है। वह लाश है। और बीज कुरूप भी

दिखाई पड़ता हो, कोई उसकी कीमत भी न हो, लेकिन उसमें जीवन छिपा है। तुम उसे बो दो, उससे विराट वृक्ष पैदा होगा, और एक बीज से करोड़ों बीज लग जाएंगे। एक छोटा सा बीज इस सारे विश्व को पैदा कर सकता है; क्योंकि एक बीज से करोड़ों बीज पैदा होते हैं। फिर करोड़ों बीज से, हर बीज से करोड़ बीज पैदा होते हैं। एक छोटे बीज में सारे विश्व का ब्रह्मांड समा सकता है।
सूत्र बीज है। उसके साथ जल्दी नहीं की जा सकती। उसको बोओगे हृदय में
और अंकुरित होगा, फूल लगेंगे--तभी तुम जान पाओगे; तभी निर्णय लिया जा सकता है।
तीसरी बात--इसके पहले कि हम शुरू करें--धर्म महान क्रांति है। धर्म के नाम से तुमने जो समझा हुआ है, उसका धर्म से न के बराबर संबंध है। इसलिए शिव के सूत्र तुम्हें चौंकाएंगे भी। तुम भयभीत भी होओगे, डरोगे भी; क्योंकि तुम्हारा धर्म डगमगाएगा। तुम्हारा मंदिर, तुम्हारी मस्जिद, तुम्हारे गिरजे--अगर ये सूत्र तुमने समझे तो--गिर जाएंगे! तुम उन्हें बचाने की कोशिश में मत लगना; क्योंकि वे बचे भी रहें, तो भी उनसे तुम्हें कुछ भी मिला नहीं है। तुम उनमें जी ही रहे हो, और तुम मुर्दा हो। मंदिर काफी सजे हैं, लेकिन तुम्हारे जीवन में कोई भी खुशी की किरण नहीं। मंदिर में काफी रोशनी है; उससे तुम्हारे जीवन का अंधकार नहीं मिटता। तो उससे भयभीत मत होना; क्योंकि सूत्र तुम्हें कठिनाई में तो डालेंगे ही। क्योंकि शिव कोई पुरोहित नहीं हैं। पुरोहित की भाषा तुम्हें हमेशा संतोषदायी मालूम पड़ती है; क्योंकि पुरोहित को तुम्हारा शोषण करना है। पुरोहित तुम्हें बदलने को उत्सुक नहीं है। तुम जैसे हो ऐसे ही रहो, इसी में उसका लाभ है। तुम जैसे हो--रुग्ण, बीमार--ऐसे ही रहो, इसी में उसका व्यवसाय है।
मैंने सुना है, एक डाक्टर ने अपने लड़के को पढ़ाया। पढ़-लिख कर घर आया। पिता ने कभी छुट्टी भी न ली थी। तो उसने कहा कि अब तू मेरे कारबार को सम्हाल और मैं एक तीन महीने विश्राम कर लूं। जीवन भर सिर्फ मैंने कमाया है और कभी विश्राम नहीं लिया। वह विश्व की यात्रा पर निकल गया। तीन महीने बाद लौटा, तो उसने अपने लड़के से पूछा कि सब ठीक चल रहा है? उसके लड़के ने कहा कि बिल्कुल ठीक चल रहा है। आप हैरान होंगे कि जिन मरीजों को आप जीवन भर में ठीक न कर पाए, उनको मैंने तीन महीने में ठीक कर दिया। पिता ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, मूढ़! वही हमारा व्यवसाय थे। क्या मैं उनको ठीक नहीं कर सकता था? तेरी पढ़ाई कहां से आती थी? उन्हीं पर आधार था। और भी बच्चे पढ़-लिख लेते। तूने सब खराब कर दिया।
पुरोहित, तुम जैसे हो--रुग्ण, बीमार--तुम्हें वैसा ही चाहता है। उस पर
ही उसका व्यवसाय है। शिव कोई पुरोहित नहीं हैं। शिव तीर्थंकर हैं। शिव अवतार हैं। शिव क्रांतिद्रष्टा हैं, पैगंबर हैं। वे जो भी कहेंगे, वह आग है। अगर तुम जलने को तैयार हो, तो ही उनके पास आना; अगर तुम मिटने को तैयार हो, तो ही उनके निमंत्रण को स्वीकार करना। क्योंकि तुम मिटोगे तो ही नये का जन्म होगा। तुम्हारी राख पर ही नये जीवन की शुरुआत है। इन बातों को ख्याल में रख कर एक-एक सूत्र को समझने की कोशिश करें।
पहला सूत्र हैः "चैतन्यमात्मा। चैतन्य आत्मा है।"
चैतन्य हम सभी हैं, लेकिन आत्मा का हमें कोई पता नहीं चलता। अगर चैतन्य ही आत्मा है तो हम सभी को पता चल जाना चाहिए। हम सब चैतन्य हैं। लेकिन चैतन्य आत्मा है, इसका क्या अर्थ होगा?
पहला अर्थः इस जगत में, सिर्फ चैतन्य ही तुम्हारा अपना है। आत्मा का अर्थ होता है, अपना; शेष सब पराया है। शेष कितना ही अपना लगे, पराया है। मित्र हों, प्रियजन हों, परिवार के लोग हों, धन हो, यश, पद-प्रतिष्ठा हो, बड़ा साम्राज्य हो--वह सब जिसे तुम कहते हो मेरा--वहां धोखा है। क्योंकि वह सभी मृत्यु तुमसे छीन लेगी। मृत्यु कसौटी है--कौन अपना है, कौन पराया है। मृत्यु जिससे तुम्हें अलग कर दे, वह पराया था। और मृत्यु तुम्हें जिससे अलग न कर पाए, वह अपना था।
आत्मा का अर्थ है, जो अपना है। लेकिन जैसे ही हम सोचते हैं अपना, वैसे
ही दूसरा प्रवेश कर जाता है। अपने का मतलब ही होता हैः कोई दूसरा, जो अपना है। तुम्हें यह ख्याल ही नहीं आता कि तुम्हारे अतिरिक्त, तुम्हारा अपना कोई भी नहीं है; हो भी नहीं सकता। और जितनी देर तुम भटके रहोगे इस धारा में

कि कोई दूसरा अपना है, उतने दिन व्यर्थ गए, उतना जीवन अकारण बीता, उतना समय तुमने सपने देखे। उतने समय में तुम जाग सकते थे, मोक्ष तुम्हारा होता; तुमने कचरा इकट्ठा किया।
सिर्फ तुम ही तुम्हारे हो। यह पहला सूत्र, मेरे अतिरिक्त मेरा कोई भी नहीं है।
यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है, बड़ा समाज-विरोधी। क्योंकि समाज जीता इसी आधार पर है कि दूसरे अपने हैं; जाति के लोग अपने हैं; देश के लोग अपने हैं; मेरा देश, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरा परिवार; मेरे का सारा खेल है। समाज जीता है "मेरे" की धारणा पर। इसलिए धर्म समाज-विरोधी तत्व है। धर्म समाज से छुटकारा है, दूसरे से छुटकारा है। और धर्म कहता है कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा और कोई भी नहीं।
ऊपर से देखने पर बड़ा स्वार्थी वचन मालूम पड़ेगा। क्योंकि यह तो यह बात हुई कि बस हम ही अपने हैं, तो तत्क्षण हमें लगता है यह तो स्वार्थ की बात है!
यह स्वार्थ की बात नहीं है। अगर यह तुम्हें ख्याल में आ जाए, तो ही तुम्हारे जीवन में परार्थ और परमार्थ पैदा होगा। क्योंकि जो अभी आत्मा के भाव से ही नहीं भरा है, उसके जीवन में कोई परार्थ और कोई परमार्थ नहीं हो सकता। तुम कहते हो दूसरों को मेरा। लेकिन "मेरा" कह कर तुम करते क्या हो? "मेरा" कह कर तुम उन्हें चूसते हो। "मेरा" तुम्हारा शोषण का हिस्सा है, फैलाव है। जिसको भी तुम "मेरा" कहते हो, तुम उसे गुलाम बनाते हो। तुम उसे अपने परिग्रह में परिवर्तित कर देते हो। मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरा बेटा, मेरा पिता--तुम करते क्या हो? इस मेरे के पीछे--इस "मेरे" के परदे के पीछे-- तुम्हारे संबंध का मूल आधार क्या है? तुम चूसते हो, तुम शोषण करते हो, तुम दूसरे का उपयोग करते हो। इस दूसरे के उपयोग को तुम सोचते हो परार्थ, तो तुम भ्रांति में हो।
एक सम्राट बूढ़ा हुआ। उसके तीन बेटे थे और वह बड़ी चिंता में था किसको राज्य दे! तीनों ही योग्य और कुशल थे, तीनों ही समान गुणधर्मा थे। इसलिए बड़ी कठिनाई हुई। उसने एक दिन तीनों बेटों को बुलाया और कहा कि पिछले पूरे वर्ष में तुमने जो भी कृत्य महानतम किया हो--एक कृत्य जो पूरे वर्ष में महानतम हो--वह तुम मुझे कहो।
बड़े बेटे ने कहा कि गांव का जो सबसे बड़ा धनपति है, वह तीर्थयात्रा पर
जा रहा था; उसने करोड़ों रुपये के हीरे-जवाहरात बिना गिने, बिना किसी हिसाब-किताब के, बिना किसी दस्तखत लिए मेरे पास रख दिए, और कहा कि जब मैं लौट आऊंगा तीर्थयात्रा से, मुझे वापस लौटा देना। चाहता मैं तो पूरे भी पा जा सकता था; क्योंकि न कोई लिखा-पढ़ी थी, न कोई गवाह था। इतना भी मैं करता तो थोड़े-बहुत बहुमूल्य हीरे मैं बचा लेता तो कोई कठिनाई न थी। क्योंकि उस आदमी ने न तो गिने थे, और न कोई संख्या रखी थी। लेकिन मैंने सब जैसी की जैसी थैली वापस लौटा दी।
पिता ने कहा, तुमने भला किया। लेकिन मैं तुमसे पूछता हूं कि अगर तुमने कुछ रख लिए होते, तो तुम्हें पश्चात्ताप, ग्लानि, अपराध का भाव पकड़ता या नहीं? उस बेटे ने कहा, निश्चित पकड़ता। तो बाप ने कहा, इसमें परोपकार कुछ भी न हुआ। तुम सिर्फ अपने पश्चात्ताप, अपनी पीड़ा से बचने के लिए यह किए हो। इसमें परोपकार क्या हुआ? हीरे बचाते तो ग्लानि मन को पीड़ा देती, कांटे की तरह चुभती। उस कांटे से बचने के लिए तुमने हीरे वापस दिए हैं। काम तुमने अच्छा किया, ठीक है; लेकिन परोपकार कुछ भी न हुआ। उपकार तुमने अपना ही किया है।
दूसरा बेटा थोड़ी चिंता में पड़ा। और उसने कहा कि मैं राह के किनारे से गुजरता था, और झील में सांझ के वक्त, जब कि वहां कोई भी न था, एक आदमी डूबने लगा। चाहता तो मैं अपने रास्ते चला जाता, सुना अनसुना कर देता। लेकिन मैंने तत्क्षण छलांग मारी, अपने जीवन को खतरे में डाला और उस आदमी को बाहर निकाला।
बाप ने कहा, तुमने ठीक किया। लेकिन अगर तुम चले जाते और न निकालते तो क्या उस आदमी की मृत्यु सदा तुम्हारा पीछा न करती? तुम अनसुनी कर देते ऊपर से, लेकिन भीतर तो तुम सुन चुके थे उसकी चीत्कार, आवाज--कि बचाओ! क्या सदा-

सदा के लिए उसका प्रेत तुम्हारा पीछा न करता? उसी भय से तुमने छलांग लगाई, अपनी जान को खतरे में डाला। लेकिन परोपकार तुमने कुछ किया हो, इस भ्रांति में पड़ने का कोई कारण नहीं है।

तीसरे बेटे ने कहा कि मैं गुजरता था जंगल से। और एक पहाड़ की कगार पर मैंने एक आदमी को सोया हुआ देखा, जो कि नींद में अगर एक भी करवट ले, तो सदा के लिए समाप्त हो जाएगा; क्योंकि दूसरी तरफ महान खड्ड था। मैं उस आदमी के पास पहुंचा और जब मैंने देखा कि वह कौन है, तो वह मेरा जानी दुश्मन था। मैं चुपचाप अपने रास्ते पर जा सकता था। या, अगर मैं अपने घोड़े पर सवार उसके पास से भी गुजरता, तो मेरे बिना कुछ किए, शायद सिर्फ मेरे गुजरने के कारण, वह करवट लेता और खड्ड में गिर जाता। लेकिन मैं आहिस्ते से जमीन पर सरकता हुआ उसके पास पहुंचा कि कहीं मेरी आहट में वह गिर न जाए। और यह भी मैं जानता था कि वह आदमी बुरा है; मेरे बचाने पर भी वह मुझे गालियां ही देगा। उसे मैंने हिलाया, आहिस्ते से जगाया। और वह आदमी गांव में मेरे खिलाफ बोलता फिर रहा है। क्योंकि वह आदमी कहता है, मैं मरने ही वहां गया था। इस आदमी ने वहां भी मेरा पीछा किया। यह जीने तो देता ही नहीं, इसने मरने भी न दिया।

पिता ने कहा, तुम दो से बेहतर हो; लेकिन परोपकार यह भी नहीं है। क्यों? क्योंकि तुम अहंकार से फूले नहीं समा रहे हो कि तुमने कुछ बड़ा कार्य कर दिया। बोलते हो तो तुम्हारी आंखों की चमक और हो जाती है। कहते हो तो तुम्हारा सीना फूल जाता है। और जिस कृत्य से अहंकार निर्मित होता हो, वह परोपकार न रहा। बड़े सूक्ष्म मार्ग से तुमने अपने अहंकार को उससे भर लिया। तुम सोच रहे हो, तुम बड़े धार्मिक और परोपकारी हो। तुम इन दो से बेहतर हो। लेकिन मुझे राज्य के मालिक के लिए किसी चौथे की ही तलाश करनी पड़ेगी।

जब तुम परोपकार करते हो, तब तुम कर नहीं सकते; क्योंकि जिसे अपना ही पता नहीं है, वह परोपकार करेगा कैसे? तुम चाहे सोचते होओ कि तुम कर रहे हो--गरीब की सेवा, अस्पताल में बीमार के पैर दबा रहे हो--लेकिन अगर तुम गौर से खोजोगे तो तुम कहीं न कहीं अपने अहंकार को ही भरता हुआ पाओगे। और अगर तुम्हारा अहंकार ही सेवा से भरता है, तो सेवा भी शोषण है। आत्मज्ञान के पहले कोई व्यक्ति परोपकारी नहीं हो सकता; क्योंकि स्वयं को जाने बिना इतनी बड़ी क्रांति हो ही नहीं सकती।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे झगड़ रही थी और कह रही थी कि यह मामला क्या है, एक दफा साफ हो जाना चाहिए। तुम मेरे सभी रिश्तेदारों को नफरत और घृणा क्यों करते हो?

नसरुद्दीन ने कहा, यह बात गलत है; यह बात तथ्यगत भी नहीं है। और इसका प्रमाण है मेरे पास। और प्रमाण यह है कि मैं तुम्हारी सास को अपनी सास से ज्यादा चाहता हूं।

अहंकार ऐसे रास्ते खोजता है। ऊपर से दिखता है कि तुम परोपकार कर रहे हो; लेकिन भीतर तुम ही खड़े होते हो। और जितनी सूक्ष्म हो जाती है यात्रा, उतनी ही पकड़ के बाहर हो जाती है। दूसरे तो पकड़ ही नहीं पाते; तुम भी नहीं पकड़ पाते हो। दूसरे तो धोखे में पड़ते ही हैं; तुम भी अपने दिए धोखे में घूम जाते हो, भटक जाते हो। हम सभी ने अपनी-अपनी भूलभुलैयां बना ली है। उसमें हमने दूसरों को धोखा देने के लिए ही शुरू किया था सारा उपाय, आयोजन; यह हमने कभी सोचा न था कि अपनी बनाई भूलभुलैयां में हम खुद ही खो जाएंगे। लेकिन हम खो गए हैं।

पहली बात स्मरण रखोः तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा कोई भी नहीं है। जैसे ही यह स्मरण सघन होता है कि चैतन्य ही आत्मा है, बस चैतन्य ही मैं हूं, और सब, और सब "पर" है, पराया है, विजातीय है--वैसे ही तुम्हारे जीवन में क्रांति की पहली किरण प्रविष्ट हो जाती है; वैसे ही तुम्हारे और समाज के बीच एक दरार पड़ जाती है; वैसे ही तुम्हारे और तुम्हारे संबंधों के बीच एक दरार पड़ जाती है।

लेकिन आदमी अपनी तरफ देखना नहीं चाहता। देखना कठिन भी है; क्योंकि देखने के पहले जिस प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, वह बहुत संघातक है।

एक मारवाड़ी व्यापारी एक फिल्म अभिनेत्री के प्रेम में पड़ गया। वैसे बात अनहोनी थी--मारवाड़ी और व्यापारी! प्रेम से सदा दूर ही रहता है। लेकिन अनहोनी भी घटती है। प्रेम में तो पड़ गया; लेकिन व्यापारी का संदेह भरा

चित्त! तो उसने एक जासूस नियुक्त कर दिया अभिनेत्री के पीछे कि तू पता लगा, इसका चरित्र तो ठीक है न। इसके पहले कि मैं प्रस्ताव करूं विवाह का, सब बात पक्की कागज पर साफ हो जानी चाहिए।
जासूस ने बड़ी खोजबीन की। सात दिन बाद उसने रिपोर्ट भी भेज दी। रिपोर्ट आई कि इस स्त्री का चरित्र एकदम निर्दोष, निष्कलुष है। ऐसी कोई बात कभी इसके संबंध में नहीं सुनी गई, नहीं जानी गई, जिससे संदेह पैदा हो; सिर्फ एक बात को छोड़ कर--पिछले कुछ दिनों से एक संदिग्ध मारवाड़ी के साथ यह देखी जाती है। वह संदिग्ध मारवाड़ी वे स्वयं थे!
आंख दूसरे को देखती है। हाथ दूसरे को छूते हैं। मन दूसरे की सोचता है।
और तुम सदा अंधेरे में खड़े रह जाते हो। तुम्हारी हालत वही है जो दीया तले अंधेरे की होती है। दीये की रोशनी सब पर पड़ती है, सिर्फ तुम्हें छोड़ देती है। इसलिए तुम भटकते हो उस रोशनी में सब तरफ, सब दिशाओं में यात्रा करते हो, और एक अपरिचित रह जाता है--और वही तुम हो।
यह पहला सूत्र हैः "चैतन्य आत्मा है।"
इस सूत्र को गहरे बीज की तरह अपने हृदय में उतर जाने दो। व्यर्थ है सारे जगत की यात्रा, अगर तुम अपने से अपरिचित रह गए। अगर स्वयं को न जान पाए, और सब भी जान लिया, तो वह सारा ज्ञान भी इकट्ठे जोड़ में अज्ञान सिद्ध होगा। अगर अपने को न देख पाए, और सारा जगत देख डाला, चांद-तारे छान डाले, तो भी तुम अंधे ही रहोगे। क्योंकि आंख तो उसी को मिलती है, जो स्वयं को देख लेता है। ज्ञान तो उसी को मिलता है, जो स्वयं से परिचित हो जाता है। जो चैतन्य के स्वप्रकाश में नहा लेता है, वही पवित्र है। और कोई तीर्थ नहीं है; चैतन्य तीर्थ है।

और चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है। उससे तुम क्षण भर को भी पार नहीं गए हो। लेकिन दीया तले अंधेरा है। तुम उससे दूर जा भी नहीं सकते, चाहो तो भी। लेकिन भ्रम पैदा हो सकता है कि तुम बहुत दूर चले गए हो। तुम सपना देख सकते हो संसार में। लेकिन सपना सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो सिर्फ एक बात है, वह है तुम्हारा चैतन्य स्वभाव।
"चैतन्य आत्मा है।"
तो पहली तो बात कि मेरा सिवाय चैतन्य के और कोई भी नहीं। यह भाव तुममें सघन हो जाए, तो संन्यास का जन्म हुआ। क्योंकि मेरे अतिरिक्त भी मेरा कोई हो सकता है, यही भाव संसार है। इसलिए पहले सूत्र में बड़ी क्रांति है। पहली चिनगारी शिव फेंकते हैं तुम्हारी तरफ, और वह यह है कि तुम जान लो कि तुम ही बस तुम्हारे हो, बाकी कोई तुम्हारा नहीं।
इससे बड़ा विषाद मन को पकड़ेगा; क्योंकि तुमने दूसरों के साथ बड़े संबंध बना रखे हैं, बड़े सपने संजो रखे हैं। दूसरों के साथ तुम्हारी बड़ी आशाएं जुड़ी हैं। मां देख रही है कि बेटा बड़ा होगा; बड़ी आशाएं जुड़ी हैं! बाप देख रहा है कि बेटा बड़ा होगा; बड़ी आशाएं जुड़ी हैं! और इन सारी आशाओं में तुम अपने को खो रहे हो। यही तुम्हारे पिता भी इन्हीं आशाओं को कर-कर के समाप्त हुए तुम्हारे लिए। तुमसे क्या उन्हें मिला? यही आशाएं कर-कर के तुम समाप्त हो जाओगे; तुम्हारे बेटे से तुम्हें कुछ मिलेगा नहीं। और तुम्हारा बेटा भी यही मूढ़ता जारी रखेगा। वह अपने बेटों से आशाएं करेगा।
नहीं, अपनी तरफ देखो--न तो पीछे, न आगे। कोई भी तुम्हारा नहीं है। कोई बेटा तुम्हें नहीं भर सकेगा। कोई संबंध तुम्हारी आत्मा नहीं बन सकता। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा कोई मित्र नहीं है। लेकिन तब बड़ा डर लगता है; क्योंकि लगता है कि तुम अकेले हो गए। और आदमी इतना भयभीत है कि गली से गुजरता है अकेले में, तो भी जोर से गीत गाने लगता है। अपनी ही आवाज सुन कर लगता है कि अकेला नहीं है। यह तुम अपनी ही आवाज सुन रहे हो। बाप जब बेटे में अपने सपने रचा रहा है, तो बेटे की कोई सहमति नहीं है। यह बाप खुद ही अकेले में सीटी बजा रहा है। इसलिए दुखी होगा कल; क्योंकि इसने जिंदगी भर सपने रचाए और यह सोचता है कि बेटा भी यही सपने देख रहा है। यह गलती में है। बेटा अपने सपने देखेगा। तुम अपने सपने देख रहे हो। तुम्हारे बाप ने अपने सपने देखे थे। ये कहीं मिलते नहीं।

हर बाप दुखी मरता है। क्या कारण होगा? क्योंकि जो-जो सपने वह बांधता है, वे सभी सपने बिखर जाते हैं। हर आदमी अपने सपने देखने को यहां है, तुम्हारे सपने देखने को नहीं। और तुम्हें अगर चाहिए कि एक आप्त स्थिति उपलब्ध हो जाए--एक तृप्ति मिले--तो तुम सपने किसी और के साथ मत बांधना; अन्यथा तुम भटकोगे।
संसार का इतना ही अर्थ है कि तुमने अपने सपनों की नाव दूसरों के साथ बांध रखी है। संन्यास का अर्थ है कि तुम जाग गए। और तुमने एक बात स्वीकार कर ली--कितनी ही कष्टकर हो, कितनी ही दुखपूर्ण मालूम पड़े प्रथम, और कितनी ही संघातक पीड़ा अनुभव हो--कि तुम अकेले हो। सब संग-साथ झूठा है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम भाग जाओ हिमालय। क्योंकि जो हिमालय की तरफ भाग रहा है, उसे अभी संग-साथ सार्थक है, झूठा नहीं हुआ। क्योंकि जो चीज झूठ हो गई, उससे भागने में भी कोई सार्थकता नहीं है। कोई भी सुबह जाग कर भागता तो नहीं कि सपना झूठा है, भागूं इस घर से। सपना झूठा हो गया, बात खत्म हो गई। उसमें भागना क्या है!
लेकिन एक आदमी है जो भाग रहा है पत्नी से, बच्चों से। इसका भागना बताता हैः इसने सुन लिया होगा कि सपना झूठा है, लेकिन अभी इसे खुद पता नहीं चला। कल तक यह पत्नी की तरफ भागता था, अब पत्नी की तरफ पीठ करके भागता है; लेकिन दोनों ही अर्थों में पत्नी सार्थक थी।
एक जैन संत हुए--गणेशवर्णी। वर्षों पहले उन्होंने पत्नी त्याग दी। साधु पुरुष थे। कोई बीस वर्ष त्याग के बाद, काशी में थे, तब खबर आई कि पत्नी मर गई। उनके मुंह से जो वचन निकला, वह याद रख लेने जैसा है। उन्होंने कहा, चलो झंझट मिटी। उनके भक्तों ने इस वचन का अर्थ लिया कि बड़ी वीतरागता है। थोड़ा सोचो, तो साफ हो जाएगा कि वीतरागता बिल्कुल नहीं है। क्योंकि जिस पत्नी को बीस साल पहले छोड़ दिया, उसकी झंझट अभी कायम थी? तो ही मिट सकती है। गणित बिल्कुल सीधा और साफ है। यह पत्नी जो बीस साल पहले छोड़ दी, किसी न किसी तरह छाया की तरह पीछे चल रही होगी। यह मन में कहीं सवार होगी। इसका उपद्रव कायम था। बीस साल भी इसके उपद्रव को मिटा नहीं पाए थे, छोड़ने के बाद। यह मन सतत सोचता रहा होगा--पक्ष में, विपक्ष में। पत्नी के मरने पर यह वचन कि चलो झंझट मिटी, पत्नी के संबंध में कुछ भी नहीं बताते, सिर्फ पति के संबंध में बताते हैं--कि यह आदमी भाग तो गया छोड़ कर, लेकिन छोड़ न पाया।
और गणेशवर्णी साधु पुरुष थे। इसलिए थोड़ा सोच लेना--साधु पुरुष भी बड़ी भ्रांति में रह सकते हैं। उनके चरित्र में, आचरण में कोई भूल-चूक न थी। वे मर्यादा के पुरुष थे। ठीक-ठीक नियम से चलते थे। वहां कोई जरा भी दरार नहीं पा सकता, जरा त्रुटि नहीं पा सकता। सब आचरण ठीक था, साधुता पूरी थी। फिर भी भीतर कोई बात चूक गई। हिमालय पहुंच गए, झंझट साथ चली गई।
फिर दूसरी बात भी समझ लेने जैसी है। और वह यह कि अगर पत्नी के मरने पर पहला ख्याल यह आया कि झंझट मिटी, तो कहीं जाने-अनजाने, अचेतन में, पत्नी की मृत्यु की आकांक्षा भी छिपी रही होगी। वह जरा गहरा। किसी तल पर पत्नी मिट जाए, न हो, समाप्त हो जाए। यह तो हिंसा हो गई।
लेकिन एक-एक वचन भी अकारण नहीं आता, आसमान से नहीं आता। एक-एक वचन भी भीतर से आता है। और ऐसे क्षणों में, जब कि पत्नी मर गई, इसकी खबर आई हो, तुम ठीक-ठीक अपने रोजमर्रा के व्यवसायी होश में नहीं होते हो। तब तुमसे जो बात निकलती है, वह ज्यादा सही होती है। घंटे भर बाद तुम्हें मौका मिल जाएगा, तुम खुद ही सोच-समझ कर लीप-पोत कर लोगे। तुम फिर जो कहोगे, वह बात झूठी हो जाएगी। लेकिन तत्क्षण उस क्षण में वर्णी चूक गए। वह जो बीस साल से उन्होंने चारों तरफ साधुता की व्यवस्था कर रखी थी, उस क्षण में भूल गए। जब वर्णी को ऐसा घट सकता है, तो तुम्हें तो सहज ही घट सकता है। भागने से कुछ भी न होगा। भाग कर कोई भी कभी भाग नहीं पाया।
लेकिन भक्त इसको न देख पाएंगे। उन्होंने तो वर्णी की कथा में इसको बड़े बहुमूल्य वचन की तरह संगृहीत किया है, यह सोच कर कि देखो आदमी कैसा वीतराग है!
तुम्हें पता भी नहीं हो सकता कि वीतरागता क्या है। तुम राग में जीते हो, तुम्हें विराग समझ में आता है। तुमसे जो विपरीत है, वह समझ में आता है।

तुम जानते हो कि तुम पत्नी को छोड़ कर नहीं जा सकते, और यह आदमी छोड़ कर चला गया; यह आदमी तुमसे बड़ा है।
यह तुमसे विपरीत है, लेकिन तुमसे भिन्न नहीं। तुम पैर के बल खड़े हो, यह आदमी सिर के बल खड़ा है। लेकिन तुम्हारे मन में और इसके मन में रत्ती भर भी फर्क नहीं है। खोज कर देखो! तुम सभी सोचते हो कि पत्नी झंझट है। तुम एकाध ऐसा पति पा सकते हो, जो कहे पत्नी झंझट नहीं? पत्नी के सामने मत पूछना; एकांत में, अकेले में।
मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे कहा है कि मैं भी कभी सुखी था। लेकिन यह मुझे पता ही तब चला, जब मैंने विवाह कर लिया, और तब फिर बहुत देर हो चुकी थी। मैं भी कभी सुखी था, यह पता मुझे तब चला, जब मैंने विवाह कर लिया। लेकिन तब तक तो बहुत देर हो चुकी थी; सुख हाथ से जा चुका था।
पति को गहराई में पूछो, तो ऐसा पति खोजना कठिन है, जिसने कई बार पत्नी
की हत्या करने का विचार न किया हो, सपने न देखे हों कि मार डाला पत्नी को। सुबह उठ कर वह भी कहेगा, कैसा बेहूदा सपना! लेकिन अचेतन आकांक्षा है। जिससे झंझट पैदा होती है, उसे मिटा देने का मन--सीधा तर्क है।
लेकिन झंझट दूसरे से कभी पैदा होती ही नहीं। पत्नी में अगर कोई उपद्रव होता, तो कौन तुम्हें रोकता था, तुम सब भाग गए होते हिमालय। उपद्रव पत्नी में नहीं है; क्योंकि तुम हिमालय जाकर फिर पत्नी खोज लोगे। उपद्रव तुम्हारे भीतर है। तुम अकेले नहीं रह सकते। तुम्हें कोई दूसरा चाहिए। अकेले में तुम डरते हो। कोई दूसरा, तब तुम निश्चिंत मालूम पड़ते हो। क्यों? दूसरे की मौजूदगी से आश्वासन मिलता है--दुख में, सुख में कोई साथी है। जीवन में, मृत्यु में कोई साथी है।
लेकिन अकेलापन स्वभाव है। और जिस व्यक्ति ने यह अनुभव कर लिया कि आत्मा ही बस मेरी है, उसने अपने अकेलेपन को अनुभव कर लिया। भागने की कोई भी जरूरत नहीं, नहीं तो झंझट पीछे चली जाएगी। तुम जहां हो, वहीं रहना; रत्ती भर भी बाहर कोई फर्क करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन भीतर तुम अकेले हो जाना। भीतर तुम कैवल्य को अनुभव करना कि मैं अकेला हूं; कोई संगी-साथी नहीं। और यह तुम दोहराना मत, क्योंकि दोहराने की कोई जरूरत नहीं कि रोज सुबह बैठ कर तुम दोहराओ कि मैं अकेला हूं, कोई संगी-साथी नहीं। इससे कुछ भी न होगा। यह दोहराना तो सिर्फ यही बताएगा कि तुम्हें अभी ख्याल नहीं हुआ। इसे समझना। यह तथ्य है कि तुम अकेले हो।
समझने में अड़चन है--वही तपश्चर्या है। तप का अर्थ नहीं है कि तुम धूप में खड़े हो जाओ। आदमी को छोड़ कर सभी पशु-पक्षी धूप में खड़े हैं। उनमें से कोई भी मोक्ष नहीं चला जा रहा है। और तप का अर्थ यह नहीं है कि तुम भूखे खड़े हो जाओ, अनशन कर लो, उपवास कर दो; क्योंकि आधी दुनिया वैसे ही भूखी मर रही है, कोई उपवास करके मोक्ष नहीं पहुंच जाता है। शरीर को गला दो, जला दो--उससे कुछ हल नहीं है। वह सिर्फ आत्म-हिंसा है और महानतम पाप है। और सिर्फ मूढ़ उस पाप में उतरते हैं। जिन्हें थोड़ा भी बोध है, वे ऐसी नासमझियां न करेंगे। दूसरे को भूखा मारना अगर गलत है, तो खुद को भूखा मारना सही कैसे हो सकता है? दूसरे को सताना अगर हिंसा है, तो खुद को सताना अहिंसा कैसे हो सकती है? सताने में हिंसा है। किसको तुम सताते हो इससे क्या फर्क पड़ता है! जो हिम्मतवर हैं वे दूसरे को सताते हैं; जो कमजोर हैं वे खुद को सताते हैं। क्योंकि दूसरे को सताने में एक खतरा है, दूसरा बदला लेगा। खुद को सताने में वह खतरा भी नहीं है। कौन बदला लेगा? कमजोर अपने को सताते हैं।
तुमने कभी ख्याल किया--अगर पुरुष नाराज हो जाए तो वह पत्नी को पीटता है, अगर पत्नी नाराज हो वह खुद को पीटती है। यह जो पत्नी है, यह साधुओं का प्रतीक है। कमजोर अपने को पीट लेता है। क्या करे? ताकतवर दूसरे को पीटता है; क्योंकि उसमें खतरा तो है ही कि दूसरा क्या करेगा, कौन जाने! कमजोर आत्म-हिंसक हो जाता है, और ताकतवर पर-हिंसक होता है। और धार्मिक वह है जो अहिंसक है--न वह दूसरे को सताता है, न खुद को सताता है। सताने की बात ही व्यर्थ है।
तपश्चर्या का अर्थ है कि तुमने यह सत्य स्वीकार कर लिया कि तुम अकेले हो, कोई उपाय नहीं है संगी-साथी का। तुम कितना ही चाहो--कितनी ही आंखें बंद करो, सपने देखो--तुम अकेले ही रहोगे। जन्मों-जन्मों से तुमने घर बसाए,

परिवार बसाए, मिटाए; लेकिन तुम अकेले ही रहे हो, तुम्हारे अकेलेपन में रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता। जिसने यह जान लिया--स्वीकार कर लिया--कि मैं अकेला हूं, उसके लिए इंगित है इस सूत्र मेंः चैतन्य आत्मा है। वही तुम्हारा, और कोई तुम्हारा नहीं।
और दूसरी बात इस सूत्र में है, वह हैः चैतन्य।
आत्मा कोई सिद्धांत नहीं है कि तुम शास्त्र में पढ़ो और मान लो। आत्मा कोई, जैसे गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत है, ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है।
आत्मा एक अनुभव है, सिद्धांत नहीं। और अनुभव है चैतन्य की तीव्रता का।
इसलिए तुम जितने चैतन्य होते जाओगे, उतना ही तुम्हें आत्मा का पता चलेगा।
तुम जितने बेहोश होते चले जाओगे, उतना ही तुम्हें अपना पता नहीं चलेगा। और तुम करीब-करीब बेहोश हो।
जो आत्मा को जानना चाहता है, उसे किसी दर्शन-शास्त्र की जरूरत नहीं है, उसे चैतन्य को जगाने की प्रक्रिया चाहिए। उसे विधि चाहिए, जिससे वह ज्यादा चेतन हो जाए। जैसे कि आग को तुम उकसाते हो; राख जम जाती है, तुम उकसा देते हो--राख झड़ जाती है, अंगारे झलकने लगते हैं। ऐसी तुम्हें कोई प्रक्रिया चाहिए जिससे तुम्हारी राख झड़े और अंगारा चमके; क्योंकि उसी चमक में तुम पहचानोगे कि तुम चैतन्य हो। और जितने तुम चैतन्य हो, उतने ही तुम आत्मवान हो। जिस दिन तुम पाओगे कि मैं परम चैतन्य हूं, उस दिन तुम परमात्मा हो। तुम्हारी चेतना की मात्रा ही तुम्हारी आत्मा की मात्रा होगी।
लेकिन अभी तुम करीब-करीब बेहोश हो। अभी करीब-करीब तुम जैसे शराब पीए हो। अभी तुम चल रहे हो, उठ रहे हो, काम कर रहे हो; लेकिन जैसे नींद में। होश तुम्हें नहीं है।
कभी तुमने ख्याल किया किताब पढ़ते वक्त, तुम पूरा पेज पढ़ जाते हो, तब तुम्हें ख्याल आता है--अरे! मैं पूरा पेज पढ़ भी गया, और एक शब्द याद नहीं! तुमने कैसे पढ़ा होगा पूरा पेज? तुम पढ़ सकते हो सोए-सोए। मन कहीं और रहा होगा। तुम पढ़ गए, तब तुम्हें होश पता चला कि यह तो पूरा पेज व्यर्थ गया। तुम कई बार रास्ते से चलते हो, तुम पूरा रास्ता चल जाते हो, तब तुम्हें ख्याल आता है कि तुम चल रहे हो। तुम काम करते हो, और तुम्हें पता नहीं चलता कि तुम कर रहे हो।
तुम बेहोशी में जी रहे हो; और चैतन्य आत्मा है। और तुम पूछते हो, क्या आत्मा है? तुम चाहते हो कोई प्रमाण दे। तुम चाहते हो कोई सिद्ध करे, कोई तर्क से तुम्हें समझा दे तो तुम भी मान लो। नहीं तो तुम नास्तिक हो जाओगे। नास्तिकता बेहोशी का सहज परिणाम है; आस्तिकता होश का फल है। जितना तुम्हारा होश बढ़ेगा, तो जरूरत नहीं है कि तुम मानो कि आत्मा है। क्योंकि कई नासमझ मान रहे हैं, उससे कुछ हल नहीं होता। इस मुल्क में तो सभी मानते हैं कि आत्मा है; लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति इससे आती नहीं। शायद तुम इसीलिए मान लेते हो कि हजारों साल से दोहराया जा रहा है, सुनते-सुनते तुम्हारे कान पक गए हैं। सुनते-सुनते तुम भूल ही गए हो कि इस संबंध में सोचना भी है। सुनते-सुनते, पुनरुक्ति से आदमी सम्मोहित हो जाता है। एक ही बात बार-बार दोहराई चली जाए, तो तुम भूल जाते हो कि वह संदिग्ध है, संदेह किया जा सकता है, विचार किया जा सकता है।
और फिर आत्मा है--इससे तुम्हें बड़ा संतोष भी मिलता है। शरीर मरेगा, यह तुम्हें पता है; आत्मा नहीं मरेगी, इससे बड़ी हिम्मत बंधती है। और आत्मा कभी नहीं मरेगी--अग्नि उसे जलाएगी नहीं, शस्त्र उसे छेदेंगे नहीं, मृत्यु उसका कुछ बिगाड़ न सकेगी--इससे तुम्हें बड़ी सांत्वना मिलती है।
पर सांत्वना सत्य नहीं है। आत्मा को कोई न तो स्वीकार कर सकता है सिद्धांत की तरह, और न पुनरुक्ति की तरह कोई सम्मोहित हो सकता है; आत्मा को तो केवल वे ही लोग जान पाते हैं, जो चैतन्य को बढ़ाते हैं। इस तरह जीओ कि तुम पर राख इकट्ठी न हो। इस तरह जीओ कि तुम्हारे भीतर का अंगारा जलता रहे, प्रकाशित हो। इस तरह जीओ कि प्रतिक्षण तुम होश में रहो, बेहोश नहीं। मुल्ला नसरुद्दीन को बच्चा पैदा हुआ। पहला ही लड़का था। नसरुद्दीन बड़ा खुश हुआ। अपने खास मित्र को बुलाया। खुशी मनाने दोनों शराबघर में गए। क्योंकि तुम एक ही खुशी जानते हो--बेहोशी। यह बड़े मजे की बात है। शिव,

बुद्ध, महावीर, वे सब चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि दुनिया में एक ही आनंद है--वह है होश। और तुम एक ही सुख जानते हो--वह है बेहोशी। या तो तुम ठीक हो या वे ठीक हैं; दोनों तो ठीक नहीं हो सकते। मुल्ला नसरुद्दीन सीधा शराबघर गया, बजाय अस्पताल जाने के कि पहले बेटे को देखता। उसने कहा कि पहले जरा आनंद कर लें। कितने दिनों का सपना पूरा हुआ। डट कर दोनों पी गए। जब दोनों पीकर पहुंचे अस्पताल, और कांच की खिड़की में से बेटे को देखा तो मुल्ला रोने लगा। उसने अपने मित्र से कहा, पहली तो बात, मेरे जैसा मालूम नहीं होता।
अपना उन्हें पता नहीं है अभी। अभी खुद की शक्ल भी वह पहचान न सकेंगे। लेकिन मेरे जैसा नहीं मालूम होता! और दूसरी बात, बड़ा छोटा दिखाई पड़ता है। इतने छोटे बच्चे को लेकर करेंगे भी क्या! यह बचेगा? मित्र ने कहा, मत घबड़ाओ। जब मैं पैदा हुआ था, तो मैं भी तीन ही पौंड का था। नसरुद्दीन ने कहा, फिर तुम बचे? मित्र सोचने लगा, क्योंकि वह भी बेहोशी में था। उसने कहा, पक्का नहीं कह सकता।
आदमी बेहोशी में है। उसके जीवन का सारा परिप्रेक्ष्य, उसकी सारी दृष्टि उसकी बेहोशी से भर जाती है; सब धुआं-धुआं हो जाता है। तुम कुछ भी ठीक से नहीं देख पाते। और तुम एक ही सुख जानते हो कि जब तुम अपने को भूल जाते हो। चाहे सिनेमा हो, चाहे संगीत हो, चाहे सेक्स हो, जहां भी तुम अपने को भूल जाते हो, वहीं तुम कहते हो, बड़ा सुख आया। भूलने को तुम सुख कहते हो? विस्मरण को? कारण है। क्योंकि जब भी तुम होश से भरते हो, तुम सिवाय दुख के अपने जीवन में कुछ भी नहीं पाते। इसीलिए जब भी तुम देखते हो जीवन को जरा ही सजग होकर, तुम पाते हो--दुख, दुख; कुरूपता चारों तरफ।
एक मेरे मित्र हैं। अविवाहित ही रह गए हैं। उनसे मैंने पूछा कि क्या हुआ, कैसे चूक गए? तो उन्होंने कहा कि बड़ी अड़चन आई। जिस स्त्री को मैं प्रेम करता था, जब मैं शराब पी लेता, तब वह मुझे सुंदर मालूम पड़ती। तब मैं शादी करने को राजी, लेकिन तब वह राजी नहीं। और जब मैं होश में होता, तब मैं राजी नहीं, तब वह राजी होती थी। इसलिए चूक गए, कोई उपाय न हुआ, मेल न हो सका। तुम जब भी आंख खोल कर देखोगे, सब तरफ कुरूपता और दुख पाओगे। जब तुम बेहोश होते हो, तब सब ठीक लगता है। इसलिए तुम्हें तकलीफ मालूम पड़ती हैः चैतन्य आत्मा! असंभव। इसलिए दुख से गुजरना होगा। उसको ही तपश्चर्या कहा है। जब कोई व्यक्ति जागना शुरू करता है, तो पहले तो उसे दुख में से ही गुजरना होगा। क्योंकि तुमने जन्मों-जन्मों तक दुख अपने चारों तरफ निर्मित किए हैं। कौन उनसे गुजरेगा, तुम अगर न गुजरे तो? इसको हमने कर्म कहा है।
कर्म का कुल इतना ही अर्थ है कि जन्मों-जन्मों तक हमने चारों तरफ दुख निर्मित किए हैं। जाने-अनजाने हमने दुख की फसल बोई है, काटेगा कौन? तो जब भी तुम होश में आते हो, तुम्हें फसल दिखाई पड़ती है--बड़ी लंबी। इस खेत से तुम्हें गुजरना पड़ेगा। डर के मारे तुम वहीं बैठ जाते हो। फिर आंख बंद करके शराब पी लेते हो कि यह तो बहुत झंझट का काम है। लेकिन जितनी तुम शराब पीते हो, उतनी यह फसल बढ़ती जाती है। हर जन्म तुम्हारे कर्म कीशृंखला में कुछ और जोड़ जाता है, घटाता नहीं। तुम और भी गर्त में उतर जाते हो। नरक और करीब आ जाता है।
होश से भरोगे तो पहली तो घटना यह घटने ही वाली है कि तुम्हारे जीवन में चारों तरफ दुख दिखाई पड़ेगा, नरक। क्योंकि तुमने वह निर्मित किया है। और अगर तुमने हिम्मत रखी, साहस रखा, और तुम उस दुख से गुजर गए, तो जिस दुख से तुम सचेतन रूप से गुजर जाओगे, वह फसल कट गई। उन दुखों से तुम्हें न गुजरना पड़ेगा फिर।
और अगर एक बार तुम इस सारी दुख कीशृंखला से गुजर जाओ, कर्म कीशृंखला से--क्योंकि वे तुम्हारी आत्मा के चारों तरफ बंधी हुई जंजीरें हैं--अगर तुम उन सबसे गुजर जाओ, और होश न खोओ और हिम्मत जारी रखो कि कोई फिक्र नहीं, जितना दुख मैंने पैदा किया है, मैं गुजरूंगा। मैं अंत तक जाऊंगा। मैं उस प्रथम घड़ी तक जाना चाहता हूं, जब मैं निर्दोष था, और दुख की यात्रा शुरू न हुई थी। जब मेरी आत्मा परम पवित्र थी, और मैंने कुछ भी संग्रह न किया था

दुख का। मैं उस समय तक प्रवेश करूंगा ही--चाहे कुछ भी परिणाम हो; कितना ही दुख, कितनी ही पीड़ा!
अगर तुमने इतना साहस रखा तो आज नहीं कल, दुख से पार होकर तुम उस जगह पहुंच जाओगे, जहां शिव का सूत्र तुम्हें समझ में आएगाः "चैतन्य आत्मा है।" और एक बार तुम अपने भीतर के चैतन्य में प्रतिष्ठित हो जाओ, फिर तुमसे कोई दुख पैदा नहीं होता; क्योंकि बेहोश आदमी अपने चारों तरफ दुख पैदा करता है। तुमने देखा है शराबी को चलते हुए रास्ते पर--वह कैसा डगमगाता है! ऐसी तुम्हारी जिंदगी है। कहीं पैर रखते हो, कहीं पड़ता है। कहीं जाना चाहते हो, कहीं पहुंच जाते हो। कुछ करना चाहा था, कुछ और ही हो जाता है। कुछ कहने निकले थे, कुछ और ही कह कर घर लौट आते हो। इसे तुम रोज देख रहे हो। फिर भी तुम समझ नहीं पाते कि यह क्यों हो रहा है। तुम गए थे किसी से क्षमा मांगने, और झगड़ा करके वापस आ गए। होश में हो तुम? तुम बात प्रेम की कर रहे थे, दुश्मनी हो गई!
एक आदमी शराब पीए आकाश की तरफ देखता हुआ चला जा रहा था। एक कार उसके पास से निकली; बामुश्किल ड्राइवर बचा पाया। गाड़ी रोक कर ड्राइवर ने कहा, महानुभाव! अगर आप नहीं देखते वहां जहां आप जा रहे हैं, तो फिर आप वहीं चले जाएंगे जहां आप देख रहे हैं।
और हम सब... । हमें कुछ पता भी नहीं कि हम कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, कहां देख रहे हैं, क्यों देख रहे हैं। चले जा रहे हैं; क्योंकि एक बेचैनी है भीतर जो बैठने भी नहीं देती; एक शक्ति है भीतर जो चलाए चली जाती है। फिर हम जो भी करते हैं, उस सब के उलटे परिणाम आते हैं।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हमने बदी तो कभी की नहीं; नेकी की,
और फल बदी मिल रहा है।
ऐसा हो नहीं सकता कि तुम नेकी करो और फल में बदी मिले। ऐसा हो नहीं सकता कि तुम आम के बीज बोओ और नीम के फल लगें। ऐसा हो नहीं सकता। इतना ही हो सकता है कि तुम ऐसे बेहोशी में बोए होओगे, बोए तुमने नीम के ही बीज; तुम होश में न थे। क्योंकि वृक्ष थोड़े ही झूठ बोलेगा। तुम ही कहीं बोते वक्त भूल में पड़े होओगे। तुम जब नेकी भी करते हो, तब भी तुम्हारा नेकी करने का मन नहीं होता।
तुम सच भी बोलते हो, तो तुम दूसरे को चोट पहुंचाने के लिए सच बोलते हो। तुम सच बोलते हो दूसरे के अपमान के लिए। तुम सच बोलते हो, जैसे तुम सच का उपयोग एक घातक हथियार की तरह कर रहे हो। तुम्हारे सत्य कड़वे होते हैं। सत्य के कड़वे होने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन मजा तुम्हें कड़वेपन में है, सत्य में तुम्हें मजा भी नहीं है। तुम्हारा झूठ सदा मीठा होता है। तुम्हारा सत्य सदा कड़वा होता है। बात क्या है? क्या कड़वापन सत्य का स्वभाव है? क्या मिठास झूठ का हिस्सा है?
नहीं, झूठ को तुम चलाना चाहते हो, तुम उसे मीठा बनाते हो; क्योंकि अगर
वह मीठा न होगा तो चलेगा नहीं। एक तो झूठ, चलना मुश्किल; मिठास के सहारे ही चलेगा। जैसे कड़वी दवा की गोली पर हम मीठी पर्त चढ़ा देते हैं, बच्चा मीठी गोली समझ कर खा लेता है। और जब तक कड़वेपन का पता चलता है, तब तक गोली भीतर जा चुकी है।
तुम झूठ को मीठा बनाते हो, क्योंकि तुम झूठ चलाना चाहते हो। तुम सत्य
को कड़वा बनाते हो; क्योंकि सत्य से तुम केवल चोट करना चाहते हो, उसको चलाना नहीं चाहते। तुम सत्य बोलते ही तब हो जब तुम सत्य का इस तरह उपयोग कर सको कि वह झूठ से बदतर साबित हो, तभी तुम बोलते हो।
तुम बेहोश हो। तुम्हारे कृत्यों का तुम्हें कुछ पता नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। इसे थोड़ा होशपूर्वक देखना शुरू करो। जो तुम बोलना चाहते हो, वही बोले? या तुम कुछ और बोल गए? क्या तुमने यही सोचा था बोलने के लिए जो तुम बोले?
मार्क ट्वेन लौटता था एक रात। उसकी पत्नी ने पूछा--घर आया तो पत्नी ने पूछा--कैसा रहा व्याख्यान? वह व्याख्यान देने गया था। उसने कहा, कौन सा व्याख्यान? जो मैंने तैयार किया था वह? या जो मैंने वहां दिया वह? या जो मैं चाहता था कि देता वह? कौन सा व्याख्यान?

एक तो आदमी तैयार करता है, और एक आदमी फिर जो देता है--उसमें बड़ा फर्क है। और फिर एक जो घर लौटते वक्त वह सोचता है दिया होता, वे तीनों अलग-अलग हैं।
होश में हो? सब निशाने तुम्हारे चूक जाते हैं। तुम्हारी जिंदगी में कभी भी कोई निशाना लगा? आंख बंद करके भी आदमी तीर चलाता रहे, तो कभी न कभी निशाना लगेगा।
मैंने सुना है कि अगर बंद घड़ी भी दीवार पर टंगी रहे तो चौबीस घंटे में
दो बार सही समय बताएगी। तुम्हारी जिंदगी में ऐसा भी नहीं आया कि दो बार भी तुमने सही समय बताया होता। तुम बंद घड़ी से गए बीते हो? अंधेरे में भी आदमी तीर चलाता रहे, तो कभी न कभी निशाने पर लग जाएगा। तुम खुली आंख से, होश में, प्रकाश में तीर चलाते हो; कभी निशाने पर नहीं लगता। क्या बात होगी? मुल्ला नसरुद्दीन को बड़ा शौक था हिरण की शिकार करने का। तीसरी बार जब
वह शिकार करने जंगल पहुंचा, और जंगल के विश्रामगृह में उसने अपना सामान रखा, और तैयारी की, और जब सूटकेस खोला, तो उसमें एक बड़ी फोटो रखी थी। और पत्नी ने उस फोटो के नीचे लिखा थाः मुल्ला, हिरण इस तरह का होता है। उन्हें शिकार का शौक था, लेकिन हिरण का पता नहीं था। तुम कुछ भी मार-मूर कर घर आ जाओगे। हिरण, ठीक से फोटो देख लेना।
तुम सब जगह चूक गए हो--वही तुम्हारे जीवन का दुख है। और चूकने का कुल कारण है कि तुम होश में नहीं हो। इसलिए जो भी करो, होशपूर्वक करो। उठो तो भी होशपूर्वक, चलो तो भी होशपूर्वक।
महावीर ने कहा है, विवेक से चलो, विवेक से बैठो, विवेक से भोजन करो, विवेक से बोलो, विवेक से सोओ तक। महावीर से कोई पूछता है कि साधु कौन? तो महावीर ने कहा, जो अमूर्च्छित है। और असाधु कौन? तो महावीर ने कहा, जो मूर्च्छित है। जो सोया-सोया जी रहा है, वह असाधु। जो जागा-जागा जी रहा है, वह साधु।
यही शिव कह रहे हैंः "चैतन्य आत्मा है।"
चैतन्य को बढ़ाओ; धीरे-धीरे आत्मा की झलक तुम्हारे जीवन में आनी निश्चित है।
दूसरा सूत्र हैः "ज्ञानं बंधः। ज्ञान बंध है।"
बड़ी हैरानी का सूत्र है। ज्ञान के बहुत अर्थ हैं। एक तो जब तक तुम इस ज्ञान से भरे हो कि मैं हूं, तब तक तुम अज्ञान में रहोगे; क्योंकि मैं अज्ञान है। अहंकार अज्ञान है। जिस दिन तुम आत्मा से भरोगे, उस दिन "हूं-पन" तो रहेगा, "मैं-पन" नहीं रहेगा। "मैं हूं" इसमें से "मैं" तो कट जाएगा, सिर्फ "हूं" रहेगा। इसे थोड़ा प्रयोग करके देखो। कभी किसी वृक्ष के नीचे शांत बैठ कर खोजो कि तुम्हारे भीतर "मैं" कहां है? तुम कहीं भी न पाओगे। "हूं" तो तुम सब जगह पाओगे। "मैं" तुम कहीं भी न पाओगे। सब जगह तुम्हें अस्तित्व मिलेगा, लेकिन अस्तित्व के साथ अहंकार तुम्हें कहीं भी न मिलेगा। अहंकार तुम्हारी निर्मिति है। वह तुम्हारा बनाया हुआ है। वह झूठा है, वह असत्य है। उससे ज्यादा अप्रामाणिक और कुछ भी नहीं। वह कामचलाऊ है। उसकी संसार में जरूरत है; लेकिन उसका सत्य में कहीं भी कोई स्थान नहीं है।
तो एक तो "मैं हूं"--यह ज्ञान बंध का कारण है। मेरा बोध! "हूं-पन" का बोध नहीं, "हूं-पन" का बोध तो शुद्ध है, उसमें कोई सीमा नहीं है। जब तुम कहते हो "हूं", तो तुम्हारे "हूं" में और वृक्ष के "हूं" में कोई फर्क होगा? तुम्हारे "हूं" में और मेरे "हूं" में कोई फर्क होगा? जब तुम सिर्फ "हो", तो नदियां, पहाड़, वृक्ष, सभी एक हो गए। जैसे ही मैंने कहा "मैं", वैसे ही मैं अलग हुआ। जैसे ही मैंने कहा "मैं", वैसे ही तुम टूट गए, पर हो गए, अस्तित्व से मैं पृथक हो गया।
"हूं-पन" ब्रह्म है और "मैं" मनुष्य की अज्ञान दशा है। जब तुम जानते हो
कि सिर्फ "हूं", तब तुम्हारे भीतर केंद्र नहीं होता। तब सारा अस्तित्व एक हो जाता है। तब तुम उस लहर की तरह हो, जो सागर में खो गई। अभी तुम उस लहर की तरह हो जो जम कर बर्फ हो गई है; सागर से टूट गई है।
"ज्ञानं बंधः।"

पहला तो ज्ञान बंध है--इस बात का ज्ञान कि मैं हूं। दूसरा, ज्ञान बंध है--वह सब ज्ञान जो तुम बाहर से इकट्ठा कर लिए हो, जो तुमने शास्त्रों से चुराया है, जो तुमने सदगुरुओं से उधार लिया है, जो तुम्हारी स्मृति है--वह सब बंधन है। उससे तुम्हें मुक्ति न मिलेगी।
इसलिए तुम पंडित से ज्यादा बंधा हुआ आदमी न पाओगे। मेरे पास सब तरह के लोग आते हैं, सब तरह के मरीज। उसमें पंडित से ज्यादा कैंसरग्रस्त कोई भी नहीं। उसका इलाज नहीं है। वह लाइलाज है। उसकी तकलीफ यह है कि वह जानता है। इसलिए न वह सुन सकता, न वह समझ सकता। तुम उससे कुछ बोलो, इसके पहले कि तुम बोलो, उसने उसका अर्थ कर लिया है; इसके पहले कि वह तुम्हें सुने, उसने व्याख्या निकाल ली है। शब्दों से भरा हुआ चित्त जानने में असमर्थ हो जाता है। वह इतना ज्यादा जानता है, बिना कुछ जाने; क्योंकि सब जाना हुआ उधार है। शास्त्र से अगर ज्ञान मिलता होता, तो सभी के पास शास्त्र हैं, ज्ञान सभी को मिल गया होता। ज्ञान तो तब मिलता है, जब कोई निःशब्द हो जाता है; जब वह सभी शास्त्रों को विसर्जित कर देता है; जब वह उस सब ज्ञान को, जो दूसरों से मिला है, वापस लौटा देता है जगत को; जब वह उसे खोजता है, जो मेरा मूल अस्तित्व है, जो मुझे दूसरे से नहीं मिला।
इसे थोड़ा समझो। तुम्हारा शरीर तुम्हें मां और पिता से मिला है। तुम्हारे शरीर में तुम्हारा कुछ भी नहीं है। आधा तुम्हारी मां का दान है, आधा तुम्हारे पिता का दान है। फिर तुम्हारा शरीर तुम्हें भोजन से मिला है--वह जो रोज तुम भोजन कर रहे हो। पांच तत्वों से मिला है--वायु है, अग्नि है, पांचों तत्व हैं, उनसे तुम्हें मिला है। इसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम्हारी चेतना तुम्हें पांचों तत्वों में से किसी से भी नहीं मिली है। तुम्हारी चेतना तुम्हें मां और पिता से भी नहीं मिली है।
तुम जो-जो जानते हो वह तुमने स्कूल, विश्वविद्यालय से सीखा है, शास्त्रों से सुना है, गुरुओं से पाया है। वह तुम्हारे शरीर का हिस्सा है, तुम्हारी आत्मा का नहीं। तुम्हारी आत्मा तो वही है जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिली है। जब तक तुम उस शुद्ध तत्व को न खोज लोगे, जो निपट तुम्हारा है, जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला है--न मां ने दिया, न पिता ने, न समाज ने, न गुरु ने, न शास्त्र ने--वही तुम्हारा स्वभाव है।
ज्ञान बंध है, क्योंकि वह तुम्हें इस स्वभाव तक न पहुंचने देगा। ज्ञान ने ही तुम्हें बांटा है। तुम कहते हो, मैं हिंदू हूं। तुमने कभी सोचा कि तुम हिंदू क्यों हो? तुम कहते हो, मैं मुसलमान हूं। तुमने कभी विचारा कि तुम मुसलमान क्यों हो? हिंदू और मुसलमान में फर्क क्या है? क्या उनका खून निकाल कर कोई डाक्टर परीक्षा करके बता सकता है कि यह हिंदू का खून है, यह मुसलमान का खून है? क्या उनकी हड्डियां काट कर कोई बता सकता है कि यह हड्डी मुसलमान से आती है कि हिंदू से आती है?
कोई उपाय नहीं है। शरीर की जांच से कुछ भी पता न चलेगा; क्योंकि दोनों
के शरीर पांच तत्वों से बनते हैं। लेकिन अगर उनकी खोपड़ी की जांच करो तो पता चल जाएगा कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है; क्योंकि दोनों के शास्त्र अलग, दोनों के सिद्धांत अलग, दोनों के शब्द अलग। शब्दों का भेद है तुम्हारे बीच। तुम हिंदू हो; क्योंकि तुम्हें एक तरह का ज्ञान मिला, जिसका नाम हिंदू। दूसरा जैन है; क्योंकि उसे दूसरी तरह का ज्ञान मिला, जिसका ज्ञान जैन।
तुम्हारे बीच जितने फासले हैं, दीवारें हैं, वे ज्ञान की दीवारें हैं। और सब ज्ञान उधार है। तुम एक मुसलमान बच्चे को हिंदू के घर में रख दो, वह हिंदू की तरह बड़ा होगा। वह ब्राह्मण की तरह जनेऊ धारण करेगा। वह उपनिषद और वेद के वचन उद्धृत करेगा। और तुम एक हिंदू के बच्चे को मुसलमान के घर रख दो, वह कुरान की आयत दोहराएगा।
ज्ञान तुम्हें बांटता है; क्योंकि ज्ञान तुम्हारे चारों तरफ एक दीवार खींच देता है। और ज्ञान तुम्हें लड़ाता है, और ज्ञान तुम्हारे जीवन में वैमनस्य और शत्रुता पैदा करता है। थोड़ी देर को सोचो अगर तुम्हें कुछ भी न सिखाया जाए कि तुम हिंदू हो, या मुसलमान, या जैन, या पारसी, तो तुम क्या करोगे? तुम बड़े होओगे एक मनुष्य की भांति; तुम्हारे बीच कोई दीवार न होगी।

दुनिया में कोई तीन सौ धर्म हैं--तीन सौ कारागृह हैं। और हर आदमी पैदा होते ही से एक कारागृह या दूसरे कारागृह में डाल दिया जाता है। और पंडित, पुरोहित बड़ी चेष्टा करते हैं कि बच्चे पर जल्दी से जल्दी कब्जा हो जाए। उसको वे धर्म-शिक्षा कहते हैं। उससे ज्यादा अधर्म और कुछ भी नहीं है। वे उसको धर्म-शिक्षा कहते हैं। सात साल के पहले बच्चे को पकड़ लें; क्योंकि सात साल का बच्चा अगर बड़ा हो गया, तो फिर पकड़ना रोज-रोज मुश्किल होता जाएगा। और बच्चे को अगर थोड़ा भी बोध आ गया, तो फिर वह सवाल उठाने लगेगा। और सवालों का जवाब पंडितों के पास बिल्कुल नहीं है।
पंडित सिर्फ मूढ़ों को तृप्त कर पाते हैं। जितनी कम बुद्धि का आदमी हो, पंडित से उतने जल्दी तृप्त हो जाता है। वह एक प्रश्न पूछता है, उत्तर मिल जाता है। तुम जाते हो, पंडित से पूछते हो, संसार को किसने बनाया? वह कहता है, भगवान ने। तुम प्रसन्न घर लौट आते हो, बिना पूछे कि भगवान को किसने बनाया। अगर तुम दूसरा प्रश्न पूछते, पंडित नाराज हो जाता; क्योंकि उसका उसे भी पता नहीं है। किताब में वह लिखा नहीं है। और फिर झंझट की बात हैः परमात्मा को किसने बनाया? फिर तुम पूछते ही चले जाओगे; वह कोई भी जवाब दे, तुम पूछोगे, उसको किसने बनाया?
अगर गौर से देखो तो तुम्हारे पहले सवाल का जवाब दिया नहीं गया है। पंडित ने तुम्हें सिर्फ संतुष्ट कर दिया; क्योंकि तुम बहुत बुद्धिमान नहीं हो। और बच्चे अबोध हैं। उनका अभी तर्क नहीं जगा, विचार नहीं जगा; अभी वे प्रश्न नहीं पूछ सकते। अभी तुम जो भी कचरा उनके दिमाग में डाल दो, वे उसे स्वीकार कर लेंगे। बच्चे सभी कुछ स्वीकार कर लेते हैं; क्योंकि वे सोचते हैं, जो भी दिया जा रहा है, वह सभी ठीक है। बच्चा ज्यादा सवाल नहीं उठा सकता। सवाल उठाने के लिए थोड़ी प्रौढ़ता चाहिए।
इसलिए सभी धर्म बच्चों की गर्दन पकड़ लेते हैं और फांसी लगा देते हैं। फांसी बड़ी सुंदर है! किसी के गले में बाइबिल लटकी है, किसी के गले में समयसार लटका है; किसी के गले में कुरान लटकी है, किसी के गले में गीता लटकी है। ये इतने प्रीतिकर बंधन हैं कि इनको छोड़ने की हिम्मत फिर जुटानी बहुत मुश्किल है। और जब भी तुम इन्हें छोड़ना चाहोगे, एक खतरा सामने आ जाएगा। क्योंकि इन्हें छोड़ा तो तुम अज्ञानी! क्योंकि जैसे ही तुम इनको छोड़ोगे, तुम पाओगे, मैं तो कुछ जानता नहीं, बस यह किताब सारी संपदा है। इसको सम्हालो; अपने अज्ञान को छिपाने का यही तो एक उपाय है।
लेकिन अज्ञान छिपने से अगर मिटता होता, तो बड़ी आसान बात हो गई होती। अज्ञान छिपने से बढ़ता है। जैसे कोई अपने घाव को छिपा ले। उससे कुछ मिटेगा नहीं। घाव और भीतर-भीतर बढ़ेगा; मवाद पूरे शरीर में फैल जाएगी।
शिव कहते हैंः "ज्ञान बंध है।"
ज्ञान सीखा हुआ, ज्ञान उधार, ज्ञान दूसरे से लिया हुआ--बंधन का कारण है। तुम उस सबको छोड़ देना, जो दूसरे से मिला है। तुम उसकी तलाश करना, जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला। तुम उसकी खोज में निकलना, उस चेहरे की खोज में, जो तुम्हारा है। तुम्हारे भीतर छिपा हुआ एक झरना है चैतन्य का, जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला। जो तुम्हारा स्वभाव है, जो तुम्हारी निज संपदा है, निजत्व है--वही तुम्हारी आत्मा है।
तीसरा सूत्र हैः "योनिवर्ग और कला शरीर है।"
योनि से अर्थ हैः प्रकृति। इसलिए हम स्त्री को प्रकृति कहते हैं। स्त्री शरीर देती है; वह प्रकृति की प्रतीक है। और कला का अर्थ हैः कर्ता का भाव। एक ही कला है, वह कला है संसार में उतरने की कला, और वह है--कर्ता का भाव। इन दो चीजों से मिल कर तुम्हारा शरीर निर्मित होता है--तुम्हारे कर्ता का भाव, तुम्हारा अहंकार, और प्रकृति से मिला हुआ शरीर। अगर तुम्हारे भीतर कर्ता का भाव है, तो तुम्हें योग्य शरीर प्रकृति देती चली जाएगी।
इसी तरह तुम बार-बार जन्मे हो। कभी तुम पशु थे, कभी पक्षी थे, कभी वृक्ष थे, कभी मनुष्य। तुमने जो चाहा है, वह तुम्हें मिला है। तुमने जो आकांक्षा की है, तुमने जो कर्तृत्व की वासना की है, वही घट गया है।
तुम्हारे कर्तृत्व की वासना घटना बन जाती है। विचार वस्तुएं बन जाते हैं।

इसलिए बहुत सोच-विचार कर वासना करना; क्योंकि सभी वासनाएं पूरी हो जाती हैं देर-अबेर।
अगर तुम बहुत बार देखते हो आकाश में पक्षी को और सोचते हो--कैसी स्वतंत्रता है पक्षी को! काश हम पक्षी होते! देर न लगेगी, जल्दी तुम पक्षी हो जाओगे। तुम अगर देखते हो एक कुत्ते को संभोग करते हुए और तुम सोचते हो-- कैसी स्वतंत्रता! कैसा सुख! जल्दी ही तुम कुत्ते हो जाओगे। तुम जो भी वासना अपने भीतर संगृहीत करते हो, वह बीज बन जाती है। प्रकृति तो केवल शरीर देती है; कलाकार तो तुम्हीं हो स्वयं को निर्माण करने वाले। अपने शरीर को तुमने ही बनाया है--यह कला का अर्थ है। कोई तुम्हें शरीर नहीं दे रहा है; तुम्हारी वासना ही निर्मित करती है।
तुमने कभी ख्याल किया? रात तुम सोते हो, तो आखिरी जो विचार होता है सोते समय, वही सुबह उठते वक्त पहला विचार होगा। रात भर तुम सोए रहे। वह बीज की तरह विचार भीतर पड़ा रहा। जो अंतिम था, वह सुबह प्रथम होगा। तुम मरोगे इस शरीर से, आखिरी मरते क्षण में तुम्हारे सारे जीवन की वासना संगृहीत होकर बीज बन जाएगी। वही बीज नया गर्भ बन जाएगा। जहां से तुम मिटे, वहीं से तुम फिर शुरू हो जाओगे।
तुम जो भी हो, यह तुम्हारा ही कृत्य है। किसी दूसरे को दोष मत देना। यहां कोई दूसरा है भी नहीं, जिसको दोष दिया जा सके। यह तुम्हारे ही कर्मों का संचित फल है। तुम जो भी हो--सुंदर-कुरूप, दुखी-सुखी, स्त्री-पुरुष--तुम जो भी हो, यह तुम्हारे ही कृत्यों का फल है। तुम ही हो कलाकार अपने जीवन के। मत कहना कि भाग्य ने बनाया है; क्योंकि वह धोखा है। और उस भांति तुम जिम्मेवारी किसी और पर टाल रहे हो। मत कहना कि परमात्मा ने भेजा है। तुम परमात्मा पर जिम्मेवारी मत डालना; क्योंकि यह तरकीब है खुद के दायित्व से बचने की। इस कारागृह में तुम अपने ही कारण हो। जो व्यक्ति इस बात को ठीक से समझ लेता है कि अपने ही कारण मैं यहां हूं, उसके जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है।
शिव कह रहे हैंः "योनिवर्ग और कला शरीर हैं।"
प्रकृति तो सिर्फ योनि है। वह तो सिर्फ गर्भ है। तुम्हारा अहंकार उस योनि में बीज बनता है। तुम्हारे कर्तृत्व का भाव--कि मैं यह करूं, मैं यह पाऊं, मैं यह हो जाऊं--उसमें बीज बनता है। और जहां भी तुम्हारे कर्तृत्व की कला और प्रकृति की योनि का मिलन होता है, शरीर निर्मित हो जाता है।
इसलिए बुद्ध पुरुष कहते हैं, सभी वासनाओं को छोड़ दो, तभी तुम मुक्त हो सकोगे। तुमने अगर स्वर्ग की वासना की तो तुम देवता हो जाओगे, लेकिन वह भी मुक्ति न होगी। क्योंकि वासनाओं से कभी भी अशरीर की स्थिति पैदा नहीं होती; सभी वासनाओं से शरीर निर्मित होते हैं। जब तक तुम निर्वासना को उपलब्ध नहीं हो, जब तक तृष्णा तुमने पूरी ही नहीं छोड़ दी है, तब तक तुम नये शरीरों में भटकते रहोगे।
और शरीर के ढंग अलग हों, शरीर की मौलिक स्थिति एक ही जैसी है। शरीर के दुख समान हैं; चाहे पक्षी का शरीर हो, चाहे आदमी का शरीर हो, दुखों में कोई भेद नहीं है। क्योंकि मौलिक दुख है--आत्मा का शरीर में बंध जाना। मौलिक दुख है--कारागृह में प्रविष्ट हो जाना। फिर कारागृह की दीवारें वर्तुलाकार हैं कि त्रिकोण हैं, कि चौकोन हैं, उससे कोई हल नहीं होता, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम भला सोचते होओ कि फर्क पड़ता है।
एक मेरे मित्र हैं। ड्राइंग के शिक्षक हैं। उन्हें जेल हो गई। लौटे तीन साल बाद, तो मैंने उनसे पूछा, कैसे रहे दिन, कैसे कटे दिन? उन्होंने कहा, और तो सब ठीक था, लेकिन मेरी कोठरी के कोने नब्बे कोण के नहीं थे। वे ड्राइंग के शिक्षक हैं। उनकी बुद्धि! वे नब्बे कोण के नहीं थे कोठरी के कोने। उनकी असली तकलीफ तीन साल यही रही। क्योंकि उसी कोठरी में रहना और बार-बार देखना वह कोना, वह नब्बे कोण का नहीं है। तो जो बात उन्होंने मुझसे कही वह यह कि और तो सब ठीक था, बाकी कुछ अड़चन न थी; लेकिन कोने ठीक नब्बे के नहीं थे।
कोने नब्बे के हों कि नब्बे के न हों, इससे क्या बुनियादी फर्क पड़ेगा? कारागृह कारागृह है। पक्षी का शरीर कि आदमी का, बहुत फर्क नहीं पड़ता। बंद तुम हो गए, वही दुख है। बंध गए तुम, वही दुख है। वासना बांधती है। वासना है

रज्जु, जिससे हम बंधते हैं। और ध्यान रखना, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है।
"उद्यमो भैरवः।" चौथा सूत्र हैः "उद्यम ही भैरव है।"
उद्यम उस आध्यात्मिक प्रयास को कहते हैं, जिससे तुम इस कारागृह के बाहर होने की चेष्टा करते हो। वही भैरव है। भैरव शब्द पारिभाषिक है। "भ" का अर्थ हैः भरण, "र" का अर्थ हैः रवण, "व" का अर्थ हैः वमन। भरण का अर्थ हैः धारण, रवण का अर्थ हैः संहार, और वमन का अर्थ हैः फैलाना। भैरव का अर्थ हैः ब्रह्म--जो धारण किए है, जो सम्हाले है, जिसमें हम पैदा होंगे, और जिसमें हम मिटेंगे; जो विस्तार है और जो ही संकोच बनेगा; जो सृष्टि का उद्भव है, और जिसमें प्रलय होगा। मूल अस्तित्व का नाम भैरव है।
शिव कहते हैंः "उद्यम ही भैरव है।"
और जिस दिन भी तुमने आध्यात्मिक जीवन की चेष्टा शुरू की, तुम भैरव होने लगे; तुम परमात्मा के साथ एक होने लगे। तुम्हारी चेष्टा की पहली किरण, और तुमने सूरज की तरफ यात्रा शुरू कर दी। पहला ख्याल तुम्हारे भीतर मुक्त होने का, और ज्यादा दूर नहीं है मंजिल; क्योंकि पहला कदम करीब-करीब आधी यात्रा है।
"उद्यम भैरव है।"
पाओगे, देर लगेगी, मंजिल पहुंचने में समय लगेगा। लेकिन तुमने चेष्टा शुरू की, और तुम्हारे भीतर बीज आरोपित हो गया कि मैं उठूं इस कारागृह के बाहर; मैं जाऊं, शरीर से मुक्त होऊं; मैं हटूं वासना से; मैं अब और बीज न बोऊं इस संसार को बढ़ाने के; मैं और जन्मों की आकांक्षा न करूं। तुम्हारे भीतर जैसे ही यह भाव सघन होना शुरू हुआ कि अब मैं मूर्च्छा को तोडूं और चैतन्य बनूं, वैसे ही तुम भैरव होने लगे; वैसे ही तुम ब्रह्म के साथ एक होने लगे। क्योंकि वस्तुतः तो तुम एक हो ही, सिर्फ तुम्हें स्मरण आ जाए। मूलतः तो तुम एक हो ही। तुम उसी सागर के झरने हो, तुम उसी सूरज की किरण हो, तुम उसी महा आकाश के एक छोटे से खंड हो। पर तुम्हें स्मरण आना शुरू हो जाए और दीवारें विसर्जित होने लगें, तो तुम उस महा आकाश के साथ एक हो जाओगे। "उद्यम भैरव है।"
बड़ी सघन चेष्टा करनी जरूरी है। क्योंकि नींद गहरी है; तोड़ोगे सतत, तो
ही टूट पाएगी। आलस्य करोगे, संभव नहीं होगा। आज तोड़ोगे, कल फिर बना लोगे, तो फिर भटकते रहोगे। एक हाथ से तोड़ोगे, दूसरे से बनाते जाओगे, तो श्रम व्यर्थ होगा। उद्यम का अर्थ है--तुम्हारी पूरी चेष्टा संलग्न हो जाए। लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, हम करते हैं, लेकिन कुछ हो नहीं रहा।
अब मैं उनकी शक्ल देखता हूं। वे करते हैं ही नहीं, या ऐसा मरे-मरे करते हैं, जैसे मक्खियां उड़ा रहे हों। उनके करने में कोई प्राण नहीं हैं, इसलिए नहीं होता। लेकिन वे आते ऐसे हैं जैसे कि वे परमात्मा पर कोई बड़ी कृपा कर रहे हैं कि करते हैं और नहीं हो रहा। तो शिकायत लेकर आए हैं कि कहीं कुछ गड़बड़ हो रही है, कहीं कोई अन्याय हो रहा है, कि दूसरों को हो रहा है, हमें नहीं हो रहा है।
इस जगत में अन्याय होता ही नहीं। इस जगत में जो भी होता है, न्याय है। क्योंकि यहां कोई आदमी नहीं बैठा है न्याय-अन्याय करने को। जगत में तो नियम हैं, उन्हीं नियमों का नाम धर्म है। तुम अगर इरछे-तिरछे चले, गिरोगे, टांग टूट जाएगी; तो तुम जाकर अदालत में यह नहीं कहोगे कि गुरुत्वाकर्षण के कानून पर एक मुकदमा चलाता हूं। तो अदालत कहेगी, तुम तिरछे मत चलते। गुरुत्वाकर्षण तुम्हें गिराने में उत्सुक नहीं है, न तुम्हें सम्हालने में उत्सुक है। तुम जब सीधे-सीधे चलते हो, वही तुम्हें सम्हालता है। जब तुम तिरछे चलते हो, वही तुम्हें गिराता है। न गिराने की उसकी कोई आकांक्षा है, न सम्हालने की। तटस्थ है जगत का नियम।
उस तटस्थ नियम का नाम धर्म है। उसको हिंदुओं ने ऋत कहा है। वह परम नियम है। वह तुम्हारी तरफ पक्षपात नहीं करता कि किसी को गिरा दे, किसी को उठा दे। तुम जैसे ही ठीक चलने लगते हो, वह तुम्हें सम्हालता है। तुम गिरना चाहते हो, वह तुम्हें गिराता है। वह हर हालत में उपलब्ध है। तुम जैसा भी उसका उपयोग करना चाहते हो, वह तुम्हें खुला है। उसके द्वार बंद नहीं हैं।

तुम सिर ठोंकना चाहते हो दरवाजे से, सिर ठोंक लो। तुम दरवाजा खोल कर भीतर जाना चाहते हो, भीतर चले जाओ। वह तटस्थ है।
"उद्यम भैरव है।"
महान श्रम चाहिए। उद्यम का अर्थ हैः प्रगाढ़ श्रम। तुम्हारी समग्रता
लग जाए श्रम में, उसका नाम उद्यम है। और तब देर न लगेगी तुम्हारे भैरव हो जाने में।
"शक्तिचक्र के संधान से विश्व का संहार हो जाता है"--पांचवां सूत्र है।
और अगर तुमने ठीक उद्यम किया, अगर तुमने अपनी संपूर्ण ऊर्जा को संलग्न कर दिया चेष्टा में--सत्य की खोज, परमात्मा की खोज या आत्मा की खोज में--तो तुम्हारे भीतर जो शक्ति का चक्र है, वह पूर्ण हो जाता है।
अभी तुम्हारे भीतर शक्ति का चक्र पूर्ण नहीं है, कटा-बंटा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी अपनी पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा प्रतिभा का उपयोग नहीं करता; पचासी प्रतिशत प्रतिभा ऐसे ही सड़ जाती है। यह तो बुद्धिमान आदमी की बात है; बुद्धू का क्या हिसाब! वह तो शायद करता ही नहीं। हम अपने शरीर की भी ऊर्जा का पूरा उपयोग नहीं करते--पांच प्रतिशत ज्यादा से ज्यादा। तो अगर हम मंदे-मंदे जीते हैं, अगर हमारा दीया टिमटिमाता-टिमटिमाता लगता है, तो कसूर किसका है? तुम जीते ही नहीं पूरी तरह। जैसे तुम जीने से भी भयभीत हो कि लपट कहीं जोर से न आ जाए। तुम डरे-डरे हो, तुम कंपते-कंपते जीते हो, तो फिर शक्ति का जो चक्र है तुम्हारे भीतर, वह पूरा नहीं हो पाता। तो तुम्हारी गाड़ी ऐसे चलती है, जैसे कभी कार को तुमने देखा हो--पेट्रोल कभी आता, कभी नहीं आता, कभी कचरा आता, तो कार ऐसे चलती है जैसे हिचकी खा रही हो। बस ऐसा तुम्हारा जीवन है। हिचकी खाते तुम चलते हो। जरा-जरा सी शक्ति के खंड-खंड आते हैं; अखंड शक्ति नहीं हो पाती।
जिस चीज में भी तुम अपनी पूरी शक्ति लगा दोगे, वह कोई भी हो चीज--अगर तुम चित्र बनाते हो और चित्रकार हो, और तुमने अपनी पूरी शक्ति को चित्र बनाने में लगा दिया--पूरी, कि रत्ती भर बाकी न बची--तो तुम वहीं से मुक्त हो जाओगे; क्योंकि वही उद्यम पूर्ण होते ही भैरव हो जाता है। अगर तुम एक मूर्तिकार हो और तुमने सब कुछ मूर्ति में समाहित कर दिया, कि मूर्ति बनाते समय तुम न बचे, बस मूर्ति ही बची, तो शक्ति का चक्र पूरा हो जाता है। जब तुम पूरी शक्ति को निमज्जित करते हो किसी भी कृत्य में, वही ध्यान हो जाता है; भैरव निकट है, मंदिर पास आ गया।
पांचवां सूत्र हैः "शक्तिचक्र के संधान से विश्व का संहार हो जाता है।"
और जब भी तुम्हारी शक्ति का चक्र पूरा होता है--टोटल, समग्र; अंश-अंश नहीं, पूर्ण--उसी क्षण तुम्हारे लिए विश्व समाप्त हो गया। तुम्हारे लिए फिर कोई संसार नहीं है। तुम परमात्मा हो गए। तुम भैरव हो गए। तुम मुक्त हो। फिर तुम्हारे लिए न कोई बंधन है, न कोई शरीर है, न कोई संसार है।
पूर्ण शक्ति का प्रयोग, स्मरण रखना। इस समाधि साधना शिविर में अगर तुमने पूरी शक्ति को लगाया--ऐसे ही ऊपर-ऊपर नहीं ध्यान किए, पूरी शक्ति लगा दी--तो तुम अनुभव करोगे कि जिस क्षण शक्ति पूरी लग जाएगी, उसी क्षण, फिर क्षण भर की देर नहीं लगती, अचानक संसार खो जाता है, परमात्मा सामने आ जाता है। तुम्हारी शक्ति का पूरा लग जाना ही तुम्हारे जीवन की क्रांति हो जाती है। फिर संसार की तरफ पीठ, परमात्मा की तरफ मुंह हो जाता है। इसकी तुम्हें एक झलक भी मिल जाए तो फिर तुम वही न हो सकोगे जो तुम पहले थे। उसकी एक झलक काफी है। फिर तुम्हारा जीवन उसी यात्रा में संलग्न हो जाएगा।
तो ध्यान रखना, यहां पूरा अपने को डुबाना, तो ही कुछ हो सकेगा। अगर तुमने थोड़ा भी अपने को बचाया तो तुम्हारा श्रम व्यर्थ है। जब तक श्रम उद्यम न बन जाए--पूर्ण, टोटल एफर्ट न बन जाए--तब तक भैरव की उपलब्धि नहीं है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
दूसरा प्रवचन

जीवन-जागृति के साधना-सूत्र

जाग्रतस्वप्नसुषुप्तभेदे तुर्याभोग संवित।
ज्ञानं जाग्रत।
स्वप्नोविकल्पाः।
अविवेको मायासौषुप्तम्।
त्रितयभोक्ता वीरेशः।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति--
इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जानने से
तुर्यावस्था का भी ज्ञान हो जाता है।
ज्ञान का बना रहना ही जाग्रत अवस्था है।
विकल्प ही स्वप्न हैं।
अविवेक अर्थात स्व-बोध का अभाव मायामय सुषुप्ति है।
तीनों का भोक्ता वीरेश कहलाता है।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति--इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जानने
से तुर्यावस्था का भी ज्ञान हो जाता है।
तुर्या है चौथी अवस्था। तुर्यावस्था का अर्थ है परम ज्ञान।
तुर्यावस्था का अर्थ है कि किसी प्रकार का अंधकार भीतर न रह जाए, सभी ज्योतिर्मय हो उठे; जरा सा कोना भी अंतस का अंधकारपूर्ण न हो; कुछ भी न बचे भीतर, जिसके प्रति हम जाग्रत नहीं हो गए; बाहर और भीतर, सब ओर जागृति का प्रकाश फैल जाए।
अभी जहां हम हैं, वहां या तो हम जाग्रत होते हैं या हम स्वप्न में होते हैं या हम सुषुप्ति में होते हैं। चौथे का हमें कुछ भी पता नहीं है। जब हम जाग्रत होते हैं तो बाहर का जगत तो दिखाई पड़ता है, हम खुद अंधेरे में होते हैं; वस्तुएं तो दिखाई पड़ती हैं, लेकिन स्वयं का कोई बोध नहीं होता; संसार तो दिखाई पड़ता है, लेकिन आत्मा की कोई प्रतीति नहीं होती। यह आधी जाग्रत अवस्था है। जिसको हम जागरण कहते हैं सुबह नींद से उठ कर, वह अधूरा जागरण है। और अधूरा भी कीमती नहीं; क्योंकि व्यर्थ तो दिखाई पड़ता है और सार्थक दिखाई नहीं पड़ता। कूड़ा-कर्कट तो दिखाई पड़ता है, हीरे अंधेरे में खो जाते हैं। खुद तो हम दिखाई नहीं पड़ते कि कौन हैं और सारा संसार दिखाई पड़ता है। दूसरी अवस्था है स्वप्न की। हम तो दिखाई पड़ते ही नहीं स्वप्न में, बाहर का संसार भी खो जाता है। सिर्फ संसार से बने हुए प्रतिबिंब मन में तैरते हैं। उन्हीं प्रतिबिंबों को हम जानते और देखते हैं--जैसे कोई दर्पण में देखता हो चांद को या झील पर कोई देखता हो आकाश के तारों को। सुबह जाग कर हम वस्तुओं को सीधा देखते हैं; स्वप्न में हम वस्तुओं के प्रतिबिंब देखते हैं, वस्तुएं भी नहीं दिखाई पड़तीं।
और तीसरी अवस्था है--जिससे हम परिचित हैं--बाहर का जगत भी खो जाता है; वस्तुओं का जगत भी अंधेरे में हो जाता है; और प्रतिबिंब भी नहीं दिखाई पड़ते, स्वप्न भी तिरोहित हो जाता है; तब हम गहन अंधकार में पड़ जाते हैं, उसी को हम सुषुप्ति कहते हैं। सुषुप्ति में न तो बाहर का ज्ञान रहता है, न भीतर का। जाग्रत में बाहर का ज्ञान रहता है। और जाग्रत और सुषुप्ति के बीच की एक मध्य-कड़ी है, स्वप्न, जहां बाहर का ज्ञान तो नहीं होता, लेकिन बाहर की वस्तुओं से बने हुए प्रतिबिंब हमारे मस्तिष्क में तैरते हैं और उन्हीं का ज्ञान होता है।
चौथी अवस्था है तुर्या। वही सिद्धावस्था है। सारी चेष्टा उसी को पाने
के लिए है। सब ध्यान, सब योग तुर्यावस्था को पाने के उपाय हैं। तुर्यावस्था का अर्थ हैः भीतर और बाहर दोनों का ज्ञान; अंधेरा कहीं भी नहीं--न तो बाहर और न भीतर; पूर्ण जागृति। जिसको हमने बुद्धत्व कहा है, महावीर ने जिनत्व कहा है; न तो बाहर अंधकार है, न भीतर, सब तरफ प्रकाश हो

गया है; वस्तुओं को भी हम जानते हैं, स्वयं को भी हम जानते हैं। ऐसी जो चौथी अवस्था है, वह कैसे पाई जाए, इसके ही ये सूत्र हैं।
पहला सूत्र हैः "जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति--इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जान लेने से तुर्यावस्था का ज्ञान हो जाता है।"
अभी हम जानते तो हैं, लेकिन पृथक रूप से नहीं जानते। जब हम स्वप्न में होते हैं, तब हमें पता नहीं चलता कि मैं स्वप्न देख रहा हूं; तब तो हम स्वप्न के साथ एक हो जाते हैं। सुबह जाग कर पता चलता है कि रात सपना देखा। लेकिन अब तो वह अवस्था खो चुकी। जब अवस्था होती है, तब हम पृथक रूप से नहीं जान पाते; तादात्म्य हो जाता है। स्वप्न में लगता है कि हम स्वप्न हो गए। सुबह जाग कर लगता है कि अब हम स्वप्न नहीं हैं। लेकिन अब हमारा तादात्म्य जाग्रत से हो जाता है। हम कहते हैं, अब मैं जाग गया। लेकिन तुमने कभी सोचा है कि रात तुम फिर सो जाओगे और यह तादात्म्य भी भूल जाएगा! फिर सपना आएगा और तुम सपने के साथ एक हो जाओगे! जो भी तुम्हारी आंख पर आ जाता है, तुम उसी के साथ एक हो जाते हो, जब कि तुम सभी से पृथक हो।
यह ऐसा ही है जैसे वर्षा आए और तुम समझने लगो कि मैं वर्षा हो गया; फिर गरमी आए और तुम समझो कि मैं गरमी हो गया; और फिर शीत आए और तुम समझो कि मैं शीत हो गया। लेकिन ये तीनों मौसम तुम्हारे आस-पास हैं; तुम इन तीनों से अलग हो। बचपन था तो तुमने समझा कि मैं बच्चा हूं। जवान हुए तो तुमने समझ लिया कि मैं जवान हूं। बूढ़े हुए तो तुम समझ लोगे कि मैं बूढ़ा हूं। लेकिन तुम तीनों के पार हो। अगर तुम पार न होते तो बच्चा जवान होता कैसे? तुम्हारे भीतर कुछ है जो बचपन को छोड़ सका और जवान हो सका। वह कुछ बचपन और जवानी दोनों से अलग है।
स्वप्न में तुम खो जाते हो। जाग कर फिर तुम्हें लगता है सपना झूठ था। तुम्हारे भीतर कोई चेतना का तत्व है जो यात्रा करता है। स्वप्न, सुषुप्ति, जाग्रत तुम्हारे यात्रा के पड़ाव हैं, तुम नहीं हो। और जैसे ही तुम इस बात को समझ पाओगे कि तुम पृथक हो, अलग हो, वैसे ही चौथे का जन्म शुरू हो जाएगा। वह पृथकता ही चौथा है।
महावीर ने इसके लिए बहुत कीमती शब्द प्रयोग किया है। महावीर कहते हैं, भेद-विज्ञान। वे कहते हैं, सारा विज्ञान अध्यात्म का भेद को साफ-साफ कर लेने में है। वही इस शिव-सूत्र का अर्थ है कि तुम्हें, तीनों अवस्थाएं अलग-अलग हैं, इसका पता चल जाए। जैसे ही तीनों अवस्थाओं को तुम अलग-अलग जान लोगे, तुम यह भी जान लोगे कि मैं तीनों से अलग हूं--तुम्हें भेद की कला आ गई।
अभी हमारी मनोदशा ऐसी है कि जो भी हमारे सामने होता है, हम उसी के साथ
एक हो जाते हैं। किसी ने तुम्हें गाली दी, क्रोध उठा; उस क्षण में तुम क्रोध के साथ एक हो जाते हो। तुम भूल ही जाते हो कि क्षण भर पहले क्रोध नहीं था, तब भी तुम थे। क्षण भर बाद क्रोध फिर चला जाएगा, तब भी तुम रहोगे। तो क्रोध बीच में आया हुआ धुआं है। उसने तुम्हें कितना ही घेर लिया हो, लेकिन वह तुम्हारा स्वभाव नहीं। चिंता आती है तो चिंता का बादल घिर जाता है; सूरज छिप जाता है। तुम भूल ही जाते हो कि मैं पृथक हूं। सुख आता है तो तुम नाचने लगते हो। दुख आता है तो तुम रोने लगते हो। जो भी घटता है, तुम उसी के साथ एक हो जाते हो। तुम्हें अपनी पृथकता का कोई बोध नहीं।
इसे धीरे-धीरे अलग करना सीखना होगा। हर स्थिति में अलग करना सीखना होगा। भोजन करते वक्त जानना कि जो भोजन कर रहा है, वह शरीर है। भूख लगे तो जानना कि जिसे भूख लगी है, वह शरीर है। मैं सिर्फ जानने वाला हूं। चेतना को कोई भूख लग भी नहीं सकती। गरमी लगे और पसीना बहे तो जानना कि वह शरीर पर घट रहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम गरमी में बैठे रहना और पसीना बहने देना। हटना, सुविधा बनाना; लेकिन शरीर के लिए ही सुविधा बनाई जा रही है, तुम सिर्फ जानने वाले हो।
धीरे-धीरे प्रत्येक घटना जो तुम्हें घेरती है, तुम उससे अपने को अलग करते जाना। कठिन है पृथक करना; क्योंकि बहुत बारीक फासला है, सीमा-रेखा साफ नहीं है; क्योंकि अनंत जन्मों में तुमने तादात्म्य करना ही सीखा है, तोड़ना नहीं सीखा है। तुमने हमेशा अपने को जोड़ना सीखा है स्थितियों के साथ;

तुम तोड़ने की बात ही भूल गए हो। इसका नाम ही बेहोशी है--यह जो तुमने जोड़ना सीख लिया है।
एक सुबह मुल्ला नसरुद्दीन अस्पताल में अपने मित्र के पास बैठा है। मित्र ने आंख खोलीं और उसने कहा कि नसरुद्दीन, क्या हुआ? मुझे कुछ याद भी नहीं आता। नसरुद्दीन ने कहा कि रात तुम जरा ज्यादा पी गए और फिर तुम खिड़की पर चढ़ गए। और तुमने कहा कि मैं उड़ सकता हूं। और तुम उड़ गए। तीन मंजिल मकान पर थे। घटना जाहिर है। सब हड्डियां-पसलियां टूट गईं।
मित्र ने उठने की कोशिश की और कहा कि नसरुद्दीन, और तुम वहां थे? और तुमने यह होने दिया? तुम किस तरह के मित्र हो?
नसरुद्दीन ने कहा, अब यह बात मत उठाओ। उस समय तो मुझे भी लग रहा था कि तुम यह कर सकते हो। यही नहीं, अगर मेरे पायजामे का नाड़ा थोड़ा ढीला न होता तो मैं तुम्हारे साथ आ रहा था। वह तो कहां उड़ने में पायजामा सम्हालूंगा, इसलिए मैं रुक गया और बच गया। तुम्हीं थोड़े ही पी गए थे, मैं भी पी गया था। बेहोशी का अर्थ हैः जो भी चित्त में दशा आ जाए, उसी के साथ एक हो जाना। शराबी को एक ख्याल आ गया कि उड़ सकता हूं तो अब वह भेद नहीं कर सकता। सोचने के लिए जगह नहीं है। विवेक के लिए सुविधा नहीं है। इसी के साथ एक हो गया! तुम्हारा जीवन इसी शराबी जैसा है। माना कि तुम खिड़कियों से नहीं उड़ते
और माना कि तुम अस्पताल में नहीं पाए जाते और हड्डियां नहीं तोड़ लेते; लेकिन बहुत गौर से देखोगे तो तुम अस्पताल में ही हो और तुम्हारी सब हड्डियां टूट गई हैं। क्योंकि तुम्हारा पूरा जीवन एक रोग है। और उस रोग में सिवाय दुख और पीड़ा के कुछ हाथ आता नहीं है। सब जगह तुम गिरे हो। सब जगह तुमने अपने को तोड़ा है। और सारे तोड़ने के पीछे एक ही मूर्च्छा का सूत्र है--कि जो भी घटता है, तुम उससे फासला नहीं कर पाते।
थोड़े दूर हटो! एक-एक कदम, लंबी यात्रा है; क्योंकि हजारों-लाखों जन्मों में जिसको बनाया है, उसको मिटाना भी आसान नहीं होगा। पर टूटना हो जाता है; क्योंकि वही सत्य है। तुमने जो भी बना लिया है, वह असत्य है। इसलिए हिंदू इसे माया कहते हैं। माया का अर्थ है कि तुम जिस संसार में रहते हो, वह झूठ है। इसका यह अर्थ नहीं है कि बाहर जो वृक्ष है, वह झूठ है; और पर्वत जो है, वह झूठ है; और आकाश में चांद-तारे हैं, वे झूठ हैं। नहीं, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि तुम्हारा जो तादात्म्य है, वह झूठ है। और उसी तादात्म्य से तुम जीते हो। वही तुम्हारा संसार है।
कैसे तादात्म्य टूटे? तो पहले तो जागने से शुरू करो; क्योंकि वहीं थोड़ी सी किरण जागरण की है। स्वप्न से तो तुम कैसे शुरू करोगे। मुश्किल होगा। और सुषुप्ति का तो तुम्हें कोई पता नहीं है। वहां तो सब होश खो जाता है। जाग्रत से शुरू करो। साधना शुरू होती है जाग्रत से। वह पहला कदम है। फिर दूसरा कदम है स्वप्न। और तीसरा कदम है सुषुप्ति। और जिस दिन तुम तीनों कदम पूरे कर लेते हो, चौथा कदम उठ जाता है। वह चौथा कदम है तुर्यावस्था--वह सिद्धावस्था है।
जाग्रत से शुरू करो; क्योंकि वही रास्ता है। इसीलिए उसको जाग्रत कहा है; वह जाग्रत है भी नहीं। क्योंकि कैसी जागृति, जब तुम वस्तुओं में खोए हुए हो और अपने प्रति तुम्हें कोई भी होश नहीं! इसको क्या जागरण कहना; नाम मात्र को जागरण है। लेकिन इसको जाग्रत कहा है। ठीक जाग्रत तो हमने बुद्ध पुरुषों को कहा है। लेकिन यह जागरण है इस अर्थ में कि इसमें थोड़ी सी संभावना जागने की है।
तो पहले तुम जागरण से शुरू करो। भूख लगे, भोजन देना; लेकिन इस स्मरण को साधे रखना कि भूख शरीर को लगती है, मुझे नहीं। पैर में चोट लगे तो मलहम-पट्टी करना, अस्पताल जाना, दवा लेना; लेकिन भीतर एक जागरण को साधे रखना कि चोट शरीर को लगी है, मुझे नहीं। इतने स्मरण को रखने से ही तुम पाओगे कि निन्यानबे प्रतिशत पीड़ा तिरोहित हो गई। निन्यानबे प्रतिशत पीड़ा इतना होश रखने से ही तिरोहित हो जाती है कि जो चोट लगी है, वह मुझे नहीं। इतना बोध भी तत्क्षण तुम्हारे दुख को विसर्जित कर देता है। एक प्रतिशत बची रहेगी; क्योंकि यह बोध पूरा नहीं है। जिस दिन बोध पूरा हो जाएगा, उस दिन समग्र दुख विसर्जित हो जाता है।

बुद्ध ने कहा है, जाग्रत पुरुष का दुख निरोध हो जाता है। तुम उसे दुख नहीं दे सकते। तुम उसके हाथ-पैर काट सकते हो; तुम उसकी हत्या कर सकते हो; तुम उसे आग में जला सकते हो; लेकिन दुख नहीं दे सकते। क्योंकि प्रतिपल जो भी घट रहा है, वह उससे अलग है।
तो जागने से शुरू करो। रास्ते पर चलना जरूर; लेकिन ध्यान रखना कि तुम नहीं चल रहे हो, शरीर ही चल रहा है। तुम कभी चले भी नहीं। तुम चलोगे कैसे? आत्मा का कोई पैर है कि वह चल सके? आत्मा का कोई पेट है कि उसे भूख लग सके? आत्मा की कोई भी वासना नहीं है। सभी वासना शरीर की है। आत्मा निर्वासना है; इसलिए न चलती है, न चल सकती है। तुम्हारा शरीर ही चल रहा है। इसे जब तक होश रहे, सम्हालने की कोशिश करो। धीरे, धीरे, धीरे, एक बड़ा अनूठा और आह्लादकारी अनुभव होगा कि रास्ते पर चलते हुए तुम अचानक किसी दिन पाओगे कि तुम्हारे भीतर दो हिस्से हो गए--एक चल रहा है और एक नहीं चल रहा है; एक भोजन कर रहा है और एक नहीं भोजन कर रहा है।
उपनिषद कहते हैं, एक ही वृक्ष पर बैठे हैं दो पक्षी। ऊपर का पक्षी शांत है--न हिलता, न डुलता; न रोता, न हंसता; न आता, न जाता; बस बैठा है शांत। नीचे का पक्षी बड़ा बेचैन है; इस डाल से उस डाल पर उछलता है। इस फल को पकड़ता है, उसको पकड़ता है। बड़े सपने देखता है। बड़ी दौड़-धूप करता है।
वे दोनों पक्षी तुम्हारे भीतर हैं। वह जो वृक्ष है, वह तुम हो। एक तुम्हारे भीतर पक्षी है, जो कभी हिला-डुला नहीं, जो बस बैठा देख रहा है। उस पक्षी को हमने साक्षी कहा है।
जीसस ने कहा है, एक ही बिस्तर पर तुम सोते हो; उसमें एक मरा हुआ है और
एक सदा जीवित। और एक सदा से मरा हुआ है और एक सदा जीवित रहेगा।
वह बिस्तर तुम ही हो। जब रात तुम बिस्तर पर सोते हो, तो एक उसमें मुर्दा है और एक उसमें शाश्वत चैतन्य है। पर फर्क करना, फासला करना; कठिन श्रम, उद्यम की जरूरत है।
तो पहले तो तुम दिन से कोशिश करो। सुबह जब उठते हो, जब पहली किरण आती
है होश की, तभी से तुम साधने की कोशिश करो। हजारों प्रयास करोगे, तब कहीं एक प्रयास सफल होगा। पर एक भी सफल हो जाए, तो तुम पाओगे कि हजारों साल भी मेहनत करनी महंगी नहीं थी। क्योंकि एक क्षण को भी तुम्हें यह पता चल जाए कि जो चल रहा है, वह तुम नहीं; जो रुका है, वह तुम हो; जो वासना से भरा है, वह तुम नहीं; जो सदा निर्वासना है, वह तुम हो; जो मरणधर्मा है, वह तुम नहीं; जो अमृत का स्रोत है, वह तुम हो। एक क्षण को भी इसका पता चल जाए तो एक क्षण को भी तुम महावीर या बुद्ध हो जाओ, या शिवत्व को उपलब्ध हो जाओ, तो तुमने महा संपदा का द्वार खोल लिया। फिर यात्रा सरल है। स्वाद के बाद यात्रा बड़ी सरल है। स्वाद के पहले ही सारी कठिनाई है।
दिन से शुरू करो; और अगर तुमने दिन से शुरू किया तो तुम धीरे-धीरे सफल
हो जाओगे स्वप्न में भी। गुरजिएफ--इस सदी का एक बहुत बड़ा गुरु, महागुरु--वह अपने साधकों को पहले तो दिन में होश रखना सिखाता था। फिर स्वप्न में होश रखना सिखाता था। तो उसकी प्रक्रिया थी कि जब तुम सोने लगो, तब एक ही बात स्मरण रखो कि यह स्वप्न है। अभी स्वप्न शुरू नहीं हुआ। तुम अभी जागे हो, तभी से तुम यह सूत्र अपने भीतर दोहराने लगो कि जो मैं देख रहा हूं, यह स्वप्न है। कमरे को चारों तरफ देखो और यह भाव मन में गहरा करो कि जो मैं देख रहा हूं, यह स्वप्न है। बिस्तर को छुओ और यह भाव गहरा करो कि जो मैं छू रहा हूं, यह स्वप्न है। अपने हाथ को ही अपने हाथ से स्पर्श करो और अनुभव करो कि जो मैं छू रहा हूं, यह स्वप्न है। ऐसे भाव को करते-करते तुम सो जाओ। यह भाव की सतत धारा तुम्हारे भीतर बनी रहेगी।
कुछ ही दिनों में तुम पाओगे कि बीच स्वप्न में तुम्हें अचानक याद आ जाता है कि यह स्वप्न है। और जैसे ही यह याद आता है, स्वप्न उसी क्षण टूट जाता है। क्योंकि स्वप्न के चलने के लिए मूर्च्छा जरूरी है; बिना मूर्च्छा के स्वप्न नहीं चल सकता। बीच स्वप्न में तुम्हें याद आ जाएगा यह स्वप्न है और स्वप्न टूट जाएगा। और तुम इतने आनंद से भर जाओगे, उस आनंद को तुमने कभी जाना भी नहीं है। नींद टूट जाएगी, स्वप्न बिखर जाएगा और एक गहरा प्रकाश तुम्हें घेर लेगा।

ज्ञानी पुरुष के स्वप्न तिरोहित हो जाते हैं; क्योंकि नींद में भी वह स्मरण रख पाता है कि यह स्वप्न है।
भारत ने इसके बड़े अनूठे प्रयोग किए हैं। शंकर वेदांत में, सारे जगत को माया की जो धारणा है, वह इसी का एक प्रयोग है। संन्यासी को चौबीस घंटे स्मरण रखना है कि जो भी हो रहा है, सब स्वप्न है। जागते भी, रास्ते से गुजरते, बाजार में बैठे हुए भी स्मरण रखना है कि जो भी है, सब स्वप्न है। यह क्यों? यह एक प्रयोग है, एक प्रक्रिया है, एक विधि है। अगर तुमने आठ घंटे जागते में स्मरण रखा कि जो भी हो रहा है, यह स्वप्न है, तो यह स्मरण इतना गहरा हो जाएगा कि जब रात स्वप्न भी चलेगा, तब तुम वहां भी याद रख सकोगे। वहां भी तुम याद रख सकोगे कि यह स्वप्न है।
अभी तुम याद नहीं रख पाते। अगर ठीक से समझो तो अभी भी तुम उलटे अर्थों में यही कर रहे हो। चौबीस घंटे, जब तुम जागते हो, तब तुम समझते हो कि जो भी देख रहा हूं, यह सत्य है। इसी प्रतीति के कारण रात सपने को देख कर भी तुम समझते हो कि जो मैं देख रहा हूं, वह सत्य है। क्योंकि यह प्रतीति गहरी हो जाती है।
सपने से झूठा और क्या होगा! और तुमने कितनी बार रोज सुबह उठ कर नहीं पाया कि सपना झूठा है, व्यर्थ है। लेकिन फिर दुबारा तुम सोते हो और फिर वही भूल होती है। क्यों यह भूल बार-बार होती है? इस भूल के पीछे कोई बहुत गहरा कारण होना चाहिए। वह कारण यह है कि तुम जो भी देखते हो जाग्रत में, उसको तुम समझते हो यह सत्य है। जब सब कुछ देखा हुआ तुम सत्य मानते हो, तो रात तुम सपने को देखते हो, उसको तुम असत्य कैसे मानोगे? उसको भी तुम सत्य मान लेते हो।
इससे उलटा प्रयोग माया का है। तुम जो भी देखते हो उसे दिन भर स्मरण रखते हो कि यह असत्य है। बार-बार भूलते हो और फिर याद को सम्हालते हो; फिर-फिर स्मरण लाते हो कि यह असत्य है। यह सब जो मैं देख रहा हूं चारों तरफ, एक बड़ा नाटक है और मैं दर्शक से ज्यादा नहीं। मैं भोक्ता नहीं हूं, कर्ता नहीं हूं; सिर्फ साक्षी हूं।
इस भाव को अगर तुम सम्हालते हो तो इसकी भीतर धारा बन जाती है। तब रात सपना टूट जाता है। और जिसका सपना टूट गया, उसकी बड़ी उपलब्धि है। जब सपना टूट जाए तो फिर तीसरा चरण उठाया जा सकता है। जब सपना टूट जाए तो फिर सुषुप्ति में होश रखने का चरण उठाया जा सकता है। लेकिन तुम्हें अभी बहुत कठिनाई होगी। सीधा उस प्रयोग को करना संभव नहीं है; एक-एक कदम उठाना पड़े। जब सपना टूट जाता है, तब दृश्य कोई भी नहीं रह जाता। दिन में आंख खोल
कर तुम चलते हो। तुम कितना ही मानो कि जो देख रहे हो, वह माया है, तो भी दृश्य तो बचेगा। तुम कितना ही, शंकर भी कितना ही कहते हों कि माया है, तो भी दीवार से तो निकलेंगे नहीं, निकलेंगे तो दरवाजे से ही; कितना ही कहते हों कि सब माया है, कंकड़-पत्थर तो नहीं खाएंगे, खाएंगे तो भोजन ही; कितना ही कहते हों कि माया है, फिर भी तुम होओगे तभी बोलेंगे, तुम नहीं होओगे तो नहीं बोलेंगे।
इसलिए बाहर के जगत के साथ तुम कितनी ही मान्यता को गहन कर लो कि यह माया है, बाहर का जगत तो बना रहेगा, मिट नहीं जाएगा। कोई पत्थर मारेगा फेंक कर, तो सिर टूटेगा, खून बहेगा। तुम दुखी मत होओगे, तुम पीड़ा नहीं लोगे, तुम कहोगे सब माया है; तुम अपने को दूर रखोगे। लेकिन फिर भी घटना तो घटेगी। लेकिन स्वप्न में एक अनूठी बात है--वह बिल्कुल माया है। इसलिए वहां एक अनूठा प्रयोग हो जाता है। जैसे ही तुम समझते हो कि सपना माया है, सपना खो जाता है, दृश्य विलीन हो जाता है। और जब दृश्य विलीन हो जाता है, तभी द्रष्टा के प्रति आंख जा सकती है। जब तक दृश्य मौजूद रहता है, तब तक तुम बाहर ही देखते हो; क्योंकि दृश्य आकर्षित करता रहता है। जब दृश्य खो जाता है, पर्दा खाली हो जाता है, पर्दा भी नहीं रह जाता, तब तुम अकेले छूटते हो। इसलिए ध्यानी आंख बंद करके ध्यान करता है; क्योंकि इस संसार को माया कहना एक विधि है।
यह संसार वास्तविक है। यह तुम्हारे सोचने पर निर्भर नहीं है। अगर यह स्वप्न भी है तो ब्रह्म का है; यह तुम्हारा स्वप्न नहीं है। लेकिन तुम्हारे निजी सपने हैं; वे रात में घटते हैं।

इसलिए बड़ी क्रांतिकारी घटना तो तब घटती है, जब तुम निजी स्वप्न को तोड़ देते हो। आकाश खाली हो जाता है। वहां देखने को कुछ नहीं बचता। नाटक समाप्त हुआ। घर जाने का वक्त आ गया। अब तुम करोगे भी क्या बैठे-बैठे! इस घड़ी में अचानक आंख मुड़ती है; क्योंकि बाहर कुछ भी खोजने को नहीं रह जाता, देखने को नहीं रह जाता, सोचने को नहीं रह जाता। कोई दृश्य नहीं बचता। तो जो ऊर्जा दृश्य की तरफ जाती थी, वह स्वयं की तरफ मुड़ती है।
स्वयं की तरफ मुड़ती हुई ऊर्जा ही ध्यान है। और जैसे ही यह स्वयं की तरफ मुड़ती है, तब तुम सुषुप्ति में भी होश रख सकते हो। क्योंकि तुम तो होते हो! संसार नहीं होता सुषुप्ति में, स्वप्न नहीं होता सुषुप्ति में; क्योंकि तुम दोनों को देखने में अटके थे, इसलिए सुषुप्ति में बेहोशी रहती थी। अब तुम्हारी अटक टूट गई। अब दृश्य से तुम्हारा कोई संबंध न रहा। अब दृश्य के बिना भी तुम हो सकते हो। अब दीया जलता है; उसकी दीये को कोई फिक्र नहीं कि दीये के प्रकाश में कोई गुजरता है या नहीं गुजरता। अब तुम्हारा जीवन भीतर की तरफ मुड़ेगा। तब तुम सुषुप्ति में जाग जाओगे।
स्वप्न के टूटने पर जो प्रयोग करने का है, वह यह है कि जैसे ही स्वप्न टूट जाए, आंख मत खोलना; क्योंकि आंख खोली तो जगत बाहर मौजूद है, फिर दृश्य मिल जाएगा। जब स्वप्न टूट जाए तो आंख मत खोलना; गौर से देखे चले जाना शून्य को। स्वप्न खो गया; जहां स्वप्न था, अब वहां स्वप्न नहीं है। तुम गौर से उस शून्य को देखे चले जाना। उस शून्य को देखने में ही तुम पाओगे कि तुम्हारी चेतना भीतर की तरफ मुड़ने लगी, अंतर्मुखी हो गई। तब तुम सुषुप्ति में भी जागे रहोगे।
यही कृष्ण ने गीता में कहा है कि जब सब सो जाते हैं, तब भी योगी जागता है। जो सबके लिए निद्रा है, वह योगी के लिए निद्रा नहीं। वह सुषुप्ति में भी जागा हुआ है।
और जब तुम तीनों को पृथक-पृथक देख लेते हो, तब तुम चौथे हो गए; अपने आप चौथे हो गए। तुर्य का अर्थ है चौथा, दि फोर्थ। उस शब्द का और कोई अर्थ नहीं है। उसे कोई शब्द का अर्थ देने की जरूरत भी नहीं है; बस चौथा कहना काफी है। क्योंकि सभी अर्थ उसको बांध लेंगे, सभी शब्द उसे बांध लेंगे; सिर्फ इशारा काफी है। क्योंकि वह अनंत है, और असीम है।
जैसे ही तुम तीन के बाहर हुए, तुम परमात्मा हो। इन तीन में तुम प्रविष्ट हो गए हो, इसीलिए संकीर्ण हो गए हो। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम खुले आकाश से एक टनल में, एक बोगदे में प्रवेश कर जाओ और बोगदा छोटा होता जाए। इंद्रियों तक आते-आते तुम बिल्कुल संकीर्ण हो गए हो। पीछे लौटना है। जैसे-जैसे तुम पीछे लौटते हो, तुम्हारा आकाश बड़ा होता जाता है। जिस क्षण तुम तीनों के पार अपने को देख लेते हो, उस दिन तुम महा आकाश हो, उस दिन तुम परमात्मा हो।
ऐसे ही जैसे कि कोई आदमी दूरबीन से देखता है आकाश को। दूरबीन का छोटा
सा छेद, वह अपनी सारी आंखों को उसी पर लगा देता है। फिर दूरबीन से आंखें हटाता है, तब उसे पता चलता है कि मैं दूरबीन नहीं हूं। तुम भी आंख नहीं हो; लेकिन आंख पर तुम कई जन्मों से टिके हो। तुम कान नहीं हो; लेकिन कान से तुम कई जन्मों से सुन रहे हो। तुम हाथ नहीं हो; लेकिन हाथ से तुम कई जन्मों से छू रहे हो। बस, तुम दूरबीन से बंध गए हो। तुम्हारी हालत वैसी हो गई है, जैसे किसी वैज्ञानिक को दूरबीन बंध गई हो। अब वह दूरबीन को आंख से बांधे हुए घूम रहा है। तुम उसको कितना ही कहो कि दूरबीन उतार कर रखो, यह तुम नहीं हो। पर वह दूरबीन से ही देख सकता है, और भूल ही गया है। यह विस्मृति है। इस विस्मृति को तोड़ने की प्रक्रिया है--जाग्रत से शुरू करो, सुषुप्ति पर पूर्ण होने दो।
"जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति--इन तीनों अवस्थाओं को पृथक रूप से जानने
से तुर्यावस्था का भी ज्ञान हो जाता है।"
इसे शुरू करो--और धीरे-धीरे बढ़ते जाओ। जिस दिन तुम्हें गहरी नींद में होश रह जाए, उस दिन जान लेना तुम में, बुद्ध में, महावीर में, शिव में, अब कोई अंतर न रहा।
लेकिन तुम उलटा ही काम कर रहे हो। तुम जागरण में भी ठीक जागे हुए नहीं
हो तो तुम सुषुप्ति में कैसे जागोगे! तुम यहां भी सोए हुए हो। तुम्हारा

जागरण नाम मात्र को है। तुम्हें भ्रम पैदा होता है कि तुम जागे हो, क्योंकि तुम कामचलाऊ काम निपटा लेते हो। सायकिल चला लेते हो, तुम सोचते हो कि तुम जागे हुए हो; कार चला लेते हो, तुम सोचते हो कि तुम जागे हुए हो। लेकिन तुमने कभी ख्याल किया कि यह सब आटोमेटिक हो गया है, यंत्रवत हो गया है! सायकिल चलाने वाला सोचता भी नहीं कि अब बाएं मुड़ना है, अब दाएं मुड़ना है। वह अपने मन में लगा रहता है। सायकिल बाएं मुड़ती है, दाएं मुड़ती है; वह अपने घर पहुंच जाता है। सोचना या होशपूर्वक चलने की कोई जरूरत नहीं है; सब यंत्रवत हो गया है, आदत हो गई है। वह घर पहुंच ही जाता है। कार चलाने वाला चलाता जाता है; कोई जरूरत नहीं है उसको कि वह जागे।
हम सबकी जिंदगी एक रूटीन, एक बंधी हुई लीक पर घूमने लगती है। जैसे कोल्हू के बैल चलते हैं, ऐसे हम चलने लगते हैं। उसी-उसी लीक पर रोज चलते हैं। किसी की लीक थोड़ी बड़ी, किसी की थोड़ी छोटी, किसी की थोड़ी सुंदर, किसी की थोड़ी कुरूप; लेकिन लीक होने में कोई फर्क नहीं है। तुम्हारी जिंदगी एक कोल्हू के बैल की भांति है। सुबह उठते हो, एक धारा चलती है; रात सो जाते हो, एक वर्तुल पूरा हुआ। फिर सुबह उठते हो--फिर वही, फिर वही। यह सब इतनी बार तुमने दोहराया है कि अब होश रखने की कोई जरूरत ही नहीं; यह बेहोशी में ही हो जाता है। समय पर भूख लग जाती है। समय पर नींद आ जाती है। समय पर उठ कर तुम बाजार चल पड़ते हो। तुम पूरी जिंदगी को ऐसे सोए-सोए एक वर्तुल में गुजार रहे हो। कब जागोगे? कब एक झटका दोगे अपने को? कब इस लीक से उठोगे? कब कहोगे कि मैं कोल्हू का बैल होने को राजी नहीं हूं?
जिस दिन तुम्हें झटका देने का ख्याल आ जाएगा, उसी दिन से परमात्मा की यात्रा शुरू हो जाती है। मंदिर जाने से तुम धार्मिक नहीं होते; क्योंकि वह भी तुम्हारी कोल्हू की लीक का हिस्सा है। तुम वहां भी चले जाते हो; क्योंकि तुम सदा जाते रहे हो; क्योंकि तुम्हारे मां-बाप जाते रहे हैं; उनके मां-बाप जाते रहे हैं इसी मंदिर में। इसी शास्त्र को तुम पढ़ते रहे हो, तो तुम पढ़ते चले जाते हो। लेकिन यह कोल्हू की लीक है। क्या तुम कभी होशपूर्वक मंदिर गए?
होशपूर्वक अगर तुम जा सको तो मंदिर जाने की जरूरत न रह जाएगी। जहां होश हो जाएगा, तुम वहीं पाओगे, मंदिर है। होश मंदिर है। लेकिन ईसाई चला जा रहा है चर्च की तरफ; सिक्ख चला जा रहा है गुरुद्वारा की तरफ; हिंदू चला जा रहा है मंदिर की तरफ--बंधे हुए अपनी-अपनी लीक पर। तुम्हारी यह सोई-सोई अवस्था तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं तोड़ सकता।
तो पहली बात जान लेनी जरूरी है कि तुम्हारा जाग्रत भी सोया हुआ है और योगी की सुषुप्ति भी जागी हुई होती है। तुम बिल्कुल उलटे योगी हो। और जिस दिन तुम इससे विपरीत हो जाओगे, उसी दिन जीवन का सार-सूत्र तुम्हारे हाथ आ जाएगा। तीनों को अलग-अलग जान लो तो जानने वाला तीनों से अलग हो जाता है। तुम मात्र ज्ञान हो, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। तुम सिर्फ होश मात्र हो। लेकिन तीनों से अपने को तोड़ो।
पढ़ता था मैं एक सूफी फकीर के संबंध में--जुन्नैद के बाबत। कोई उसे गाली दे जाता तो वह कहता कि कल आकर उत्तर दूंगा। कल जाकर कहता कि अब उत्तर की कोई जरूरत नहीं। तो वह आदमी पूछता कि कल मैंने गाली दी; कल तुमने क्यों उत्तर न दिया? बाकी तुम अनूठे आदमी हो। गाली किसी को दो तो वह उसी वक्त उत्तर देता है, क्षण भर नहीं रुकता। जुन्नैद ने कहा कि मेरे गुरु ने कहा है कि अगर जल्दी की तो मूर्च्छा हो जाती है। तो थोड़ा वक्त देना। कोई गाली दे, उसी वक्त अगर उत्तर दिया तो उत्तर मूर्च्छा में दिया जाएगा; क्योंकि गाली तुम्हें घेरे होगी, उसका ताप तुम्हें पकड़े होगा, उसका धुआं अभी आंखों में होगा। थोड़ा बादल को गुजर जाने दो। चौबीस घंटे का वक्त दो, फिर उत्तर देना। और जुन्नैद कहता कि मेरा गुरु बहुत चालबाज आदमी था; क्योंकि तब से मैं उत्तर ही नहीं दे पाया। चौबीस घंटा कोई रुक जाए क्रोध करने को, तो तुम सोचते हो, क्रोध कर पाएगा? चौबीस मिनट भी रुक जाए तो क्रोध असंभव है। चौबीस सेकेंड रुक जाए तो क्रोध असंभव है। सच तो यह है कि एक सेकेंड भी अगर रुक जाए, और देख ले, तो क्रोध असंभव है।
लेकिन तुम रुकते ही नहीं। उधर किसी ने गाली दी, जैसे किसी ने बिजली का बटन दबाया, इधर तुम्हारा पंखा चला। इसमें रत्ती भर का फासला नहीं है।

इसमें जरा सी भी संध नहीं है। और तुम सोचते हो कि तुम बड़े होशपूर्ण हो। तुम मालिक भी नहीं हो अपने। बेहोश आदमी अपना मालिक हो भी नहीं सकता। कोई भी बटन दबाता है और तुम्हें चलाता है। कोई आया तुम्हारी खुशामद की, और तुम खिलखिला गए, गदगद हो गए। किसी ने तुम्हारा अपमान किया, और तुम आंसुओं से भर गए। तुम मालिक हो अपने? या हर कोई तुम्हें चलाता है? और जो तुम्हें चला रहे हैं, वे भी अपने मालिक नहीं। तुम गुलामों के गुलाम हो। और बड़ा मजा है कि सब एक-दूसरे को चलाने में कुशल हैं, और उनमें से एक भी होश में नहीं है। इससे बड़ा और कोई अपमान नहीं हो सकता आत्मा का कि हर कोई तुम्हें चलाता है। मुल्ला नसरुद्दीन एक दफ्तर में काम करता था। सभी नाराज थे उसके काम से; क्योंकि काम तो कुछ था ही नहीं। या तो वह सोया रहता या झपकी खाता रहता। आखिर दफ्तर के लोग परेशान इतने हो गए कि धीरे-धीरे लोगों ने उसको कहना भी शुरू कर दिया। मालिक ने भी कहा, डांटा-डपटा भी; लेकिन उसमें कुछ फर्क न हुआ। इतना अपमान और इस सब उपद्रव के कारण उसने इस्तीफा दिया। बदलना तो मुश्किल था, इस्तीफा देना आसान था। बहुत से लोग, जो संसार से भागते हैं संन्यास की तरफ, वे इस्तीफा दे रहे हैं। बदलना तो मुश्किल है, इस्तीफा देना सदा आसान है।
उसने इस्तीफा दिया। सारा दफ्तर प्रसन्न हुआ इस्तीफे से। लोग इतने प्रसन्न हो गए कि मालिक ने कहा कि अब जब वह अपनी तरफ से ही जा रहा है, तो विदाई समारोह करना उचित है। और हम इतने परेशान थे इससे और यह छोड़ रहा है। और छुड़ाने का कोई उपाय नहीं था। एक बोझ हो गया था। इसलिए ठीक से, और सच में ही खुश थे वे, इसलिए विदाई समारोह काफी अच्छी तरह आयोजित किया--मिठाई, खाना-पीना; सब इकट्ठे हुए। नसरुद्दीन बड़ा हैरान हुआ। और सभी ने दो-दो शब्द उसकी प्रशंसा में भी कहे; क्योंकि विदाई के वक्त... । नसरुद्दीन खड़ा हुआ-- गदगद। आंख से आंसू झर रहे हैं। उसने कहा, मैं अपना इस्तीफा वापस लेता हूं। मुझे पता ही नहीं था कि तुम सब इतना प्रेम मेरे लिए करते हो। अब इस जीवन में यहां से जाने का कोई कारण नहीं है।
हम संचालित हो रहे हैं। और अक्सर यह होता है कि चारों तरफ, पूरा संसार, एक-एक व्यक्ति को चला रहा है। और मौसम चारों तरफ बदलता रहता है, हजारों तरह के लोग हैं, इसलिए तुम्हारे भीतर एक गहरा विभ्रम और एक कनफ्यूजन है। होगा ही; क्योंकि तुम एक से चालित नहीं हो। एक से चालित तो वही है, जो भीतर जागा हुआ है। उसकी जिंदगी में एक स्पष्टता होगी, निरभ्रता होगी। उसके जीवन में एक सफाई होगी, एक निर्णय होगा। उसके जीवन में एक दिशा होगी। तुम्हारे जीवन में कोई दिशा नहीं हो सकती। तुम तो ऐसे हो जैसे कोई आदमी भीड़ में धक्के में चलता है। वह चल भी नहीं रहा; लेकिन भीड़ इतना धक्का दे रही है कि खड़ा भी नहीं रह सकता। कोई बाएं धक्का देता है तो वह बाएं चला जाता है; कोई दाएं धक्का देता है तो वह दाएं चला जाता है। तुम्हारी पूरी जिंदगी भीड़ में चलती हुई है। तुम गौर से देखो, समझ में आ जाएगा। कोई कुछ कह रहा है, वह तुम करते हो। फिर कोई कुछ और कहता है, वह तुम करते हो। फिर तुम्हारे भीतर इतने विरोधाभास हो जाते हैं।
एक आदमी मेरे परिचित हैं। चोट लग गई थी; थोड़ी सी चोट थी, रिक्शा उलट गया था। फिर अस्पताल से भी छूट गए। फिर छह महीने भी बीत गए। भले-चंगे भी हो गए। लेकिन फिर भी वे अपनी बैसाखी... । तो मैं उनको पूछा कि अब ये बैसाखी कब छोड़ोगे? वे कहते हैं, छोड़ना तो मैं भी चाहता हूं। मेरा डाक्टर कहता है, बेकार है। लेकिन मेरा वकील कहता है, अभी रखो, जब तक मुकदमा तय न हो जाए। तो किसकी सुनूं?
तुम्हारा वकील कुछ कहता है, तुम्हारा डाक्टर कुछ कहता है; पत्नी कुछ कहती है, पति कुछ कहता है; बेटा कुछ कहता है, बाप कुछ कहता है। चारों तरफ तुम्हें चलाने वाले मालिक हैं--करोड़ों मालिक हैं और तुम अकेले हो! और तुम सबकी सुनते हो। जो भी दबा देता है, उसी की सुनते हो। तब तुम्हारे भीतर सब दरारें पड़ जाती हैं; खंड-खंड हो जाता है व्यक्तित्व। जब तक तुम भीतर की न सुनोगे तब तक तुम अखंड नहीं हो सकते।
मैं संन्यासी उसे कहता हूं, जिसने भीतर की आवाज सुननी शुरू कर दी और
जब वह भीतर की आवाज पर सब दांव लगाने को राजी है।

लेकिन भीतर की आवाज तुम्हें समझ में भी न आएगी, जब तक तुम बेहोश हो। तब
तक अगर तुमने भीतर की आवाज समझी भी कि यह भीतर की है, तो वह भीतर की न होगी, वह भी बाहर की ही आवाज होगी। बेहोश आदमी को भीतर की आवाज का क्या पता! नहीं तो दिल्ली में बैठे सभी राजनीतिज्ञ अंतरात्मा की आवाज की बात करते हैं। इंदिरा गिरी--अंतरात्मा की आवाज! अंतरात्मा का पता कैसे सोए हुए आदमी को? कौन सी आवाज अंतरात्मा की है, तुम्हें कैसे पता? जो भी आवाज तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करती मालूम पड़ती है--अंतर-वासना की आवाज--उसे तुम अंतरात्मा की आवाज कहते हो।
सिर्फ जागे हुए आदमी के भीतर कोई आवाज होती है। और वह आवाज तुम्हें मिल जाए तो तुम्हारे जीवन में सब जो कलुष है, वह जो उपद्रव है, वह जो हजार तरह के विक्षिप्त स्वर हैं; कि तुम एक भीड़ हो गए हो, एक व्यक्ति नहीं; तुम एक बाजार की तरह हो, जिसमें सब चल रहा है। बंबई का शेयर बाजार हो तुम, सब चल रहा है। कुछ समझ में नहीं आता। कोई नये आदमी को तो समझ में ही न आए कि तुम क्या हो। कोई कुछ चिल्ला रहा है, कोई कुछ चिल्ला रहा है। सब तरह की आवाजें हैं। तुम्हारी आवाज बिल्कुल खो गई है।
तुर्यावस्था का अर्थ है आत्मा को पहचानना। और इन तीन से तुम अपने को तोड़ो, तो ही तुम आत्मा को पहचान सकोगे। छोटे-छोटे प्रयोग शुरू करो। क्रोध आए, रुको; जल्दी क्या है! घृणा आए, थोड़ा रुको; थोड़ा संधिकाल चाहिए। तभी उत्तर दो जब कि तुम होश में आ जाओ। उसके पहले उत्तर मत दो। और तुम पाओगे कि तुम्हारी जिंदगी से पाप खोना शुरू हो गया; गलत अपने आप विसर्जित होने लगा। तुम अचानक पाओगे कि अब क्रोध का उत्तर देने की कोई जरूरत न रही। यह भी हो सकता है कि जिसने तुम्हारा अपमान किया था, तुम उसे धन्यवाद देने भी जाओ; क्योंकि उसने भी तुम्हारा उपकार किया है, तुम्हें एक जागने का मौका दिया है।
कबीर ने कहा हैः निंदक नियरे रखिए, आंगन-कुटी छवाय।
वह जो तुम्हारी निंदा कर रहा है, उसे तुम पास में ही सम्हाल कर इंतजाम
कर दो। उसको घर में ही ठहरा लो; क्योंकि वह तुम्हें जागने का मौका देगा। जो-जो तुम्हें मूर्च्छित होने का मौका देता है, अगर तुम चाहो तो उसी मौके को तुम जागरण की भी सीढ़ी बना सकते हो। जिंदगी ऐसे है जैसे रास्ते पर एक बड़ा पत्थर पड़ा हो। जो नासमझ हैं, वे पत्थर को देख कर लौट जाते हैं। वे कहते हैं, रास्ता बंद है। जो समझदार हैं, वे पत्थर पर चढ़ जाते हैं। वे उसको सीढ़ी बना लेते हैं। और जैसे ही सीढ़ी बना लेते हैं, और भी ऊपर का रास्ता उन्मुक्त हो जाता है।
साधक के लिए एक ही बात स्मरण रखनी है कि जीवन का हर क्षण जागृति के लिए उपयोग कर लिया जाए। चाहे भूख हो, चाहे क्रोध हो, चाहे काम हो, चाहे लोभ हो-- हर स्थिति को जागरण के लिए उपयोग कर लिया जाए। रत्ती-रत्ती तुम इस तरह इकट्ठा करोगे जागरण, तो तुम्हारे भीतर ईंधन इकट्ठा हो जाएगा। उस ईंधन से जो ज्वाला पैदा होती है, उसमें तुम पाओगे कि तुम न तो जाग्रत हो, न तुम स्वप्न हो, न तुम सुषुप्ति हो; तुम तीनों के पार पृथक हो।
"ज्ञान का बना रहना ही जाग्रत अवस्था है।"
बाहर की वस्तुओं के ज्ञान का बना रहना जाग्रत अवस्था है।
"विकल्प ही स्वप्न हैं।"
मन में विचारों का तंतुजाल विकल्पों का, कल्पनाओं का फैलाव स्वप्न है।
"अविवेक अर्थात स्व-बोध का अभाव सुषुप्ति है।"
ये तीन अवस्थाएं हैं, जिनमें हम गुजरते हैं। लेकिन जब हम एक से गुजरते हैं, तो हम उसी के साथ एक हो जाते हैं। जब हम दूसरे में पहुंचते हैं, तो हम दूसरे के साथ एक हो जाते हैं। जब हम तीसरे में पहुंचते हैं, तो तीसरे के साथ एक हो जाते हैं। इसलिए हम तीनों को अलग-अलग नहीं देख पाते। अलग देखने के लिए थोड़ा फासला चाहिए, परिप्रेक्ष्य चाहिए। अलग देखने के लिए थोड़ी सी जगह चाहिए। तुम्हारे, और जिसे तुम देखते हो, दोनों के बीच में थोड़ा रिक्त स्थान चाहिए। तुम आईने में भी अगर बिल्कुल सिर लगा कर खड़े हो जाओ, तो अपना प्रतिबिंब न देख पाओगे; थोड़ी दूरी चाहिए। और तुम इतने निकट खड़े हो जाते हो--जाग्रत के, स्वप्न के, सुषुप्ति के--कि तुम बिल्कुल एक ही हो जाते हो।

तुम उसी के रंग में रंग जाते हो। और यह दूसरे के रंग में रंग जाने की आदत हमारी इतनी गहन हो गई है कि हमें पता भी नहीं चलता और इसका शोषण किया जाता है।
अगर तुम हिंदू हो, और तुमसे कहा जाए कि यह मस्जिद खड़ी है, इसमें आग लगा दो! तुम हजार बार सोचोगे, विचार करोगे, कि यह क्या उचित है? और मस्जिद भी उसी परमात्मा के लिए समर्पित है। ढंग होगा और, सीढ़ी का रंग होगा और, रास्ते की व्यवस्था होगी और; लेकिन मंजिल वही है। लेकिन हिंदुओं की एक भीड़ मस्जिद को आग लगाने जा रही हो, तुम उस भीड़ में हो, तब तुम नहीं सोचते; क्योंकि तुम भीड़ के रंग में रंग जाते हो। तब तुम मस्जिद को जला दोगे। और बाद में कोई अगर तुमसे पूछेगा कि तुम यह कैसे कर सके? तो तुम भी सोचोगे और कहोगे कि यह आश्चर्य है कि मैं कैसे कर सका! अकेले तुम यह न कर पाते। लेकिन भीड़ में तुम क्यों खो गए? क्योंकि खोने की तुम्हारी आदत है।
कोई मुसलमान इतना बुरा नहीं है अकेले में, जितना भीड़ के साथ बुरा होता है। कोई हिंदू इतना बुरा नहीं है अकेले में, जितना भीड़ के साथ बुरा होता है। किसी अकेले आदमी ने इतने पाप नहीं किए, जितने भीड़ ने पाप किए हैं। क्यों? क्योंकि भीड़ तुम्हें रंग देती है। तुम भीड़ के रंग में एक हो जाते हो। अगर भीड़ क्रोध से भरी है, तुम अचानक पाते हो, तुम्हारे भीतर क्रोध जग रहा है। अगर भीड़ रो रही है, चीख रही है, चिल्ला रही है, तो तुम रोने, चीखने- चिल्लाने लगते हो। अगर भीड़ प्रसन्न है, तुम अपना दुख भूल जाते हो और प्रसन्न हो जाते हो।
ख्याल करो, तुम किसी के घर गए हो, कोई मर गया है, वहां अनेक लोग रो रहे हैं। अचानक तुम पाते हो, तुम्हारे भीतर भी रुदन उठा आ रहा है। शायद तुम सोचते होओगे कि तुम बड़े करुणावान हो। शायद तुम सोचते हो कि तुम बड़ी दया और प्रेम से भरे हुए व्यक्ति हो। शायद तुम सोचते हो कि सहानुभूति के कारण ये आंसू आ रहे हैं। तो तुम गलती में हो। क्योंकि घर भी तुमने यह खबर सुनी थी कि वह आदमी मर गया। तब तुम्हें कुछ भी न हुआ था, क्योंकि तुम अकेले थे। तब तुमने सोचा होगा कि ठीक है, मरना-जीना लगा ही रहता है। बजाय इसके कि यह आदमी मर गया, इससे तुम्हें दुख होता, तुम्हें यही झंझट आई होगी कि अब जाना पड़ेगा और संवेदना प्रकट करनी पड़ेगी। और पच्चीस दूसरे काम थे, अब यह एक और उपद्रव बीच में आ गया। और यह आदमी था ही ऐसा, बेवक्त मरा। कोई वक्त था आज मरने का! ये तुम्हारे विचार रहे होंगे। लेकिन तुम जब घर में पहुंचोगे और वहां तुम लोगों को रोते देखोगे, भीड़ जब वहां दुखी हो रही होगी, तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर भी बड़े भाव उठ रहे हैं। ये भाव दो कौड़ी के हैं और खतरनाक हैं; क्योंकि भीड़ तुम्हें रंगे दे रही है। तुम अपने को बचाना। ऐसी सहानुभूति किसी मतलब की नहीं है, जो भीड़ से आती हो, जो तुम्हारे हृदय से न आती हो।
तुमने देखा कि दुखी, बेचैन, परेशान लोग भी होली के हुल्लड़ में बड़े आनंदित दिखाई पड़ने लगते हैं! वे भी नाचने-गाने लगते हैं, गुलाल उड़ाने लगते हैं। जिनकी जिंदगी में गुलाल बिल्कुल भी नहीं है और जिनकी जिंदगी में कभी कोई खुशी और कोई गीत नहीं देखा गया, अचानक रास्तों पर रंग फेंक रहे हैं। हुआ क्या इनको? यही आदमी कल चला जा रहा था मरा-मरा, इसका पैर नहीं उठ रहा था; इसकी जिंदगी ऐसी थी जैसे सुषुप्त। और यही आदमी आज नाच रहा है! भीड़ ने रंग दिया इसे।
साधक को भीड़ से सावधान होना चाहिए। तुम अपनी आवाज खोजो, अपना स्वर खोजो। भीड़ तुम्हें सदा से धक्के दे रही है। और तुम भीड़ के साथ, जो भीड़ तुम्हें बनाती है, वही तुम हो जाते हो। यह क्यों हो पाता है? यह इसीलिए हो पाता है कि तुम पृथकता अपनी अनुभव नहीं करते और जहां भी तुम्हें अपनी पृथकता खोने का मौका मिलता है, तुम तत्क्षण खो देते हो। तुम उधार बैठे हो कि कहीं भी डूब जाओ। नींद आई तो नींद में डूब गए। जाग्रत आया तो जाग्रत में डूब गए। स्वप्न आया तो स्वप्न में डूब गए। लोग दुखी हैं तो तुम दुखी हो गए। लोग सुखी हैं तो तुम सुखी हो गए। तुम हो? या सिर्फ तुम एक डूबने का बिंदु हो? तुम्हारा कोई अस्तित्व है? तुम्हारा कोई केंद्र है?
उस केंद्र का नाम ही आत्मा है। अपने अस्तित्व को जगाओ। डूबने से बचो।
इसीलिए सारे धर्म शराब के विरोध में हैं। शराब में ऐसी कोई खराबी नहीं है।

लेकिन सभी धर्म विरोध में हैं। कारण कुल इतना ही है कि वह डूबने का रास्ता है। सभी धर्म जगाने के पक्ष में हैं। और जो आदमी शराब पी रहा है, वह डूब रहा है। जो-जो चीजें डुबाती हैं तुम्हें, जिन-जिन चीजों से तुम और भी ज्यादा मूर्च्छित होते हो। तुम वैसे ही काफी मूर्च्छित हो, रत्ती भर तुममें जरा सा होश है, तुम उसी को भी खोने के लिए तैयार रहते हो।
और आश्चर्य की बात तो यह है कि जब भी तुम उसे खो देते हो, तभी तुम प्रसन्न होते हो। तुम जैसा मूढ़ खोजना असंभव है; क्योंकि जब तुम उसे खो देते हो, तभी तुम कहते हो कि बड़ा आनंद है। क्यों? क्योंकि वह जो थोड़ा सा होश है, वह तुम्हें जिंदगी की समस्याओं को दिखने में सहायता देता है। वह तुम्हें जिंदगी के प्रति चैतन्य बनाता है और चिंता से भरता है। वह तुम्हें होश से भरता है कि तुम होश में नहीं हो। वह जो छोटी सी तुम्हारे भीतर किरण है, वह तुम्हारे अंधकार को प्रकट करती है, जो कि गहन है। तुम उस किरण को भी बुझा देना चाहते हो कि न रहेगी किरण--न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी--न रहेगी किरण, न अंधेरे का पता चलेगा। क्योंकि उस किरण की वजह से अंधेरा पता चलता है, हटाओ इस किरण को, पी लो शराब, डूब जाओ किसी भीड़ के उपद्रव में, राजनीति में, इसमें, उसमें, कहीं भी अपने को लगा दो, ताकि तुम अपने को भूल जाओ।
पश्चिम के मनोवैज्ञानिक लोगों को कहते हैं कि तुम अगर अपने को भुला सको, तो ही तुम स्वस्थ रह सकोगे। और पूरब के धर्मगुरुओं ने कहा है कि तुम अपने को जगा सको, तो ही तुम स्वस्थ हो सकोगे। बड़ी उलटी बातें हैं। लेकिन दोनों बातें सार्थक हैं। पश्चिम का मनोवैज्ञानिक, तुम जैसे हो, उसको स्वीकार करता है। तुम जैसे हो, ऐसे ही तुम रह सको, जी सको, किसी तरह गुजार सको जिंदगी, उसमें सहायता पहुंचाता है। वह ठीक कह रहा है। वह कह रहा है कि किसी तरह अपने को भुला दो। ज्यादा चैतन्य खतरनाक है; क्योंकि तुम चिंता से भर जाओगे; क्योंकि तब तुम्हें सब चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी। और कुछ भी ठीक नहीं है इस जिंदगी में; सब गड़बड़ है, सब अस्तव्यस्त है। तो बेहतर है तुम आंख बंद कर लो, प्रसन्न रहो। क्या जरूरत है इस सारी समस्या को देखने की!
लेकिन पूरब के धर्मगुरु तुम्हें स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, तुम
तो रुग्ण हो। तुम तो विक्षिप्त हो ही। तुम्हें पहले शांति की जरूरत नहीं है। कोई चिंता नहीं अगर चिंता बढ़े और तुम्हारे भीतर बेचैनी आए, कोई हर्ज नहीं; क्योंकि उसी के द्वारा तुम बदलोगे, क्रांति होगी।
यह तो ऐसा है जैसे एक आदमी कैंसर से पड़ा है, और हम कुछ भी नहीं कर सकते,
तो हम उसको मार्फिया देते हैं कि तुम अपना आराम से तो पड़े रहो।
लेकिन पूरब के धर्मगुरु कहते हैं, मार्फिया से जीवन-क्रांति नहीं होती। जगाओ! रूपांतरण हो सकता है। और आदमी जैसा है, यह उसकी अंतिम अवस्था नहीं है। यह उसकी प्रथम अवस्था तक नहीं है। यह तो यात्रा के बिल्कुल बाहर ही खड़ा है--द्वार के। अभी इसने भीतर प्रवेश भी नहीं किया। महा आनंद की संभावना है। लेकिन तुम जैसे हो, सोए, इससे महा आनंद नहीं होगा।
सुख और आनंद का फर्क समझ लो। सुख उस अवस्था का नाम है, जब तुम्हारे भीतर जो छोटी सी किरण जाग गई है, वह भी सो जाती है। तब तुम्हें कोई दुख पता नहीं चलता। आनंद उस अवस्था का नाम है, जब तुम्हारे भीतर जो छोटी सी किरण है, वह महासूर्य हो जाती है और अंधकार पूरा खो जाता है। सुख नकारात्मक, निगेटिव है--दुख का पता न चलना।
तुम्हारे सिर में दर्द है; एस्प्रो की टिकिया सुख है, आनंद नहीं। क्योंकि एस्प्रो की टिकिया तुम्हें सिर्फ दर्द पता नहीं चलने देती। वह तुम्हें बेहोशी दे देती है। तुम बीमार हो, तुम परेशान हो, जिंदगी चिंता से भरी है--तुम शराब पी लेते हो, फिर सब ठीक है। दुखी शराबी जाता है शराबघर की तरफ, लौटता है नाचता-गाता। तुम्हारी जो छोटी सी प्रकाश की किरण है, उसे खोकर तुम सुख खरीदते हो। उससे तुम्हें आनंद कभी भी न मिलेगा। क्योंकि सुख सिर्फ दुख का भूल जाना है, विस्मरण है। और आनंद आत्मा का स्मरण है। वह भूल जाना नहीं है; वह पूरी स्मृति है। कबीर ने उसे सुरति कहा है। वह पूर्ण स्मरण है।

ये सूत्र तुम्हें पूर्ण स्मरण की तरफ ले जाएंगे। तो ध्यान रखना, जो चीज बेहोश करती हो, उससे बचना। और बेहोश करने के इतने सुगम उपाय हैं कि तुम्हें पता भी नहीं है; तुम उनमें इतने ज्यादा ग्रस्त हो गए हो कि तुम्हें ख्याल भी नहीं है।
एक आदमी खाने के पीछे पागल है। वह खाता ही रहता है। तुम्हें ख्याल नहीं है कि वह खाने से शराब का उपयोग कर रहा है। ज्यादा भोजन निद्रा लाता है। ज्यादा भोजन सुषुप्ति देता है। इसलिए अगर किसी दिन तुमने उपवास किया तो रात तुम सो न सकोगे। क्योंकि भोजन की एक अपनी तंद्रा है। तो जो आदमी चौबीस घंटे खाने में लगा है, वह खाने के माध्यम से बेहोशी खोज रहा है।
एक आदमी महत्वाकांक्षा की यात्रा में लगा है। वह कहता है कि जब तक करोड़ रुपये न हों तब तक मैं रुकने वाला नहीं। तब तक वह दीवाने की तरह लगा है--सुबह हो, रात हो, दिन हो, अंधेरा हो, उजेला हो, कुछ फिक्र नहीं, उसके मन में एक गणित चल रहा है--एक करोड़! उस एक गणित के प्रति समर्पित है। उसे कोई चिंता नहीं घेरती। उसे कोई चिंता नहीं, बस उसको एक करोड़! उसको चिंता उस दिन घेरेगी जब वह एक करोड़ पाने में सफल हो जाएगा। तब अचानक वह पाएगा कि बेकार गए; अब क्या करना है!
मैंने सुना है, एक पागलखाने में तीन आदमी बंद थे--एक ही कोठरी में; क्योंकि एक ही साथ पागल हुए थे, और तीनों पुराने साथी थे। एक-दूसरे को रंग दिया होगा। एक मनोवैज्ञानिक उनका अध्ययन करने आया था। तो उसने पागलखाने के डाक्टर को पूछा कि इनमें नंबर एक की क्या तकलीफ है? उसने कहा, यह नंबर एक, एक रस्सी में लगी हुई गांठ को खोलने का उपाय कर रहा था और खोल नहीं पाया--उसी में पागल हुआ।
और यह दूसरा क्या कर रहा था?
यह भी वही गांठ खोल रहा था रस्सी में लगी और खोलने में सफल हो गया, और इसीलिए पागल हुआ।
वह मनोवैज्ञानिक थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, और ये तीसरे सज्जन?
उसने कहा, ये वे सज्जन हैं, जिन्होंने गांठ लगाई थी।
कोई गांठ लगा रहा है, कोई गांठ खोल रहा है; कोई सफल हो जाता है, कोई असफल हो जाता है--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; सब पागल हो जाते हैं।
लेकिन लोग गांठ लगाने-खोलने में उलझे क्यों हैं?
अपने से बचने के लिए। स्वयं से बचने की तरकीबें हैं! नहीं तो स्वयं का सामना करना पड़ेगा। न कोई महत्वाकांक्षा है, न दिल्ली जाना है, न कोई राजनीति करनी है, न कोई चुनाव लड़ना है, न धन कमाने का कोई पागलपन है--फिर आप अपने से कैसे बचोगे? फिर कहीं न कहीं खुद से मिलना हो जाएगा। वह भय है कि कहीं खुद से मिलना न हो जाए! उससे हाथ-पैर कंपते हैं।
तुम सुनते हो बहुत कि आत्मा को जानो; लेकिन अगर तुम खुद को समझोगे तो तुम आत्मा को जानने से बचने के सब उपाय करते हो। कहते हैं बुद्ध पुरुष कि आत्मा को जानने से महा आनंद की वर्षा होती है, अमृत बरसता है। कबीर कहते हैं कि बादल गरजते हैं अमृत के और अमृत बरसता है। लेकिन यह घटना बहुत अंत में घटती है, पहले तो बहुत दुख से गुजरना पड़ता है। क्योंकि तुमने जितने धोखे दिए हैं जिंदगी में, अनंत जन्मों में, उन सब धोखों को तोड़ना पड़ेगा। और हर धोखे के तोड़ने में दुख होता है। हर धोखे को तोड़ने में दुख होता है; क्योंकि धोखे ने एक मधुरता दी थी, एक नींद दी थी, एक बेहोशी दी थी, और अब उसको तोड़ो! और बिना उनको तोड़े तुम पहुंच न पाओगे उस जगह, जहां आकाश अमृत के बादलों से भर जाता है और जहां आनंद की वर्षा होती है। वह बीच का मार्ग ही तपश्चर्या है।
जागने से शुरू करो तुम्हारे तप को; फिर स्वप्न में ले जाओ; फिर सुषुप्ति में ले जाओ।
"विकल्प स्वप्न हैं।"
चित्त का विकल्पों से भरे रहना स्वप्न की दशा है। तो यह मत सोचना कि तुम रात में ही सपना देखते हो, तुम दिन में भी देखते रहते हो। जरूरी नहीं है कि तुम यहां बैठे हो तो तुम यहां बैठे हो, हो सकता है कि तुम मुझे सुन भी रहे हो और सपना भी देख रहे हो। तुम्हारे भीतर चौबीस घंटे, एक अंतर्धारा सपने की चलती रहती है। जागने में भी भीतर तो एक सपना तुम्हें घेरे ही रहता

है, कुछ न कुछ चलता ही रहता है। कभी भी आंख बंद करो और तुम पाओगे कि भीतर कुछ चल रहा है।
यह हालत ऐसी ही है जैसे रात में तो आकाश में तारे दिखाई पड़ते हैं, दिन में दिखाई नहीं पड़ते; क्योंकि सूरज के प्रकाश में ढंक जाते हैं। इससे तुम यह मत समझना कि खो जाते हैं; वे अपनी जगह हैं। खोएंगे कहां! जाएंगे कहां! तुम किसी गहरे कुएं में चले जाना और गहरे कुएं में से खड़े होकर दिन में देखना, तो तुम्हें तारे आकाश में दिन में भी दिखाई पड़ जाएंगे। क्योंकि तारों को देखने के लिए अंधेरा चाहिए। सूरज की रोशनी की वजह से तारे दिखाई नहीं पड़ते।
यही हालत स्वप्न की है। रात में ही सपने दिखाई पड़ते हैं, ऐसा नहीं है। लेकिन रात का अंधकार चाहिए; आंख बंद हों तो दिखाई पड़ते हैं। दिन में आंखें खुली हैं, पच्चीस और काम करने जरूरी हैं। सपने तो भीतर बने रहते हैं, दिखाई नहीं पड़ते। दिन में भी तुम अगर आरामकुर्सी पर आंख बंद करके बैठ जाओ, तत्क्षण दिवा-स्वप्न शुरू हो जाएगा। वह चल ही रहा था। वह भीतर चलता ही रहता है। उसका एक अंतर-सूत्र है।
इस अंतर-सूत्र को तोड़ना बहुत जरूरी है; क्योंकि दिन में तुम तोड़ सको
तो रात में तोड़ पाओगे। दिन में ही न तोड़ सके तो रात में कैसे तोड़ोगे! सभी मंत्रों का उपयोग इस अंतर-सूत्र को तोड़ने के लिए किया जाता है। जैसे कि कोई एक आदमी को मंत्र दे दिया उसके गुरु ने कि तू काम कर, बाजार जा, सामान बेच, खरीद; लेकिन भीतर राम, राम, राम की अंतर्ध्वनि चलने दे।
यह क्या है? अगर तुम काम करते वक्त भीतर राम की अंतर्ध्वनि चलने दो तो
वह जो शक्ति स्वप्न बनती थी, स्वप्न की धारा बनती थी, वह राम की धारा बन जाएगी। क्योंकि वही शक्ति है जो भीतर सपना बनती है। तो भीतर तुमने एक अपना ही सपना पैदा कर लिया--राम, राम, राम, राम। बाहर तुम सब काम करते हो और भीतर तुम राम का अनुस्मरण करते हो। तो वह जो शक्ति तुम्हारे भीतर खाली पड़ी सपना देखती थी, वह राम का स्मरण बन जाएगी। इससे कुछ राम नहीं मिल जाएंगे; लेकिन सपने के तोड़ने में सहायता मिलेगी। और जिस दिन तुम रात नींद में भी पाओगे कि सपना नहीं चल रहा, बल्कि राम की धारा चल रही है, उस दिन समझ लेना कि दिन में सपना टूट गया।
तो मंत्र की सफलता नींद में पता चलती है, दिन में पता नहीं चलती। कैसे पता चलेगी! अगर तुम दिन भर राम का जप करते रहे हो, तो रात सोते समय सपना पैदा नहीं होगा, राम की धारा चलेगी। यह धारा इतनी सघन हो सकती है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वामी राम "राम-राम" जपते रहते थे। तो एक रात हिमालय में ठहरे वे अपने एक मित्र के पास--सरदार पूर्णसिंह के पास। अकेली कोठरी में थे। दूर पहाड़ में बनी कोठरी थी। वहां कोई पास था भी नहीं मीलों तक। सरदार पूर्णसिंह को कुछ नींद नहीं आई--कुछ मच्छर थे, कुछ गर्मी थी। तो वे बड़े हैरान हुए कि राम, राम, राम की आवाज चल रही है कोठरी में। स्वामी राम तो सो गए हैं। तो वे उठे, थोड़ा भय भी लगा कि यहां कोई तीसरा आदमी तो है नहीं, और यह राम की आवाज! तो दीया लेकर सब तरफ देख आए, बाहर कोई भी नहीं है। कमरे में फिर आए तो और हैरानी हुई कि बाहर आवाज कम सुनाई पड़ती, कमरे में ज्यादा सुनाई पड़ती। और जैसे राम की खाट के पास पहुंचे तो आवाज और ज्यादा सुनाई पड़ने लगी।
तो उन्होंने दीये से राम को देखा कि कहीं वे जाग कर राम का स्मरण तो नहीं कर रहे हैं! तो वे तो गहरी नींद में सो रहे हैं, घर्राटा आ रहा है। तो वे बहुत हैरान हुए। करीब आकर बैठ गए, कान लगा कर सुनने लगे--पूरे शरीर के रोएं-रोएं से राम की आवाज आ रही है।
अगर अनुस्मरण बहुत गहरा हो जाए तो यह घटना घटती है; क्योंकि स्वप्न में बड़ी ऊर्जा नष्ट हो रही है। तुम्हारे सपने मुफ्त तुम्हें नहीं मिले हैं। उनमें है कुछ भी नहीं, लेकिन कीमत बहुत चुकानी पड़ी है। क्योंकि रात भर तुम सपना देखते हो।
अभी स्वप्न पर बड़ी वैज्ञानिक शोध होती है। तो वैज्ञानिक कहते हैं कि रात में हर आदमी--साधारण स्वस्थ आदमी--कम से कम आठ सपने देखता है। और एक सपने का अंतराल करीब-करीब पंद्रह मिनट का होता है। एक सपना पंद्रह मिनट, तो आठ सपने का मतलब हुआ कि कम से कम दो घंटे रात सपना देखा जा रहा है। और यह

बिल्कुल सामान्य स्वस्थ आदमी, जिसमें कोई मानसिक विकार नहीं है! ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है। आम आदमी तो रात के आठ घंटे की नींद में करीब-करीब छह घंटे सपना देखता है। यह छह घंटे जो सतत सपने की धारा भीतर चल रही है, इसमें तुम्हारी शक्ति नष्ट हो रही है। यह मुफ्त नहीं है। यह तुम खरीद रहे हो अपने जीवन को देकर।
मंत्र इस शक्ति को राम में केंद्रित कर लेता है--या कृष्ण में या क्राइस्ट में या ओंकार में--कोई भी शब्द काम दे देगा। कोई जरूरत नहीं है भगवान का नाम, खुद का नाम भी अगर तुमने दोहराया तो काम दे देगा।
अंग्रेज कवि हुआ--टेनिसन। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे बचपन से ही न मालूम कैसे यह हो गया कि जब मुझे नींद न आती थी तो मैं अपने को जोर-जोर से कहता थाः टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। और मुझे नींद आ जाती। फिर मुझे तरकीब हाथ पड़ गई कि जब भी मैं बेचैन होता तो मैं भीतर कहताः टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। मेरी बेचैनी खो जाती। फिर मैंने इसका मंत्र बना लिया। अपना ही नाम भी अगर तुम लोगे तो उतना ही लाभ हो सकता है। हालांकि होगा नहीं; क्योंकि तुम्हें अपने नाम पर उतना भरोसा नहीं हो सकता। बाकी फर्क कुछ भी नहीं है। राम कहो, रहीम कहो--उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई भी नाम हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल नाम का नहीं है। शब्द सभी एक जैसे हैं। और सभी नाम परमात्मा के हैं, तुम्हारा नाम भी। कोई भी एक शब्द को पकड़ कर अगर दोहराया जाए तो उसका एक संगीत भीतर पैदा हो जाता है, एक ध्वनि पैदा हो जाती है। उस ध्वनि में स्वप्न की जो ऊर्जा है, वह लीन हो जाती है।
मंत्र स्वप्नों को नष्ट करने के उपाय हैं। उनसे कोई परमात्मा को नहीं पाता। लेकिन स्वप्न को नष्ट करना परमात्मा को पाने के मार्ग पर बड़ा कदम है। मंत्र एक प्रक्रिया है, एक विधि है, एक औजार है, एक हथौड़ी है, जिससे हम सपनों को चकनाचूर कर देते हैं।
और सपने भी क्या हैं, शब्द हैं! इसलिए शब्दों की हथौड़ी उन्हें चकनाचूर
कर सकती है। उनके लिए कोई लोहे की असली हथौड़ी भीतर ले जाने की जरूरत भी नहीं है। नकली हैं, नकली हथौड़ी काम कर देगी। नकली बीमारी के लिए असली दवाई हमेशा खतरनाक है। नकली बीमारी के लिए नकली दवाई ही उचित होती है; क्योंकि वही उसको नष्ट कर सकती है।
स्वप्न क्या हैं? विकल्प हैं! और मंत्र क्या है? मंत्र संकल्प है। वह
भी विकल्प का ही एक रूप है। लेकिन स्वप्न बदलते हुए हैं, क्षणभंगुर हैं; मंत्र सतत है और एक ही है। धीरे-धीरे सभी स्वप्नों की ऊर्जा मंत्र में लीन हो जाती है। और जिस दिन रात्रि में नींद में भी स्वप्न न आए, मंत्र चलने लगे, तुम समझना कि तुमने स्वप्न पर विजय पा ली। तुम समझना कि तुम्हारा सपना टूटा, सत्य शुरू हुआ। उसके बाद सुषुप्ति में प्रवेश हो सकता है। लेकिन तुम उलटा ही कर रहे हो। तुम विकल्पों को शक्ति देते हो। तुम्हारे भीतर व्यर्थ के विचार चलते हैं, उनको भी तुम साथ देते हो। बैठे हो खाली तो यही सोचने लगते हो कि अगले इलेक्शन में खड़े हो जाएं। फिर सपना शुरू हुआ। फिर राष्ट्रपति हुए बिना काम नहीं चलेगा। फिर तुम सपने में राष्ट्रपति हो जाते हो, स्वागत समारोह हो रहे हैं, और तुम इस सबका रस ले रहे हो। तुम कभी भी नहीं सोचते कि कैसी मूढ़ता है! क्या तुम कर रहे हो! तुम एक व्यर्थ के विकल्प को ऊर्जा दे रहे हो, साथ दे रहे हो। और ऐसे ही व्यर्थ के विकल्पों से भरा हुआ तुम्हारा चित्त है।
अगर हम आदमी के जीवन की पूरी खोजबीन करें, तो निन्यानबे प्रतिशत इसी तरह के सपनों में खो जाता है। धन के सपने, साम्राज्य के सपने, शक्ति के सपने--तुम पा भी लोगे तो क्या मिलेगा!
अमरीका का एक बहुत प्रसिद्ध प्रेसीडेंट हुआ--कालविन कूलिज। बड़ा शांत आदमी था। भूल से ही वह राष्ट्रपति हो गया; क्योंकि उतने शांत आदमी उतनी अशांत जगहों तक पहुंच नहीं सकते। वहां पहुंचने के लिए बिल्कुल पागल दौड़ चाहिए। वहां जो जितना ज्यादा पागल, वह छोटे पागलों को दबा कर आगे निकल जाता है। कूलिज कैसे पहुंच गया, यह चमत्कार है। बिल्कुल शांत आदमी था--न बोलता, न चालता। कहते हैं किसी-किसी दिन ऐसा हो जाता कि दस-पांच शब्दों से ज्यादा न बोलता। जब दुबारा फिर राष्ट्रपति के चुनाव का समय आया तो मित्रों ने कहा कि तुम फिर खड़े हो जाओ। उसने कहा कि नहीं। तो उन्होंने कहा

कि क्या बात है? पूरा मुल्क राजी है तुम्हें फिर से राष्ट्रपति बनाने को। उसने कहा कि अब नहीं, एक बार भूल हो गई काफी; पहुंच कर कुछ भी न पाया। अब पांच साल और खराब मैं न करूंगा। और फिर राष्ट्रपति के आगे बढ़ती का कोई उपाय भी नहीं है। जो रह चुके, रह चुके; अब उसके आगे जाने की कोई जगह भी नहीं है। जगह होती आगे तो शायद सपना बना रहता।
इसलिए तुम्हें पता नहीं है, जो लोग सफल हो जाते हैं सपनों में, उनसे ज्यादा असफल आदमी खोजना मुश्किल है। क्योंकि सफलता की आखिरी कगार पर उन्हें पता चलता है कि जिसके लिए दौड़े, भागे, पा लिया, यहां कुछ भी नहीं है। यद्यपि अपनी मूढ़ता छिपाने को, वे पीछे जो लोग अभी भी दौड़ रहे हैं, उनकी तरफ देख कर मुस्कुराते रहते हैं, हाथ हिलाते रहते हैं, विजय का प्रतीक बताते रहते हैं। वे हार गए हैं, और विजय का प्रतीक बताते रहते हैं--जो पीछे नासमझ अभी और दौड़ रहे हैं।
अगर दुनिया के सभी सफल लोग ईमानदारी से कह दें कि उनकी सफलता से उन्हें कुछ भी न मिला है, तो बहुत से व्यर्थ सपनों की दौड़ बंद हो जाए। लेकिन यह उनके अहंकार के विपरीत है कि वे कहें कि उन्हें कुछ भी नहीं मिला। पीछे तो वे यही बताते रहते हैं कि उन्होंने परम आनंद पा लिया है। वह जिसकी पूंछ कट गई हो, वह दूसरों की पूंछ कटवाने का इंतजाम करता रहता है। अन्यथा पुंछकटा अकेला होगा तो बड़ी ग्लानि होगी। सबकी कट जाए।
जब भी तुम्हारे भीतर स्वप्न की धारा चले, तब जरा जाग कर देखना कि क्या तुम कर रहे हो! बच्चे शेखचिल्लियों की कहानियां पढ़ते हैं, वे सब कहानियां तुम्हारे संबंध में हैं। मन शेखचिल्ली है। और जब तक तुम स्वप्न देखते हो तब तक तुम शेखचिल्ली रहोगे। शेखचिल्ली का मतलब है व्यर्थ के सपने देख रहा है और उन सपनों को सच मान रहा है। भगवान न करे कि वे सपने सच हो जाएं; क्योंकि उनको सच करने में बड़ी शक्ति लगानी पड़ेगी, और जब वे सच हो जाएंगे, तब तुम पाओगे, उनसे कुछ भी न पाया। हाथ राख लगती है सदा। इस संसार की सभी सफलताएं राख में बदल जाती हैं। लेकिन जब तक राख हाथ में आती है, तब तक जीवन हाथ से निकल चुका होता है; लौटने का उपाय नहीं होता। और तब तो सिर्फ छिपाने की बात रह जाती है कि लोगों से छिपा लो कि तुम्हारा जीवन व्यर्थ नहीं गया; तुम बड़े सार्थक हो गए हो, तुमने कुछ पा लिया है!
"विकल्प ही स्वप्न हैं।"
इन विकल्पों को शक्ति मत देना। और जब भीतर स्वप्न चले, तब हिला कर अपने को जगा लेना और स्वप्न को तोड़ देना जितने जल्दी हो सके। मंत्र उपयोगी हो सकता है स्वप्न को तोड़ने में। मंत्र के संबंध में हम आगे विचार करेंगे, कैसे मंत्र कारगर हो सकता है। मंत्र निश्चित ही स्वप्न को तोड़ देता है। "और अविवेक अर्थात स्व-बोध का अभाव सुषुप्ति है।"
और जहां सभी कुछ खो जाता है, कोई विवेक नहीं रह जाता, कोई होश नहीं रह जाता--न बाहर का कोई होश, न भीतर का कोई होश; जहां तुम सिर्फ एक चट्टान की भांति हो जाते हो, गहन तंद्रा में। लेकिन तुम देखो कि तुम्हारा जीवन कैसा उपद्रव होगा! क्योंकि जब भी तुम गहरी तंद्रा में हो जाते हो, तभी सुबह उठ कर तुम कहते हो कि रात बड़ी आनंददायी नींद आई। थोड़ी देर सोचो कि तुम्हारा जीवन कैसा नरक होगा कि तुम्हें सिर्फ नींद में सुख आता है। बेहोशी में भर सुख आता है, बाकी तुम्हारा जीवन एकदम दुख ही दुख है! अच्छी नींद आ जाती है तो तुम कहते हो, काफी हो गया। और नींद का अर्थ है बेहोशी।
लेकिन ठीक ही है, तुम्हारे लिए काफी हो गया; क्योंकि तुम्हारी पूरी जिंदगी सिर्फ चिंता, तनाव और बेचैनी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है! उसमें तुम आराम कर लेते हो थोड़ी देर के लिए तो तुम समझते हो सब पा लिया। जब कि वहां कुछ भी नहीं है। नींद का अर्थ है कि जहां कुछ भी नहीं है; न बाहर का जगत है, न भीतर का जगत है; जहां सब अंधकार में खो गया। हां, लेकिन विश्राम मिल जाता है। विश्राम लेकर भी तुम क्या करोगे! सुबह तुम फिर उसी दौड़ में लगोगे। विश्राम से जो शक्ति तुम्हें मिलती है, तुम उसे नये तनाव बनाने में लगाओगे, नयी चिंताएं ढालोगे। रोज तुम विश्राम करोगे और रोज तुम नयी चिंताएं ढालोगे।
काश! तुम इतनी सी ही बात समझ लो कि नींद में जब इतना आनंद मिलता है, बेहोश तंद्रा में जब इतना आनंद मिलता है--क्यों? क्योंकि वहां कोई तनाव

नहीं है, वहां कोई चिंता नहीं है, वहां तुम भूल गए सब उपद्रव--अगर बेहोशी में भी उपद्रव भूल कर इतना आनंद मिलता है, तो तुम सोचो, जिस दिन उपद्रव खो जाएंगे और तुम होश में रहोगे, उस दिन कैसा आनंद तुम्हें उपलब्ध हो सकेगा! उसे हमने मोक्ष कहा है; वह निर्वाण है, वह ब्रह्मानंद है। नींद में इतना मिल जाता है, क्योंकि उपद्रव नहीं दिखाई पड़ते, तो जब उपद्रव सच में ही खो जाते हैं, तनाव सच में ही विसर्जित हो जाते हैं और तुम चौबीस घंटे उतने विश्राम में रहने लगते हो जैसी गहरी निद्रा में कभी-कभी कोई व्यक्ति पहुंचता है, जब वैसी चौबीस घंटा सतत तुम्हारी शांत स्थिति बनी रहती है, तब तुम्हें कैसे आनंद के राज्य का अनुभव नहीं होगा! उसे थोड़ा सोचो। क्योंकि समाधि सुषुप्ति जैसी है; सिर्फ एक फर्क है उसमें कि वहां होश है। तुर्यावस्था सुषुप्ति जैसी है; सिर्फ एक फर्क है कि वहां प्रकाश है और सुषुप्ति में अंधकार है।
समझो कि तुम्हें एक स्ट्रेचर पर, बेहोश अवस्था में, इस बगीचे में लाया जाए। सूरज की किरणें तुम्हें छुएंगी; क्योंकि सूरज की किरणें बेहोश नहीं हैं, बेहोश तुम हो। हवाओं के झोंके तुम्हारे ऊपर से गुजरेंगे, हलकी थपकियां देंगे; क्योंकि वे बेहोश नहीं हैं, बेहोश तुम हो। फूल की पंखुड़ियों से गंध तुम्हारे नासापुटों तक आएगी; क्योंकि फूल बेहोश नहीं हैं, बेहोश तुम हो। सुबह की पड़ी हुई ओस की ताजगी तुम्हें छुएगी; क्योंकि ओस बेहोश नहीं है, बेहोश तुम हो। सब घटित होगा।
लेकिन तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। दो घंटे बाद जब तुम होश में आओगे, तुम कहोगे, बड़ा विश्राम था। इस विश्राम में उस ओस का भी दान होगा, फूल की गंध का भी, सूरज की किरण का भी, हवा के झोंकों का भी; लेकिन उनका तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। तुम बेहोश थे, तब भी तुम लौट कर होश में आकर कहते हो-- बड़ा सुख आया।
थोड़ी देर कल्पना करो कि तुम होश से बैठे हो, फूल की गंध बरस रही है, सूरज की किरणें बरस रही हैं, ओस ने सब ताजा कर दिया है, सब नया कर दिया है; हवाओं के झोंके वृक्षों में गीत पैदा करते हैं, तुम होश से भरे बैठे हो! तब तुम्हारे आनंद... ।
सुषुप्ति में तुम वहीं पहुंचते हो, जहां बुद्ध और महावीर और शिव जाग्रत अवस्था में पहुंचते हैं। नींद में भी तुम सुबह थोड़ी सी खबर लाते हो कि बड़ा सुख था; हालांकि तुम साफ नहीं कर सकते कि कैसा सुख था, तुम कुछ बता नहीं सकते, कुछ व्याख्या नहीं कर सकते, कुछ स्वाद की खबर नहीं दे सकते। नींद में गहरी, लेकिन फिर भी तुम सुबह थोड़ी सी ताजगी लेकर आते हो। सुबह उठते हुए आदमी के--जो रात गहरी नींद में सोया हो--उसके चेहरे पर बुद्धत्व की थोड़ी सी झलक होती है। खासकर छोटे बच्चे, जो कि सच में गहरी नींद सोते हैं--क्योंकि जैसे-जैसे तुम्हारी चिंताएं बढ़ने लगती हैं, गहरी नींद भी मुश्किल हो जाती है--छोटे बच्चों को सुबह उठते समय देखो, इसके पहले कि उनकी नींद टूटे, उनके चेहरे को देखो, उस पर बुद्धत्व की ताजगी होती है। कहीं भीतर कोई आनंदपूर्ण घटना घट रही है, जिसका उसे होश नहीं है; लेकिन घटना घट रही है।
सुषुप्ति में सब तनाव खो जाते हैं, लेकिन विवेक नहीं होता। और समाधि में, तुर्यावस्था में, सब तनाव खो जाते हैं और विवेक होता है। विवेक धन सुषुप्ति = समाधि।
"और तीनों का भोक्ता वीरेश कहलाता है।"
जाग्रत को, स्वप्न को, सुषुप्ति को--तीनों का भोक्ता, तीनों से जो पृथक है, तीनों से जो अन्य है, तीनों से जो गुजरता है, तीनों को जो भोगता है, लेकिन तादात्म्य नहीं करता; जो तीनों के पार जाता है, लेकिन अपने को अन्य मानता है; तीनों से भिन्न जो है--वही वीरेश है।
वीरेश का अर्थ हैः वीरों में वीर है, महावीर है। वीरेश शिव का एक नाम है। हमने महावीर उन्हीं पुरुषों को कहा, जिन्होंने समाधि पा ली। हम महावीर उसको नहीं कहते, जो गौरीशंकर पर चढ़ गया। ठीक है, साहस किया, लेकिन गौरीशंकर कोई आखिरी ऊंचाई नहीं है। हम महावीर उसको भी नहीं कहते, जो चांद पर पहुंच गया। साहस किया, लेकिन चांद पर पहुंचना कोई आखिरी मंजिल नहीं है। हम तो वीरेश उसे कहते हैं, महावीर उसे कहते हैं, जिसने आत्मा को पा लिया,

जिसने परमात्मा को पा लिया। क्योंकि परमात्मा से और ऊंचा गौरीशंकर कहां! और परमात्मा से और आगे मंजिल कहां! जिसने आखिरी पा लिया, हम उसी को महावीर कहते हैं। उससे कम पर हम राजी नहीं हैं। क्योंकि चांद पर पहुंच कर क्या होगा? चांद पर पहुंच कर सिर्फ और आगे पहुंचने के रास्ते खुलते हैं; अब मंगल पर पहुंचना होगा। मंगल पर पहुंच कर क्या होगा? अनंत विस्तार है!
हम महावीर उसे कहते हैं, जो वहां पहुंच गया, जिसके आगे अब पहुंचने को कोई जगह न बची। और क्यों कहते हैं महावीर उसे? क्योंकि उससे बड़ा कोई दुस्साहस नहीं है। स्वयं को पा लेने से बड़ा कोई दुस्साहस नहीं है। उससे बड़ी कोई साहसिक अभियान नहीं है। क्योंकि उसके मार्ग पर जितनी कठिनाइयां हैं, उतनी कठिनाइयां किसी मार्ग पर नहीं हैं। उस तक पहुंचने में जितनी तपश्चर्या से तुम्हें गुजरना पड़ेगा, और कहीं पहुंचने में वैसी तपश्चर्या से नहीं गुजरना पड़ता।
स्वयं की यात्रा सबसे दुर्भर यात्रा है। वह खड्ग की धार है। शायद इसीलिए तुम स्वयं से भागे हुए हो और संसार में अपने को यहां-वहां उलझा रहे हो। शायद इसी कारण आत्मज्ञान की बात मन को पकड़ती भी है, फिर भी तुम हिम्मत नहीं जुटाते। कहीं कोई डर पकड़ लेता है।
कठिन है! अकेले जाना होगा! सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि दुनिया में सब जगह तुम किसी के साथ जा सकते हो, सिर्फ एक जगह है जहां तुम्हें अकेले जाना होगा। वहां पत्नी साथ न होगी, भाई साथ न होगा, मित्र साथ न होगा, गुरु तक भी वहां साथ नहीं हो सकता; सिर्फ इशारा कर सकता है।
बुद्ध ने कहा है, बुद्ध इशारा करते हैं, जाना तुम्हें होगा।
और अकेले होने में डर लगता है। और चारों तरफ इतने लोग हैं, इतने सपने हैं! सपनों में कई तो बड़े मधुर सपने हैं। उनमें बड़ा रस है। उन सबको तोड़ कर, इस सब सपने के जाल को गिरा कर, सत्य की यात्रा पर थोड़े से दुर्लभ लोग निकलते हैं। उनमें से भी बहुत से बीच यात्राओं से वापस लौट आते हैं। लाखों में एक उस यात्रा पर जाता है; क्योंकि बड़ी कठिन है। और लाखों जाते हैं, उनमें से कोई एक पहुंच पाता है। इसलिए हमने उस अवस्था को वीरेश कहा है। तीन के पार जो चौथा तुम्हारे भीतर छिपा है, वही गौरीशंकर है, वहीं पहुंचना है। और पहुंचने का रास्ता यह है कि तुम जागने में और जागो। अभी तुम कुनकुने-कुनकुने हो। जलती हुई लपट हो जाओ जागरण की, ताकि यह लपट स्वप्न में प्रवेश कर जाए। स्वप्न में भी जागो, ताकि स्वप्न टूट जाएं। स्वप्न में इतने जागो कि जागने की एक किरण सुषुप्ति में भी पहुंच जाए। बस, जिस दिन तुम सुषुप्ति में दीया लेकर पहुंच गए, तुमने वीरेश होने का द्वार खोल लिया। तुमने मंदिर पर पहली दस्तक दी।
अनंत आनंद है। लेकिन बीच का मार्ग चलना ही पड़ेगा; कीमत चुकानी ही पड़ेगी। और जितना बड़ा आनंद पाना हो, उतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। सस्ता कोई सौदा नहीं हो सकता।
बहुत लोग सस्ते सौदे की कोशिश भी करते हैं। बहुत लोग शार्टकट खोजते हैं। उनको शोषण करने वाले गुरु भी मिल जाते हैं, जो कहते हैं कि बस इससे सब हो जाएगा; कि तुम यह ताबीज बांध लो; कि तुम मुझ पर भरोसा रखो, बस; कि तुम दान कर दो, पुण्य कर दो; कि तुम मंदिर बना दो। ये सब सस्ती बातें हैं। इनसे कुछ हल होने वाला नहीं है। इनसे सिर्फ तुम धोखे में पड़ते हो। यात्रा करनी ही पड़ेगी।
फिर और भी सस्ते मार्ग खोजने वाले लोग हैं। कोई गांजा पीकर सोचता है समाधि लग गई; कोई भंग खाकर सोचता है कि ज्ञान उत्पन्न हो गया। हजारों साधु- संन्यासी हैं--गांजा, अफीम, भंग का उपयोग कर रहे हैं। अभी पश्चिम में उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया; क्योंकि पश्चिम में और भी, और भी अच्छे मादक द्रव्य खोज लिए गए हैं। हशीश, मारिजुआना, एल एस डी, और भी वैज्ञानिक केमिकल खोज लिए गए हैं, जिनका तुम एक इंजेक्शन ले लो और तुम समाधिस्थ हो गए! एक गोली ले लो, समाधि उपलब्ध हो गई! जैसे तत्क्षण कॉफी तैयार की जा सकती है, वैसे तत्क्षण समाधि भी तैयार की जा सकती है।
काश, इतना सस्ता होता! और काश, नशे में खोने से कोई ज्ञान को उपलब्ध होता होता! तो सारी दुनिया कभी की हो गई होती। इतना सस्ता नहीं है। लेकिन सस्ते की खोज मन करता है। मन चाहता है, किसी तरह बीच का रास्ता कट जाए और हम

जहां हैं वहां से हम सीधे मोक्ष में प्रवेश कर जाएं। बीच का रास्ता नहीं कट सकता; क्योंकि इस रास्ते से गुजरने में ही तुम्हारा मोक्ष आएगा। क्योंकि रास्ता सिर्फ रास्ता नहीं है, रास्ता तुम्हारा विकास भी है।
यही तकलीफ है। बाहर तो हो सकता है। लंदन से हवाई जहाज उठता है, सीधा बंबई उतर जाए--बीच का रास्ता काट दिया। लेकिन लंदन से जो आदमी बैठा है, वह बंबई में वही आदमी उतरेगा जो लंदन से बैठा था, कोई दूसरा आदमी नहीं उतर सकता। उसमें कोई विकास नहीं हुआ। यह यात्रा बाहर की है। लेकिन तुम जहां हो, यहां से मोक्ष में उतरने की कोई हवाई यात्रा नहीं हो सकती। और जो भी कहते हैं कि हो सकती है, वे धोखा देते हैं। क्योंकि यह यात्रा एक बिंदु से दूसरे बिंदु की यात्रा नहीं है, एक जीवन स्थिति से दूसरी जीवन स्थिति में प्रवेश है। बीच के मार्ग से गुजरना ही होगा; क्योंकि उस गुजरने में ही तुम निखरोगे, जलोगे, बदलोगे। उस गुजरने की पीड़ा से ही तुम्हारा विकास होगा। वह पीड़ा अनिवार्य है। उस पीड़ा से गुजरे बिना कोई वहां नहीं पहुंच सकता। और तुमने अगर कोई संक्षिप्त रास्ता खोजा, तो तुम सिर्फ अपने को धोखा दे रहे हो।
पश्चिम में संक्षिप्त की बड़ी तलाश है। इसलिए महेश योगी जैसे व्यक्तियों का बड़ा प्रभाव है। उस प्रभाव का कुल कारण इतना है कि वे कहते हैं कि हम जो कह रहे हैं, यह जेट स्पीड है। हम जो कह रहे हैं, यह छोटा सा जो मंत्र है, रोज पंद्रह मिनट कर लेने से तुम सीधे पहुंच जाओगे। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। न तुम्हारे आचरण को बदलने की जरूरत है, न तुम्हारे जीवन को बदलने की जरूरत है, न तुम्हें कुछ खोना है बाहर की दुनिया में, कुछ करना नहीं है। बस तुम्हें बैठ कर पंद्रह मिनट विश्राम करके यह मंत्र का जाप कर लेना है। बस यह मंत्र सब कुछ है।
मंत्र कीमती चीज है, पर सब कुछ नहीं है। और मंत्र से सपने काटे जा सकते हैं, सत्य नहीं मिलता। सपना काटना सत्य के मिलने के मार्ग पर एक हिस्सा है। लेकिन मंत्र को ही दोहरा कर कोई समझता हो कि सब हो गया, कि कोई माला फेर कर समझता हो कि सब हो गया, तो वह बचकाना है। वह अभी योग्य भी नहीं है। समझ के भी योग्य नहीं है, पहुंचने की तो बात दूर है।
दूभर है मार्ग। उस दूभर से गुजरना होगा। और इसीलिए यह सूत्र कहता है-- उद्यम चाहिए। इतनी महान प्रयत्न करने की आकांक्षा चाहिए, अभीप्सा चाहिए, कि तुम अपने को पूरा दांव पर लगा दो। मोक्ष खरीदा जा सकता है, लेकिन तुम अपने को पूरा दांव पर लगा दो तो ही; इससे कम में नहीं चलेगा। कुछ और तुमने दिया, वह देना नहीं है, वह कीमत नहीं चुकाई तुमने। अपने को पूरा दे डालोगे तो ही कीमत चुकती है और उपलब्धि होती है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
तीसरा प्रवचन

योग के सूत्रः विस्मय, वितर्क, विवेक

विस्मयो योगभूमिकाः।
स्वपदम शक्तिः।
वितर्क आत्मज्ञानम्।
लोकानंदः समाधिसुखम्।

विस्मय योग की भूमिका है।
स्वयं में स्थिति ही शक्ति है।
वितर्क अर्थात विवेक आत्मज्ञान का साधन है।
अस्तित्व का आनंद भोगना समाधि है।

विस्मय योग की भूमिका है।
इसे थोड़ा समझें। विस्मय का अर्थ शब्दकोश में दिया है--आश्चर्य।
पर आश्चर्य और विस्मय में एक बुनियादी भेद है। और वह भेद समझ में न आए
तो अलग-अलग यात्राएं शुरू हो जाती हैं। आश्चर्य विज्ञान की भूमिका है, विस्मय योग की; आश्चर्य बहिर्मुखी है, विस्मय अंतर्मुखी; आश्चर्य दूसरे के संबंध में होता है, विस्मय स्वयं के संबंध में--एक बात।
जिसे हम नहीं समझ पाते; जो हमें अवाक कर जाता है; जिस पर हमारी बुद्धि
की पकड़ नहीं बैठती; जो हमसे बड़ा सिद्ध होता है; जिसके सामने हम अनायास ही किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं; जो हमें मिटा जाता है--उससे विस्मय पैदा होता है। लेकिन अगर यह जो विस्मय की दशा भीतर पैदा होती है--अतर्क्य, अचिंत्य के समक्ष खड़े होकर--इस धारा को हम बहिर्मुखी कर दें, तो विज्ञान पैदा होता है। सोचने लगें पदार्थ के संबंध में; विचार करने लगें जगत के संबंध में; खोज करने लगें रहस्य की, जो हमारे चारों ओर है--तो विज्ञान का जन्म होता है। विज्ञान आश्चर्य है। आश्चर्य का अर्थ है--विस्मय बाहर की ओर यात्रा पर निकल गया।
और आश्चर्य और विस्मय में यह भी फर्क है कि जिस चीज के प्रति हम आश्चर्यचकित होते हैं, हम आज नहीं कल उस आश्चर्य से परेशान हो जाएंगे; आश्चर्य से तनाव पैदा होगा। इसलिए आश्चर्य को मिटाने की कोशिश होती है। विज्ञान आश्चर्य से पैदा होता है, फिर आश्चर्य को नष्ट करता है; व्याख्या खोजता है, सिद्धांत खोजता है, सूत्र, चाबियां खोजता है। और तब तक चैन नहीं लेता जब तक कि रहस्य मिट न जाए; जब तक कि ज्ञान हाथ में न आ जाए; जब तक विज्ञान न कह सके कि हमने समझ लिया, तब तक चैन नहीं है।
विज्ञान जगत से आश्चर्य को मिटाने में लगा है। अगर विज्ञान सफल हुआ
तो दुनिया में ऐसी कोई चीज न रह जाएगी, जो आदमी न कह सके कि हम जानते हैं। इसका अर्थ हुआ कि जगत में कोई परमात्मा न बचेगा; क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही यह होता है कि जिसे हम जान भी लें तो भी दावा न किया जा सके कि हम जानते हैं; जो हमारे जानने के बाद भी जानने को शेष रह जाए; जिसे जान-जान कर भी हम चुकता न कर पाएं; जिसके विस्मय को अंत करने का कोई उपाय नहीं।
एक तो ऐसी वस्तुएं हैं, जिन्हें हमने जान लिया--उन्हें हम "ज्ञात" कहें; कुछ ऐसी वस्तुएं हैं, जिन्हें हमने जाना नहीं है लेकिन जान लेंगे-- उन्हें हम "अज्ञात" कहें; और कुछ ऐसा भी है इस जगत में, जिसे हमने जाना भी नहीं है और हम जान भी न पाएंगे--उसे हम "अज्ञेय" कहें। परमात्मा अज्ञेय है। वह तीसरा तत्व है। विज्ञान इसीलिए परमात्मा को स्वीकार नहीं करता; क्योंकि विज्ञान कहता है कि ऐसा कुछ भी नहीं है, जो न जाना जा सके। नहीं जाना होगा हमने अभी तक, हमारे प्रयास कमजोर हैं; लेकिन आज नहीं कल, केवल समय की बात है, हम जान लेंगे। एक दिन जगत पूरा का पूरा जान लिया जाएगा; उसमें अनजाना कुछ भी न बचेगा। आश्चर्य से पैदा होता है और फिर आश्चर्य की हत्या में लग जाता है। इसलिए विज्ञान को मैं "पितृघाती" कहता हूं; वह जिससे पैदा होता है, उसे मिटाने में लग जाता है।

धर्म बिल्कुल विपरीत है। धर्म भी एक आश्चर्य भाव से पैदा होता है; उस आश्चर्य भाव को शिव-सूत्र में विस्मय कहा है। फर्क इतना ही है कि जब किसी स्थिति में आश्चर्य से भर जाता है धार्मिक खोजी, तो वह बाहर की यात्रा पर नहीं जाता, वह स्वयं की यात्रा पर जाता है। जब भी कोई रहस्य उसे घेर लेता है तो वह सोचता है--मैं जानूं कि मैं कौन हूं। रहस्य अंतर्मुखी बन जाए; यात्रा, खोज भीतर चलने लगे; पदार्थ की तरफ नहीं, स्व की तरफ मेरी खोज उन्मुख हो जाए; मेरा संधान पहले उसे जानने में लग जाए कि मैं कौन हूं--तो विस्मय।
और दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि विस्मय कभी भी चुकता नहीं; जितना
ही हम जानते हैं, उतना ही बढ़ता है। इसलिए विस्मय एक विरोधाभास है; क्योंकि जानने से विस्मय नष्ट होना चाहिए। लेकिन बुद्ध या कृष्ण या शिव या जीसस, उनका विस्मय नष्ट नहीं होता। जिस दिन वे परम ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, उसी दिन उनका विस्मय भी परम होता है। उस दिन वे ऐसा नहीं कहते कि हमने सब जान लिया; उस दिन वे ऐसा कहते हैं कि सब जान कर भी सब जानने को शेष रह गया। उपनिषदों ने कहा हैः पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया जाए, तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। सब जान लिया जाए, तो भी सब जानने को शेष रह जाता है।
इसलिए धार्मिक ज्ञान अहंकार का जन्म नहीं बनता; वैज्ञानिक ज्ञान अहंकार का जन्म बनेगा। धार्मिक ज्ञान में तुम जानने वाले कभी भी न बनोगे; तुम सदा विनम्र रहोगे। और जितना तुम जानते जाओगे, उतनी ही तुम्हें प्रतीति होगी कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। परम ज्ञान के क्षण में तुम कह सकोगे--मेरा कोई भी ज्ञान नहीं है। परम ज्ञान के क्षण में यह पूरा अस्तित्व विस्मय हो जाएगा।
विज्ञान अगर सफल हो तो सारा जगत ज्ञात हो जाएगा; धर्म अगर सफल हो तो सारा जगत अज्ञात हो जाएगा। विज्ञान अगर सफल हो तो तुम, जानने वाले, अस्मिता से भर जाओगे और सारा जगत साधारण हो जाएगा। क्योंकि जहां विस्मय नहीं है, वहां सब साधारण हो जाता है; जहां रहस्य नहीं है, वहां सारी आत्मा खो जाती है; जहां रहस्य का और उपाय नहीं है, वहां आगे की यात्रा बंद हो जाती है; जहां जिज्ञासा पूरी हो गई, कुतूहल समाप्त हो गया। अगर विज्ञान जीता तो जगत में ऐसी ऊब पैदा होगी, जैसी ऊब कभी भी पैदा नहीं हुई थी।
इसलिए अगर पश्चिम में लोग ज्यादा ऊब से भरे हैं, बोरडम से भरे हैं, तो उसका मौलिक कारण विज्ञान है; क्योंकि लोगों के विस्मय की क्षमता कटती जा रही है। लोग किसी भी चीज से चकित नहीं होते; चकित होना ही भूल गए हैं। अगर तुम उनके सामने कुछ ऐसा सवाल भी रखो जो उलझाने वाला है, तो भी वे कहेंगे कि सुलझ जाएगा। क्योंकि मौलिक रूप से ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, विज्ञान की दृष्टि में, जो अज्ञात सदा के लिए रह जाए; हम परदे उघाड़ ही लेंगे।
लेकिन धर्म की यात्रा बड़ी उलटी है। जितने हम परदे उघाड़ते हैं, पाते हैं कि रहस्य उतना सघन होता जाता है; जितने हम करीब आते हैं, उतना ही पता चलता है कि जानना बहुत मुश्किल है। और जिस दिन हम परमात्मा के ठीक केंद्र में प्रवेश कर जाते हैं, उस दिन सभी कुछ रहस्यपूर्ण हो जाता है।
बुद्ध के लिए आकाश के तारे ही रहस्यपूर्ण नहीं हैं, जमीन पर पड़े कंकड़-पत्थर भी आश्चर्यपूर्ण हो गए हैं। बुद्ध के लिए यह विराट ही रहस्यमय नहीं है, क्षुद्र से क्षुद्र घटना भी रहस्यपूर्ण हो गई है। एक बीज का जमीन से अंकुरित होना भी उतना ही रहस्यपूर्ण है, जितना इस पूरी सृष्टि का जन्म। तो जैसे-जैसे विस्मय घना होगा, वैसे-वैसे तुम्हारी आंखें छोटे बच्चे
की तरह होती जाएंगी; क्योंकि छोटे बच्चे के लिए सभी कुछ विस्मय होता है। छोटे बच्चे को चलते देखो। वह रास्ते पर जा रहा है, हर चीज उसे चौंकाती है। एक रंगीन पत्थर उसे कोहिनूर मालूम होता है। तुम हंसते हो, क्योंकि तुम ज्ञाता हो; तुम जानते हो कि यह रंगीन पत्थर है। पागल मत हो, यह कोहिनूर नहीं है! लेकिन छोटा बच्चा उस पत्थर को खीसे में रख लेना चाहता है। तुम कहोगे, वजन मत ढोओ! और गंदा पत्थर है, कीचड़ में पड़ा है; फेंक इसे! लेकिन बच्चा उसे पकड़ता है। क्योंकि तुम बच्चे को नहीं समझ पा रहे, बच्चे के लिए विस्मय है; यह रंगीन पत्थर किसी कोहिनूर से कम कीमती नहीं है। कीमत विस्मय की है, पत्थरों की थोड़े ही कोई कीमत होती है। एक तितली भी उसे इतना

सम्मोहित कर लेती है, जितना परमात्मा भी तुम्हें मिल जाए तो सम्मोहित नहीं करेगा। वह तितली के पीछे दौड़ना शुरू कर देता है।
एक छोटे बच्चे की जैसी निर्मल दशा है, ऐसे विस्मय की परम स्थिति में-- बुद्धत्व की स्थिति में--किसी भी व्यक्ति की हो जाती है। इसलिए जीसस ने कहा है कि जो छोटे बच्चों की तरह सरल होंगे, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। जीसस ने वही कहा है, जो शिव इस सूत्र में कह रहे हैं।
"विस्मयो योगभूमिकाः।"
विस्मय योग का प्रथम चरण है। तब तो बहुत बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।
तुम्हारे पास जितना ज्ञान होगा, उतनी ही योग की भूमिका मुश्किल हो जाएगी। तुम्हें जितना दंभ होगा कि मैं जानता हूं, उतना ही तुम योगी न हो पाओगे। जितने शास्त्र तुम्हारे चित्त पर भारी होंगे, उतना ही तुम्हारा विस्मय नष्ट हो गया। एक पंडित को पूछो परमात्मा के संबंध में, तो वह ऐसे उत्तर देता है जैसे परमात्मा कोई उत्तर देने की बात हो; जैसे कि कोई उत्तर दिया जा सकता हो। पंडित को पूछो, उसके पास उत्तर रेडीमेड हैं। तुमने पूछा भी नहीं था, उसके पास उत्तर तैयार था। परमात्मा भी उसे अवाक नहीं करता। उसके पास सूत्र सब निश्चित हैं, वह तत्क्षण समझा देता है।
लेकिन बुद्ध के पास जाओ, पूछो परमात्मा के संबंध में, बुद्ध चुप रह जाते हैं। शायद तुम यही सोच कर लौट आओ--क्योंकि बहुत से पंडित बुद्ध के पास से यही सोच कर लौट गए--कि यह आदमी चुप रह गया, इसका मतलब है इसे पता नहीं है। और यह आदमी इसलिए चुप रह गया कि विस्मय तो द्वार है। तुम अगर थोड़े समझदार होते तो तुम रुक गए होते इस आदमी के पास, जिसने उत्तर नहीं दिया। और तुमने इस आदमी को समझने की कोशिश की होती; इसकी आंखों में झांका होता; इसके सत्संग में, इसकी सन्निधि में तुम रहे होते; क्योंकि इसे कुछ स्वाद मिल गया है, और वह स्वाद इतना बड़ा है कि शब्द उसे कह नहीं सकते; और इसे कोई ऐसा दर्शन हुआ है, जो उत्तर नहीं बनाया जा सकता।
प्रश्न और उत्तर स्कूली बच्चों की बातें हैं। तुम्हारा प्रश्न ही बेहूदा है। परमात्मा के संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता। विराट के संबंध में कोई प्रश्न कैसे पूछा जा सकता है! विराट के संबंध में तो प्रश्न-उत्तर दोनों गिर जाते हैं। तुम्हारा प्रश्न क्षुद्र है। इसलिए बुद्ध चुप रह गए हैं। लेकिन तुम शायद यह सोच कर लौटोगे कि इस आदमी को पता होता तो जवाब देता। इसने जवाब नहीं दिया, इसे पता नहीं है। तुम पंडित को पहचानते हो; क्योंकि तुम्हारा सिर भी शब्दों से भरा है। तुम ज्ञानी को न पहचान पाओगे; क्योंकि ज्ञानी विस्मय से भरा है और तुम्हारा विस्मय नष्ट हो गया है।
जगत में बड़ी से बड़ी दुर्घटना है और वह है विस्मय का नष्ट हो जाना। जिस दिन तुम्हारा विस्मय नष्ट होता है, उसी दिन तुम्हारे छुटकारे का उपाय मुश्किल हो गया। जिस दिन तुम्हारा विस्मय नष्ट हुआ, उसी दिन तुम्हारा बाल-हृदय मर गया, जड़ हो गया, तुम बूढ़े हो गए।
क्या अब भी तुम चौंकते हो? क्या जीवन तुम्हें प्रश्न बनता है? क्या चारों तरफ से पक्षियों की आवाजें, झरनों का शोरगुल, हवाओं का वृक्षों से गुजरना, तुम्हारे लिए किसी पुलक से भर जाता है? तुम आह्लादित हो जाते हो? तुम जीवन को चारों तरफ देख कर अवाक होते हो?
नहीं; क्योंकि तुम्हें सब पता है कि यह पक्षियों की आवाज है, यह शोरगुल हवाओं का वृक्षों में--तुम्हारे पास हर चीज के उत्तर हैं। उत्तरों ने तुम्हें मार डाला है। तुम ज्ञान के पहले ज्ञानी हो गए हो।
"विस्मयो योगभूमिकाः।"
और जो व्यक्ति योग में प्रवेश करना चाहे, विस्मय उसके लिए द्वार है। अपने बचपन को वापस लौटाओ। फिर से पूछो! फिर से कुतूहल करो! फिर से जिज्ञासा जगाओ! तो तुम्हारे भीतर जहां-जहां जीवन के स्रोत सूख गए हैं, फिर हरे हो जाएंगे; जहां-जहां पत्थर अड़ गए हैं, वहां-वहां झरना फिर प्रकट हो जाएगा। तुम फिर से आंख खोलो और चारों तरफ देखो। सब उत्तर झूठे हैं। क्योंकि सब

तुम्हारे उत्तर उधार हैं। तुमने खुद कुछ भी नहीं जाना है। लेकिन तुम उधार ज्ञान से ऐसे भर गए हो कि तुम्हें प्रतीति होती है कि मैंने जान लिया। विस्मय को जगाओ। तुम्हारे आसन, प्राणायाम से कुछ भी न होगा, जब तक विस्मय न जग जाए। क्योंकि आसन, प्राणायाम सब शरीर के हैं। ठीक है, शरीर-शुद्धि होगी, शरीर स्वस्थ होगा; लेकिन शरीर की शुद्धि और शरीर का स्वास्थ्य तुम्हें कोई परमात्मा से न मिला देगा।
विस्मय मन की शुद्धि है। विस्मय का अर्थ है--मन सभी उत्तरों से मुक्त
हो गया। विस्मय का अर्थ है--तुमने हटा दिया उत्तरों का कचरा; तुम्हारा प्रश्न फिर नया और ताजा हो गया और तुमने अपने अज्ञान को समझा। विस्मय का अर्थ है--मुझे पता नहीं। पांडित्य का अर्थ है--मुझे पता है। जितना तुम्हें पता है, उतने ही तुम गलत हो। जब तुम सरल भाव से कहते हो--मुझे कुछ भी पता नहीं है, यह सारा जगत अज्ञात है; जो भी मुझे पता है वह भी कामचलाऊ है; मैंने अभी कुछ भी नहीं जाना है। ऐसी प्रतीति जितनी गहरी तुम्हारे हृदय में बैठ जाएगी, तुमने योग का पहला कदम उठाया। फिर दूसरे कदम आसान हैं। लेकिन अगर पहला कदम ही चूक जाए, तो फिर तुम कितनी ही यात्रा करो, उससे कुछ हल नहीं होता। क्योंकि जिसका पहला कदम गलत पड़ा, वह मंजिल पर नहीं पहुंच सकेगा। पहला कदम जिसका सही है, उसकी आधी यात्रा पूरी हो गई। और विस्मय पहला कदम है।
थोड़ा गौर से देखो। तुम्हारे पास ज्ञान है? तुम भी थोड़े गौर से देखोगे
तो समझ लोगे ज्ञान नहीं है; सब कचरा है। इकट्ठा कर लिया है--शास्त्र से, गुरुओं से, संतों से; और उसे तुम बहुमूल्य थाती की तरह संजोए बैठे हो। उसने तुम्हें कुछ भी नहीं दिया, सिर्फ तुम्हारे विस्मय की हत्या कर दी। तुम्हारा विस्मय तड़प रहा है, मरा हुआ पड़ा है; अब तुम चौंकते नहीं। अब तुम्हें कोई भी चीज चौंकाती नहीं।
एक ईसाई फकीर हुआ--इकहार्ट। उसने एक बड़ी अनूठी बात कही है। उसने कहा, संत वह है, जिसे हर चीज चौंकाती है। हर चीज, छोटी-छोटी घटनाएं जिसे चौंका देती हैं। पानी में पत्थर गिरता है, आवाज होती है, लहरें उठती हैं--संत को चौंका देती हैं। यह इतना विस्मयपूर्ण है! इतना रहस्यपूर्ण है! संत श्वास लेता है, जीता है--यह भी काफी चौंकाने वाला है।
इकहार्ट रोज सुबह की प्रार्थना में परमात्मा को कहता था, आज फिर सुबह हुई। आज फिर सूरज उगा। तेरी लीला अपार है! न उगता तो क्या करते? क्या उपाय था? आदमी विवश है।
इकहार्ट कहता, आज सांस आती है, कल न आए, क्या करूंगा?
तुम सांस ले तो न सकोगे। सांस तुम्हारे बस में तो नहीं है। इतने पास
है श्वास, फिर भी तुम उसके मालिक नहीं हो। गई बाहर और न लौटी, तो नहीं लौटेगी। इतने पास जो है, उसके भी हम ज्ञाता और मालिक नहीं हैं। और ख्याल हमें यह है कि हम सब कुछ जानते हैं।
तुम्हारे सब जानने ने ही तुम्हें मारा। इस कचरे को हटा दो और हलके हो जाओ। तत्क्षण, तुम्हारी आंखें जब ज्ञान से न भरी होंगी, तब रहस्य से भर जाएंगी। उस रहस्य की अंतर्यात्रा का नाम विस्मय है, बहिर्यात्रा का नाम आश्चर्य है।
अगर उस रहस्य को तुमने पदार्थों पर लगा दिया, तो तुम एक वैज्ञानिक हो जाओगे। अगर उस रहस्य को तुमने स्वयं की सत्ता पर लगा दिया, तो तुम एक महायोगी हो जाओगे। और दोनों के परिणाम भिन्न होंगे। क्योंकि आश्चर्य हिंसात्मक है; विस्मय अहिंसात्मक है। आश्चर्य जिस तरफ लग जाता है, उसी को तोड़ने लगता है, विश्लेषण करता है; क्योंकि आश्चर्य में एक बेचैनी है। विस्मय में एक रस है।
इस फर्क को भी ठीक से समझ लो। शब्दकोश में वह नहीं लिखा हुआ है; लिखा
भी नहीं जा सकता; क्योंकि शब्दकोश बनाने वाले को कोई विस्मय का पता भी नहीं है।
आश्चर्य हिंसात्मक है, आक्रामक है। तुम जिस चीज के प्रति आश्चर्य से भरते हो, एक तनाव पैदा हो जाता है। उस तनाव को हल करना ही पड़ेगा। जब तक वह जिज्ञासा पूरी न हो जाएगी, जब तक तुम जान न लोगे, तब तक एक बेचैनी तुम्हारे सिर पर सवार रहेगी। वह जो वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में लगा रहता है

अठारह-अठारह घंटे, वह किसलिए लगा है? एक बेचैनी है; जैसे एक भूत-प्रेत ने उसे पकड़ लिया है। और जब तक वह उसको हल न कर लेगा, तब तक वह लगा ही रहेगा। लेकिन विस्मय आक्रामक नहीं है और विस्मय एक बेचैनी नहीं है; बल्कि विस्मय एक विश्राम है। जब कोई व्यक्ति विस्मय से भरता है तो एकदम विश्राम से भर जाता है। विस्मय को मिटाना नहीं है, विस्मय को पीना है। विस्मय का स्वाद लेना है। विस्मय में लीन हो जाना है, एक हो जाना है। आश्चर्य मिटाने में लग जाता है; विस्मय जीने में लग जाता है। विस्मय जीवन की एक शैली है; आश्चर्य मनुष्य के मन का एक हिंसात्मक रूप है।
इसलिए विज्ञान विजय की भाषा में सोचता है--तोड़ो, फोड़ो, जीतो। धर्म समर्पण की भाषा में सोचता है--अपने को खो दो। जब तुम्हारे भीतर विस्मय का प्रवेश होगा, तो विस्मय तुममें इस तरह लीन हो जाएगा, जैसे तुम नमक की डली पानी में डाल दो और सारा पानी खारा हो जाए। जिस दिन तुम विस्मय से भरोगे उस दिन तुम विस्मय से खारे हो जाओगे। रोआं-रोआं विस्मय से भर जाएगा। उठोगे तो विस्मय, बैठोगे तो विस्मय। तुम सदा चौंके रहोगे। हर चीज रहस्यपूर्ण हो जाएगी। क्षुद्रतम भी विराट का हिस्सा हो जाएगा। क्योंकि जब क्षुद्र में भी विस्मय जुड़ जाता है, तो क्षुद्र भी विराट हो जाता है। तब जाना हुआ कुछ भी नहीं है, सभी तरफ रहस्य तुम्हें घेरे हुए है। तब प्रतिपल नया हो रहा है और प्रतिपल नया निमंत्रण दे रहा है। विस्मय एक आमंत्रण है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया था, तो मत मांगने घर-घर गया। गांव में जो चर्च का पादरी था, उसके द्वार पर भी गया। जब मत मांगने गया था, तब भी उसके मुंह से शराब की बास आ रही थी। पादरी भला आदमी था। सीधे- सीधे कहना अशिष्टता होगी। तो उसने नसरुद्दीन से कहा कि मुझे बस एक बात पूछनी है। अगर संतोषजनक उत्तर दिया, तो मेरा मत, मेरा वोट तुम्हारे लिए है। क्या तुम कभी शराब पीते हो? पूछने का इसमें कुछ भी नहीं था, शराब वह पीए ही हुए था। नसरुद्दीन चौंका और उसने कहा कि इसके पहले कि मैं जवाब दूं, एक सवाल मुझे भी पूछना है, यह जांच-पड़ताल है या आमंत्रण? इ.ज दिस एन इंक्वायरी ऑर एन इन्वीटेशन?
आश्चर्य जांच-पड़ताल है; विस्मय आमंत्रण। विस्मय एक भीतरी बुलावा है।
और जैसे-जैसे तुम भीतर प्रवेश करते हो, वैसे-वैसे डूबते चले जाते हो। एक दिन ऐसा आएगा कि तुम न बचोगे और विस्मय ही बचेगा। उस दिन परम ज्ञान घट गया। अगर तुमने आश्चर्य किया तो एक दिन ऐसा आएगा कि तुम ही बचोगे और आश्चर्य न बचेगा। यह विज्ञान की निष्पत्ति है। अहंकार बचेगा, आश्चर्य नष्ट हो जाएगा। अगर विस्मय की यात्रा पर गए, तो तुम नष्ट हो जाओगे, विस्मय बचेगा; रोआं-रोआं उसी स्वाद से भर जाएगा। तुम्हारा होना ही विस्मयपूर्ण होगा। इसे शिव ने भूमिका कहा योग की। ज्ञान को हटाओ। विस्मय से भरो। और अब कठिन लगेगा शुरू में, क्योंकि तुम्हें ख्याल है कि तुम सब जानते हो।
डी एच लारेंस, एक बड़ा विचारक, कीमती, मूल्यवान विचारक हुआ। एक छोटे बच्चे के साथ बगीचे में घूम रहा था। उस छोटे बच्चे ने पूछा, व्हाई दि ट्रीज आर ग्रीन? वृक्ष हरे क्यों हैं?
छोटे बच्चे ही ऐसे सवाल पूछ सकते हैं--इतने ताजे सवाल! तुम तो यह सवाल
ही नहीं सोच सकते। तुम कहोगे, वृक्ष हरे हैं, इसमें पूछना क्या है! यह कोई सवाल है! यह बच्चा मूढ़ है। लेकिन तुम फिर से सोचो--वृक्ष हरे क्यों हैं? तुम्हें सच में उत्तर पता है?
शायद तुम में कोई विज्ञान का विद्यार्थी हो तो वह कहेगा--क्लोरोफिल
के कारण। मगर इससे कोई बच्चे के प्रश्न का हल तो नहीं होता। बच्चा पूछेगा कि वृक्ष में क्लोरोफिल क्यों है? आखिर क्लोरोफिल को वृक्ष में होने की क्या जरूरत है? और आदमी में क्यों नहीं है? और क्लोरोफिल कैसे वृक्षों को खोजता रहता है? क्यों का कोई सवाल क्लोरोफिल से होता नहीं हल।
विज्ञान जो भी जवाब देता है, सब ऐसे ही हैं। उससे प्रश्न सिर्फ एक सीढ़ी और पीछे हट जाता है, बस। अगर तुम जरा समझदार हो तो प्रश्न फिर उठा सकते हो। विज्ञान के पास क्यों का कोई उत्तर नहीं है। इसलिए विज्ञान विस्मय को नष्ट कर नहीं सकता, सिर्फ भ्रम पैदा करता है नष्ट करने का।

लेकिन डी एच लारेंस कोई वैज्ञानिक नहीं था; वह एक कवि था, एक उपन्यासकार था। उसके पास संचेतना थी सौंदर्य की। वह खड़ा हो गया। वह सोचने लगा। उसने बच्चे से कहा कि मौका दो; क्योंकि मुझे खुद ही पता नहीं है। तुम्हारे बच्चे ने भी तुमसे कई बार ऐसे सवाल किए होंगे। तुमने कभी कहा कि मुझे पता नहीं है? उससे अहंकार को चोट लगेगी। हर बाप सोचता है कि उसे पता है। बच्चा पूछता है, बाप जवाब देता है। इन्हीं जवाबों के कारण बाप प्रतिष्ठा खोता है बाद में; क्योंकि बच्चे को एक न एक दिन पता चल जाता है कि पता तुम्हें कुछ भी न था। तुम नाहक ही जवाब देते रहे। जैसा अज्ञानी मैं हूं, वैसे ही तुम हो। तुम्हारी उम्र ज्यादा थी, तुम्हारा अज्ञान जरा पुराना था। बस, इतनी ही बात थी। लेकिन छोटे बच्चे को तुम जवाब दे देते हो। छोटा बच्चा भरोसा करता है। वह मान लेता है कि ठीक है, होगा। लेकिन कितने दिन तक मानेगा?
डी एच लारेंस खड़ा हो गया। उसने कहा कि मैं सोचूंगा। और अगर तुम ज्यादा
ही जिद करो तो बस इतना ही कह सकता हूं कि वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। इसमें कोई और उत्तर नहीं है। मैं खुद ही इसी रहस्य से भरा हुआ हूं।
अगर तुम आंख से थोड़े ज्ञान का पर्दा हटाओगे तो तुम पाओगे कि चारों तरफ रहस्य खड़ा हुआ है। वृक्ष हरे हैं, यह भी रहस्यपूर्ण है। हरे वृक्षों में लाल फूल लग रहे हैं, यह भी रहस्यपूर्ण है। एक छोटे से बीज में इतने-इतने बड़े विराटकाय वृक्ष छिपे हैं, यह भी रहस्यपूर्ण है। एक बीज को तुम सम्हाल कर रखे रहो, सैकड़ों-हजारों साल के बाद बोओ, वृक्ष प्रकट हो जाता है। जीवन शाश्वत मालूम होता है। हर घड़ी रहस्य से भरी है।
पर तुमने जैसे अपनी आंखें बंद कर ली हैं। तुम निश्चिंत हो गए हो। निश्चिंतता तुम्हारी जड़ता है। तुम झिझकते भी नहीं। इसमें कुछ कारण हैं। क्योंकि इससे अहंकार को आश्वासन मिला रहता है कि मैं जानता हूं। मैं जानता हूं, तो एक सुरक्षा बनी है। मैं नहीं जानता, तो सब सुरक्षा खो जाती है। पता तुम्हें कुछ भी नहीं है। लेकिन यह बात पीड़ा देती है कि मुझे कुछ भी पता नहीं है। इसलिए तुम कुछ भी पकड़ लेते हो। तिनके पकड़ लेता है डूबता आदमी, तिनकों के सहारे ले लेता है। यह तुम जो पकड़े हो, यह तिनका भी नहीं है। तिनके से शायद कोई कभी बच भी जाए, पर तुमने जो पकड़ा है वह तो तिनका भी नहीं; वह तो सिर्फ सपना है, सिर्फ कोरे शब्द हैं।
एक आदमी पक्का मान कर बैठा है कि उसे ईश्वर का पता है। यह बात ही बेहूदी है कि कोई आदमी कहे, मुझे पक्का पता है। "पक्के" का मतलब होता है तुम ईश्वर के रहस्य को भी खोज लिए! "पक्के" का अर्थ होता है कि तुम उसके भी आर-पार गुजर गए, उसको भी नाप-जोख लिया! "पक्के" का अर्थ होता है वह भी माप लिया गया! तुमने तौल लिया तराजू पर! जांच-पड़ताल कर ली प्रयोगशाला में! पक्के का क्या अर्थ होता है?
एक दूसरा आदमी है, जिसको पक्का पता है कि ईश्वर नहीं है। ये दोनों मूढ़ हैं और दोनों की बीमारी एक है। एक अपने को आस्तिक कहता है, एक नास्तिक; पर दोनों में जरा भी फर्क नहीं है। गहरे में दोनों की बीमारी एक है कि दोनों मानते हैं कि हमें पता है। और दोनों में विवाद खड़ा होता है।
ज्ञान से विवाद पैदा होता है; विस्मय से संवाद पैदा होता है। जब तुम विस्मय से भरोगे तो तुम्हारे जीवन में एक संवाद आएगा। महावीर के पास कोई जाता और कहता, ईश्वर है। तो वे कहते, है। कोई नास्तिक जाता और कहता, ईश्वर नहीं है। तो वे कहते कि नहीं है। कोई दोनों को न मानने वाला अज्ञेयवादी एग्नास्टिक पहुंच जाता, तो महावीर उससे कहते, है भी और नहीं भी है।
बड़ी कठिन बात हो गई। क्योंकि हम चाहेंगे--उत्तर साफ दो, सीधे दो; चाहे गलत हों, लेकिन साफ चाहिए। और ध्यान रखें, यह जगत इतना जटिल है कि यहां साफ उत्तर गलत ही होंगे। यहां जो उत्तर विरोधाभासी नहीं है, वह गलत होगा। यहां जो उत्तर अपने से विपरीत को भी समा लेता है, वही सही होगा; क्योंकि जगत अपने से विपरीत को समाए हुए है। यहां जन्म भी है और मृत्यु भी है। यहां साफ-सुथरा रास्ता नहीं है। यहां अंधेरा भी है और प्रकाश भी है। यहां शुभ भी है, अशुभ भी है। यहां दोनों साथ-साथ जी रहे हैं। यहां पापी और पुण्यात्मा अलग-अलग नहीं हैं, दोनों साथ जी रहे हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। परमात्मा दोनों को अपने में समाए हुए है। अस्तित्व बड़ा

है। वह कोई तर्क की कसौटी पर कटा हुआ नहीं है, अतर्क्य है। वहां दोनों एक-दूसरे में मिले हुए हैं।
ऐसा हुआ कि जुन्नैद ने एक रात प्रार्थना की परमात्मा से कि मैं जानना चाहता हूं कि इस गांव में कोई ऐसा आदमी है, जो महापापी हो; क्योंकि उसको देख कर, उसको समझ कर मैं पाप से बचने की कोशिश करूंगा। मेरे पास मापदंड हो जाएगा कि यह महापापी है, इस जीवन से बचना।
आवाज आई कि तेरा पड़ोसी!
हैरान हुआ जुन्नैद। उसने कभी सोचा भी न था कि उसका पड़ोसी और महापापी! साधारण आदमी था, काम-धंधा करता था, दुकान चलाता था; महापापी का तो उसने सोचा भी न था। उसका तो ख्याल था कि महापापी होगा कोई रावण, महापापी कोई होगा कोई महादुष्ट, शैतान। यह आदमी दुकान चलाता है, बाल-बच्चे पालता है। बड़ी उलझन में पड़ गया। यह तो साधारण आदमी था। इसको तो महापापी कोई भी नहीं कहेगा।
दूसरी रात उसने फिर प्रार्थना की कि ठीक; तू जो कहे, ठीक; अब मुझे एक और मापदंड चाहिए कि इस गांव में जो सबसे बड़ा महात्मा हो, पुण्यात्मा हो, उसकी मुझे खबर दे दे।
परमात्मा ने कहा कि वही आदमी, वह जो तेरे पड़ोस में है।
जुन्नैद ने कहा, तू मुझे मुश्किल में डाल रहा है, मैं वैसे ही काफी मुश्किल में हूं। दिन भर उस आदमी को देखता रहा, ऐसा कुछ महापाप नहीं देखा। और अब और झंझट खड़ी हो गई, पुण्यात्मा भी वही है!
तो आवाज आई--मेरी दुनिया में दोनों जुड़े हैं।
सिर्फ बुद्धि तोड़ कर चीजों को देखती है। यहां बड़े से बड़े संत के पीछे
भी छाया पड़ती है। यहां बड़े से बड़े पापी के चेहरे पर भी रोशनी है। इसीलिए तो यह संभव होता है कि पापी चाहे तो संत हो जाए, संत चाहे तो पापी हो जाए। इतनी आसानी से बदलाहट इसीलिए तो संभव है कि दोनों छिपे हैं एक में ही।
अंधेरा और उजेला अलग-अलग नहीं हैं; रात और दिन जुड़े हैं। तर्क तोड़ता
है और साफ रास्ते बनाता है। तर्क ऐसे है जैसे कि तुमने एक छोटा सा बगीचा बना लिया हो साफ-सुथरा, कटा-पिटा। जीवन जंगल की तरह है। वहां कुछ साफ-सुथरा नहीं है। वहां सब चीजें एक-दूसरे से उलझी हैं।
जो जीवन को समझने चला है, उसे साफ कटे-कटाए उत्तरों से बचने की क्षमता चाहिए। उनको पकड़ लेने में सुरक्षा है; क्योंकि तुम्हें आश्वासन हो जाता है कि ठीक, मुझे पता है। जैसे ही तुम्हें लगता है कि मुझे पता है, तुम्हारी हिम्मत आ जाती है, जिंदगी में चलने में भरोसा आ जाता है। इसलिए तुम डरते हो ज्ञान छोड़ने से। इसलिए बड़ी पीड़ा होती है। तुमसे कोई धन छीन ले, इतनी मुसीबत नहीं, फिर कमा लेंगे। और धन तो मिट्टी थी--तुम जानते ही थे। तुमसे कोई पद छीन ले, कोई बड़ी चिंता की बात नहीं है, तुम खुद भी त्याग सकते हो। लेकिन ज्ञान!
तो इधर मैं देखता हूं, एक अनूठी घटना घटती है। एक आदमी समाज छोड़ देता है, गांव छोड़ देता है, घर छोड़ देता है, पत्नी-परिवार छोड़ देता है; लेकिन अगर वह जैन था तो हिमालय पर भी जैन रहता है; हिंदू था तो हिंदू रहता है; मुसलमान था तो मुसलमान रहता है। जिस समाज को छोड़ कर भाग आया, उसी ने यह मुसलमान होना दिया था; उसी ने यह ज्ञान दिया था कि तुम मुसलमान हो; यह कुरान सच्ची किताब है, सब किताबें बाकी गलत हैं। सबको छोड़ आया, लेकिन ज्ञान को बचा कर आ जाता है हिमालय पर भी। कुछ भी नहीं बदला इस आदमी की जिंदगी में; क्योंकि ज्ञान का भरोसा इसे यहां भी है।
ज्ञान तुम छोड़ दो, और जहां तुम खड़े हो वहीं हिमालय आ जाएगा। हिमालय का अर्थ ही इतना है कि जहां सब रहस्यपूर्ण है; जहां उत्तुंग शिखर हैं, जिन्हें तुम छू न सकोगे; और जहां अनंत खाइयां हैं, जिनमें तुम उतर न सकोगे; जो हमारे सभी पैमानों से बड़ा है।
विस्मय का अर्थ हैः जहां तुम्हारी बुद्धि व्यर्थ हो जाती है; जहां तुम्हारा अहंकार असमर्थ हो जाता है; जहां तुम एकदम असहाय हो जाते हो; तुम रो सकते हो वहां, हंस सकते हो वहां, लेकिन बोल नहीं सकते।
कहा जाता है कि मूसा जब सिनाई के पर्वत पर गए, तो रोए भी, हंसे भी, पर बोले नहीं। पीछे लौट कर जब उनके शिष्यों ने पूछा कि यह क्या हुआ? परमात्मा

सामने मौजूद था! और परमात्मा ने खुद कहा, मोजेज! जूते बाहर उतार कर आ; क्योंकि यह पवित्र भूमि है। यहां मैं मौजूद हूं। तो तुमने जूते उतारे। तुम रोए भी, तुम हंसे भी, बोले क्यों नहीं? यह मौका क्यों छोड़ दिया? जो भी पूछने जैसा था, पूछ लेना था। एक कुंजी तो मांग ही लेनी थी, जिससे सभी ताले खुल जाते।
मोजेज ने कहा, जब वह सामने था, तब बुद्धि खो गई; तब हृदय ही बचा। खुशी में रोया भी, खुशी में हंसा भी।
और यह मजा है जिंदगी का कि खुशी में तुम रो भी सकते हो और हंस भी सकते हो। इसलिए यह मत सोचना कि जो रोता है, वह दुख में ही रोता है--वह तर्क का हिसाब है। जिंदगी तर्क को मानती नहीं, सब तर्क की सीमाओं को तोड़ कर जिंदगी की नदी बाढ़ की तरह बहती है। आदमी खुशी में रो भी सकता है। तब उसके आंसुओं का गुणधर्म बदल जाता है। तब उसके आंसुओं में आनंद की झलक होती है। हंस भी सकता है। ये विपरीत एक को ही प्रकट करने वाले बन सकते हैं। यही जीवन का रहस्य है।
तो मोजेज ने कहा, हृदय ही बचा, मेरी बुद्धि तो खो गई। जहां मैंने जूते छोड़े, लगता है वहीं सिर भी छूट गया।
और मंदिर के बाहर जूते ही मत छोड़ना, सिर भी वहीं रख आना। जूतों के साथ
जो सिर को रख आएगा मंदिर के बाहर, वही मंदिर में प्रविष्ट होता है। और जूते और सिर का बड़ा जोड़ है। इसलिए जब तुम किसी से गुस्से में आ जाते हो तो जूता उसके सिर में मारते हो। साधु अपना ही जूता अपने सिर में मार लेता है। ये दो छोर हैं। ये दो अतियां हैं। एक तरफ जूते हैं, एक तरफ सिर है, दोनों के मध्य में तुम हो। और वह जो मध्यबिंदु है तुम्हारा, वहां सभी विपरीत मिल रहे हैं। वहां तुम्हारे पैर और वहां तुम्हारा सिर मिल रहा है--वही हृदय है। तो मोजेज ने कहा, रोया, हंसा; क्योंकि विस्मय से भर गया, अवाक रह गया। मोजेज ने कहा, अब सो न सकूंगा; अब जो देखा है, उसे अनदेखा न कर सकूंगा; अब जो हो गया, अब उसका मिटना नहीं हो सकता। वह मोजेज जो पहले था, अब बचा नहीं। अब मैं दूसरा ही आदमी हूं। यह एक नया जन्म है।
इसको हिंदू "द्विज" कहते हैं--जब कोई आदमी का ऐसा दूसरा जन्म हो जाए।
सभी ब्राह्मण द्विज नहीं हैं। कभी-कभी कोई ब्राह्मण द्विज हो पाता है। द्विज का मतलब जनेऊ पहन लेने से नहीं है। द्विज शब्द का अर्थ हैः दुबारा जिसका जन्म हो। यह मोजेज ने कहा कि अब मैं द्विज हूं, ट्वाइस-बॉर्न। अब मैं दूसरा आदमी हूं; अब वह आदमी मर गया।
विस्मय से अगर तुम गुजरोगे तो तुम्हारा पुराना मर जाएगा और नये का जन्म होगा। और अगर तुम विस्मय में ठहर गए, तो प्रतिपल नया जन्मता है और पुराना नष्ट होता है; प्रतिपल पुराना जाता है और नया आता है। फिर तुम्हारी धारा शाश्वत है। फिर तुम कभी जरा-जीर्ण न होओगे; फिर तुम्हें शाश्वत जीवन की स्फुरणा मिल गई।
इसलिए शिव कहते हैंः "विस्मय योग की भूमिका है।"
दूसरा सूत्र हैः "स्वपदम शक्तिः। स्व में स्थिति शक्ति है।"
विस्मय भूमिका है। विस्मय का अर्थ हैः भीतर की तरफ यात्रा; मैं कौन हूं, इस प्रश्न की अंतर-खोज। बाहर गए--आश्चर्य; बाहर गए--तर्क; बाहर गए-- विज्ञान। भीतर आए--विस्मय, ध्यान, प्रार्थना। सारी विधि बदल जाती है। विस्मय तुम्हें भीतर लाएगा। क्योंकि जब सारा जगत रहस्यपूर्ण मालूम पड़ेगा, तब एक ही प्रश्न महत्वपूर्ण रह जाएगा कि मैं कौन हूं? यह विस्मय का मौलिक आधार है कि मैं कौन हूं? और जब तक मैं इस "मैं" को ही न जान लूं, तब तक मैं जिसे जानने चला हूं, वह यात्रा हो नहीं सकती। कैसे मैं जानूंगा इन वृक्षों को, कैसे मैं जानूंगा तुम्हें, कैसे जानूंगा पर को, जब मैं ही अभी अज्ञात और अज्ञान में हूं; जब मुझे मेरा ही पता नहीं है।
इसलिए मैं कौन हूं--यह महामंत्र है। और जल्दी उत्तर मत देना; क्योंकि तुम्हारे पास उत्तर तैयार हैं। तो मैं कौन हूं? तुम भीतर से कहते हो, मैं आत्मा हूं। यह उत्तर काम न आएगा। यह तो तुम्हें पता ही है। इससे तुम्हारी जिंदगी बदली नहीं। ज्ञान आग है; वह तुम्हें जला देगा। जब तुम कहते हो--मैं कौन हूं? और भीतर से आवाज आती है, वह भीतर की आवाज नहीं है। वह तुम्हारा सिर बोल रहा है; सिर में छिपे शास्त्र बोल रहे हैं; स्मृति बोल रही है। जब

तुम कहते हो मैं आत्मा हूं, तो यह दो कौड़ी का है; इसका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि इससे तुम बदले नहीं; यह आग नहीं है, यह राख है। इसमें कभी अंगारा रहा होगा--किसी ऋषि को इसमें अंगारा रहा होगा--तुम्हारे लिए तो यह सिर्फ राख है। जिसके लिए अंगारा रहा वह तो खो गया इस जगत से, तुम राख को ढो रहे हो।
मैं कौन हूं--इसको तुम पूछते जाना और उधार उत्तर मत देना। जब भी उधार उत्तर आए, कहना कि यह मेरा उत्तर नहीं, मेरा जाना नहीं, मेरा कैसे हो सकता है! जो मैं जानता हूं, वही केवल मेरा हो सकता है। जो तुम उपलब्ध करोगे अपने श्रम से, वही केवल तुम्हारी संपदा है। ज्ञान में चोरी नहीं चल सकती और न ज्ञान में भिखमंगापन चलता है। न तुम भीख मांग सकते हो, न तुम चोरी कर सकते हो। यहां डकैती नहीं चल सकती। यहां तो तुम्हें स्व-श्रम से ही स्वयं को निर्मित करना होगा।
दूसरा सूत्र हैः "स्व में स्थिति शक्ति है।"
जैसे ही विस्मय पैदा हो, भीतर की तरफ चलना, डूबना, और स्व में स्थित हो जाने की चेष्टा करना। क्योंकि जब तुम पूछते हो--मैं कौन हूं, तो कब तुम्हें उत्तर मिलेगा? अगर इसका उत्तर तुम्हें चाहिए तो भीतर स्व में ठहरना पड़ेगा। उसको ही हमने स्वास्थ्य कहा है--स्वयं में ठहर जाना। और जब कोई व्यक्ति स्वयं में ठहर जाएगा, तभी तो देख पाएगा। दौड़ते हुए तुम कैसे देख पाओगे? तुम्हारी हालत ऐसी है कि तुम एक तेज रफ्तार की कार में जा रहे हो। एक फूल तुम्हें खिड़की से दिखाई पड़ता है। तुम पूछ भी नहीं पाते यह क्या है कि तुम आगे निकल गए। तुम्हारी रफ्तार तेज है। और वासना से तेज रफ्तार दुनिया में किसी और यान की नहीं है। चांद पर पहुंचना हो, राकेट भी वक्त लेता है; तुम्हारी वासना को उतना वक्त भी नहीं लगता, इसी क्षण तुम पहुंच जाते हो। वासना तेज से तेज गति है। और जो वासना से भरा है, उसका अर्थ है कि वह ठहरा हुआ नहीं है; भाग रहा है, दौड़ रहा है। और तुम इतनी दौड़ में हो कि तुम पूछो भी कि मैं कौन हूं, तो उत्तर कैसे आएगा?
यह दौड़ छोड़नी होगी। स्व में स्थित होना होगा। थोड़ी देर के लिए सारी वासना, सारी दौड़, सारी यात्रा बंद कर देनी होगी। लेकिन एक वासना समाप्त नहीं हो पाती कि तुम पच्चीस को जन्म दे लेते हो; एक यात्रा पूरी नहीं हो पाती कि पच्चीस नये रास्ते खुल जाते हैं, तुम फिर दौड़ने लगते हो। तुम्हें बैठना आता ही नहीं। तुम रुके ही नहीं हो जन्मों से।
मैंने सुना है कि एक सम्राट ने एक बहुत बुद्धिमान आदमी को वजीर रखा। लेकिन वजीर बेईमान था और उसने जल्दी ही साम्राज्य के खजाने से लाखों- करोड़ों रुपये उड़ा दिए। जिस दिन सम्राट को पता चला, उसने वजीर को बुलाया और उसने कहा कि मुझे कुछ कहना नहीं। जो तुमने किया है, वह ठीक नहीं। और ज्यादा मैं कुछ कहूंगा नहीं। तुमने भरोसे को तोड़ा। बस इतना ही कहता हूं कि तुम अब अपना मुंह मुझे मत दिखाओ। इस राज्य को छोड़ कर चले जाओ। और व्यर्थ की बातचीत इसमें न फैले, इसलिए मैं किसी को भी इस संबंध में कुछ न कहूंगा। तुम्हें भी कोई किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं।
वजीर ने कहा, सुनें! कहेंगे, चला जाऊंगा। यह पक्की है बात कि मैंने करोड़ों रुपये चुराए हैं। लेकिन फिर भी एक सलाह वजीर होने के नाते मैं आपको देता हूं। और वह यह कि अब मेरे पास सब कुछ है। बड़ा महल है, पहाड़ पर बंगले हैं, समुद्र के किनारे बंगले हैं--सब कुछ मेरे पास है। पीढ़ियों दर पीढ़ियों तक अब मुझे कुछ कमाने की जरूरत नहीं, बच्चों को कुछ कमाने की जरूरत नहीं। आप मुझे अलग करके दूसरे आदमी को वजीर रखेंगे, उसको फिर अ ब स से शुरू करना पड़ेगा।
सम्राट बुद्धिमान था, उसकी बात समझ में आ गई।
ऐसा क्षण तुम्हारे जीवन में कभी नहीं आता, जब तुम कह सको अब सब मेरे पास है। जिस दिन यह क्षण आ जाएगा, उसी दिन दौड़ बंद होगी। अन्यथा तुम हर घड़ी अ ब स से शुरू कर रहे हो। हर घड़ी नयी वासना पकड़ लेती है, नया चोर आ जाता है, नया लुटेरा खजाना तोड़ने लगता है। और एकाध लुटेरा हो तो ऐसा भी नहीं है; बहुत वासनाएं हैं। तुम एक साथ बहुत दिशाओं में दौड़ रहे हो। तुम एक साथ बहुत सी चीजों को पाने की कोशिश कर रहे हो। तुमने कभी बैठ कर यह भी नहीं सोचा कि उनमें से कई चीजें तो विपरीत हैं, उनको तो तुम पा ही नहीं सकते;

क्योंकि तुम एक को पाओगे तो दूसरी खोएगी; दूसरी को पाओगे तो पहली खो जाएगी।
मुल्ला नसरुद्दीन मरता था, तो उसने अपने बेटे को कहा कि अब मैं तुझे
दो बातें समझा देता हूं। मरने के पहले ही तुझे कह जाता हूं, इन्हें ध्यान में रखना। दो बातें हैं। एक--आनेस्टी, ईमानदारी। और दूसरी है--वि.जडम, बुद्धिमानी। तो दुकान तू सम्हालेगा, काम तू सम्हालेगा। दुकान पर तख्ती लगी है--आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी। ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है। इसका पालन करना। कभी किसी को धोखा मत देना। कभी वचन भंग मत करना। जो वचन दे, उसे पूरा करना।
बेटे ने कहा, ठीक। दूसरा क्या है? बुद्धिमानी, उसका क्या अर्थ है? नसरुद्दीन ने कहा, भूल कर कभी किसी को वचन मत देना।
बस, ऐसा ही विपरीत बंटा हुआ जीवन है। ईमानदारी भी और बुद्धिमानी भी, दोनों सम्हालने की कोशिश है। वचन पूरा करना ईमानदारी का लक्ष्य है। वचन कभी मत देना बुद्धिमानी का लक्ष्य है। इधर तुम चाहते हो कि लोग तुम्हें संत की तरह पूजें और उधर तुम चाहते हो कि तुम पापी की तरह मजे भी लूटो। बड़ी कठिनाई है। इधर तुम चाहते हो कि राम की तरह तुम्हारे चरित्र का गुणगान हो; लेकिन उधर तुम रावण की तरह दूसरे की स्त्रियों को भगाने में तत्पर हो। तुम असंभव संभव करना चाहते हो। तुम होना तो रावण जैसे चाहते हो, प्रतिष्ठा राम जैसी चाहते हो। बस, तब तुम मुश्किल में पड़ जाते हो। तब विपरीत दिशाओं में तुम्हारी यात्रा चलती है। और अनंत तुम लक्ष्य बना लेते हो। उन सब में तुम बंट जाते हो। टुकड़े-टुकड़े हो जाते हो। जीवन के आखिर में तुम पाओगे कि जो भी तुम लेकर आए थे, वह खो गया।
एक बहुत बड़ा जुआरी हुआ। बहुत समझाया पत्नी ने, परिवार ने, मित्रों ने; लेकिन सुना नहीं, धीरे-धीरे सब खो गया। एक दिन ऐसी हालत आ गई कि सिर्फ एक रुपया घर में बचा। पत्नी ने कहा, अब तो चौंको। अब तो सम्हलो। पति ने कहा, जब इतना सब चला गया और एक रुपया ही बचा है, तो आखिरी मौका मुझे और दे। कौन जाने, एक रुपये से भाग्य खुल जाए।
जुआरी सदा ऐसा ही सोचता है। और फिर उसने कहा कि जब लाखों चले गए और अब
एक ही बचा, अब एक के लिए क्या रोना-धोना। और एक रुपया चला ही जाएगा, कोई बचने वाला नहीं है। लगा लेने दे दांव इस पर भी।
पत्नी ने भी सोचा कि अब जब सब ही चला गया और एक ही बचा है, एक कोई टिकने वाला वैसे भी क्या है; सांझ के पहले खत्म हो जाएगा। तो ठीक है, तू जा, अपनी आखिरी इच्छा भी पूरी कर ले।
जुआरी गया जुए के अड्डे पर। बड़ा चकित हुआ। हर बाजी जीतने लगा। एक के हजार हुए, हजार के दस हजार हुए, दस हजार के पचास हजार हुए, पचास हजार के लाख हो गए; क्योंकि वह इकट्ठे ही दांव पर लगाता गया। फिर उसने लाख भी लगा दिए और कहा बस अब यह आखिरी हल हो गया सब। और वह सब हार गया। वह घर लौटा। पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा, एक रुपया चला गया।
क्योंकि तुम वही खो सकते हो, जो तुम लेकर आए थे। लाख की क्या बात करनी! उसने कहा, एक रुपया खो गया, कोई चिंता की बात नहीं। वह दांव खराब गया। पर उसने यह बात न कही कि लाख हो गए थे। ठीक ही किया; क्योंकि जो तुम्हारे नहीं थे, उनके खोने का सवाल भी क्या है!
मरते वक्त तुम पाओगे, जो आत्मा तुम लेकर आए थे, वह तुम गंवा कर जा रहे हो। बस, एक खो जाएगा! बाकी तुमने जो गंवाया, जोड़ा, मिटाया, बनाया, उसका कोई बड़ा हिसाब नहीं है; अंतिम हिसाब में उसका कोई मूल्य नहीं है। तुमने लाखों जीते हों, तो भी मौत के वक्त तो वे सब छूट जाएंगे; हिसाब एक का रह जाएगा। वह एक तुम हो। और अगर तुम उस एक में ठहर गए तो तुम जीत गए। अगर तुम उस एक में आ गए, रम गए... ।
उसके लिए शिव कह रहे हैंः "स्व में स्थिति शक्ति है।"
तुम दुर्बल हो, दीन हो, दुखी हो, उसका कारण यह नहीं है कि तुम्हारे पास रुपये कम हैं, मकान नहीं है, धन-दौलत नहीं है। तुम दीन हो, दुखी हो, क्योंकि तुम स्वयं में नहीं हो। स्वयं में होना ऊर्जा का स्रोत है। वहां ठहरते ही व्यक्ति महाऊर्जा से भर जाता है।

जीसस से किसी ने पूछा कि मैं क्या करूं; मैं बहुत दीन हूं, गरीब हूं, दुखी हूं। जीसस ने कहा, तू कुछ और मत कर; पहले परमात्मा के राज्य को खोज ले, शेष सब अपने आप पीछे चला आएगा।
एक को खोज लेने से शेष सब पीछे चला आता है। और एक को गंवा देने से सब गंवा दिया जाता है। वह एक तुम हो। और वही तुम्हारी संपदा है; क्योंकि उसी को लेकर तुम आए हो। और आखिरी हिसाब में यही पूछा जाएगा कि जो तुम लेकर आए थे, उसे बचा सके? या उसको भी गंवा दिया?
"स्व में स्थिति शक्ति है। स्वपदम शक्तिः।"
अपने में ठहर जाना महाशक्तिवान हो जाना है। महाशक्तिवान तो तुम हो; लेकिन तुम ऐसे हो जैसे कि किसी बाल्टी में हजार छेद हों और कोई कुएं से पानी भर रहा हो। पानी भरता हुआ दिखाई पड़ता है हर बार; क्योंकि जब तक बाल्टी पानी में डूबी रहती है, बिल्कुल भरी रहती है। जैसे ही बाल्टी पानी से ऊपर उठती है, तुम खींचना शुरू करते हो, कि हजार मार्गों से पानी गिरना शुरू हो जाता है। जब तक बाल्टी ऊपर आती है, तब तक उसमें कुछ भी नहीं बचता।
हजार वासनाएं तुम्हारे हजार छेद हैं। उनसे तुम्हारी ऊर्जा खोती है।
जब तक तुम सपना देखते हो, तब तक बाल्टी भरी है; जब तक तुम कामना करते हो, तब तक बाल्टी भरी है। जैसे ही कामना को कृत्य में लाते हो, जैसे ही खींचना शुरू करते हो कुएं से बाल्टी को, जैसे ही सपने को सत्य बनाने की कोशिश करते हो, ऊर्जा खोनी शुरू हो जाती है। हाथ आते तक बाल्टी हाथ आ जाती है, हजार छेद हाथ में आ जाते हैं; पानी की एक बूंद नहीं आती, प्यास उतनी की उतनी रह जाती है। हर बार जब खींचते हो, बड़ा शोरगुल मचता है कुएं में, और लगता है पानी चला आ रहा है, तूफान आ रहा है; हाथ कुछ भी नहीं आता। हर बार तुम खाली हाथ लौटते हो। लेकिन वासना बड़ी अदभुत है।
एक मछलीमार को कोई राहगीर पूछता था, कितनी मछलियां पकड़ीं? सांझ होने
के करीब थी, सुबह से बैठा था बंसी को डाले। यह राहगीर कई बार वहां से निकला और देख गया था। आखिर उससे न रहा गया। उसने पूछा, कितनी पकड़ीं?
उस मछलीमार ने कहा, जिस एक को मैं पकड़ने की अभी कोशिश कर रहा हूं यह, और अगर दो और पकड़ लीं, तो तीन होंगी। अभी पकड़ी एक भी नहीं है--जिसको पकड़ रहा हूं यह एक, और दो और, तो तीन होंगी।
तुम हमेशा इस मछलीमार की हालत में हो--जिसको पकड़ रहे हो यह एक, और दो अभी सपने में हैं। और यह भी अभी सत्य नहीं हुई है। और हिसाब तीन का है, और तुम बड़े प्रसन्न हो रहे हो।
जब भी बाल्टी हाथ में आती है, तुम पाते हो, फिर खाली आ गई। और ध्यान रहे, जितनी बार तुम डालते हो कुएं में, छेद उतने बड़े होते जाते हैं। इसलिए बच्चे प्रसन्न मालूम होते हैं। बूढ़े बिल्कुल उदास मालूम होते हैं; उनकी बाल्टी छेद ही छेद हो गई। कितनी बार डाल चुके, निकाल चुके! सब छेद बड़े हो गए। लेकिन फिर भी पुरानी आशा मरती नहीं--कभी तो भरी हुई आ जाएगी। क्योंकि भरी हुई दिखाई पड़ती है! फिर पानी गिरता हुआ भी दिखाई पड़ता है।
शक्ति तो तुम्हारे पास है परमात्मा की; लेकिन मन तुम्हारे पास छेद वाली बाल्टी की तरह है।
स्वपदम शक्तिः का अर्थ है, जब तुम वासनाओं में न दौड़ोगे। एक वासना गिरी, एक छेद बंद हुआ। वासनाएं गिर गईं, सारे छेद खो गए। और तब तुम्हें किसी और कुएं में बाल्टी डालने की जरूरत नहीं, तुम खुद ही कुआं हो। बड़ी है ऊर्जा तुम्हारे पास! सिर्फ तुम्हारी व्यर्थ खोती शक्ति बच जाए तो तुम महाऊर्जा लेकर पैदा हुए हो। तुम्हें कुछ पाना नहीं है; जो भी पाने योग्य है, वह तुम्हारे पास है; सिर्फ उसे खोने से बचना है। परमात्मा को पाने का सवाल नहीं है, सिर्फ खोने से बचना है। वह तुम्हें मिला ही हुआ है। कैसे तुम खो देते हो, यही बड़ी से बड़ी रहस्य की घटना है जगत में।
तीसरा सूत्र हैः "वितर्क अर्थात विवेक से आत्मज्ञान होता है।"
एक-एक सूत्र कुंजी की तरह है। पहलाः विस्मय। विस्मय मोड़ेगा स्वयं की तरफ। दूसराः स्वयं में ठहरना। ताकि तुम महाऊर्जा को उपलब्ध हो जाओ। लेकिन कैसे तुम स्वयं में ठहरोगे, उसकी कुंजी तीसरे सूत्र में हैः विवेक, वितर्क आत्मज्ञानम्।

यह वितर्क शब्द समझ लेने जैसा है। तर्क तो हम जानते हैं। तर्क विज्ञान के हाथ है। वह आश्चर्य को काटने की तलवार है। तर्क काटता है, विश्लेषण करता है। तर्क बाहर जाता है। वितर्क भीतर जाता है। वह काटता नहीं, जोड़ता है। तर्क विश्लेषण है--एनालिसिस। वितर्क संश्लेषण है-- सिंथीसिस।
फरीद हुआ एक फकीर। एक भक्त उसके पास एक सोने की कैंची ले आया; बड़ी बहुमूल्य थी, हीरे-जवाहरात लगे थे। और उसने कहा कि मेरे परिवार में यह चली आ रही है सदियों से। करोड़ों का दाम है इसका। अब मैं इसका क्या करूं? आपके चरणों में रख जाता हूं।
फरीद ने कहा, तू इसे वापस ले जा। अगर तुझे कुछ भेंट ही करना हो तो एक सुई-डोरा ले आना। क्योंकि हम तोड़ने वाले नहीं, जोड़ने वाले हैं। कैंची काटती है। अगर भेंट ही करना हो, एक सुई-डोरा ले आना।
तर्क कैंची की तरह है, काटता है। हिंदुओं में गणेश तर्क के देवता हैं, इसलिए चूहे पर बैठे हैं। चूहा यानी कैंची। वह काटता है। चूहा जीवित कैंची है। वह काटता ही रहता है। गणेश उस पर बैठे हैं। वे तर्क के देवता हैं। और हिंदुओं ने खूब मजाक किया गणेश का। उन्हें देख कर अगर तुम्हें हंसी न आए तो हैरानी की बात है। आती नहीं तुम्हें; क्योंकि तुम उनसे भी आश्वस्त हो गए हो कि वे ऐसे हैं। अन्यथा वे हंसी योग्य हैं।
गणेश के शरीर को ठीक से देखो! वह सब ढंग से बेढंगा है। सिर भी अपना नहीं है, वह भी उधार है। तार्किक के पास सिर उधार होता है। बहुत बड़ा है, हाथी का है; लेकिन अपना नहीं है। उधार सिर हाथी का भी हो तो किसी काम का नहीं; वह तुम्हें सिर्फ कुरूप करेगा। भारी भरकम शरीर है। चूहे पर सवार हैं। यह भारी भरकम शरीर देखने का ही है। सवारी तो चूहे की है। कितना ही बड़ा पंडित हो, लेकिन सवारी चूहे की है--वह कैंची, तर्क!
फरीद ने ठीक कहा कि अगर भेंट ही करनी हो तो एक सुई-धागा दे जाना; क्योंकि हम जोड़ते हैं।
वितर्क जोड़ने की कला है। वितर्क शब्द का अर्थ होता है--विशेष तर्क। साधारण तर्क तोड़ता है; विशेष तर्क जोड़ता है। बुद्ध, महावीर, शिव, लाओत्से, वे भी तर्क करते हैं, लेकिन उनका तर्क वितर्क है।
एक और तर्क है, जिसको हम कुतर्क कहते हैं। तीन तरह की संभावनाएं हैं।
तर्क तोड़ता है, विश्लेषण करता है; लेकिन लक्ष्य उसका बुरा नहीं है, आश्चर्य को हल करना है। उसे तोड़ने में रस नहीं है, तोड़ना प्रक्रिया है; लक्ष्य तो किसी सिद्धांत की उपलब्धि है, जिससे कि आश्चर्य समाप्त हो जाए, चीजें साफ-सुथरी हो जाएं। लक्ष्य सृजनात्मक है तर्क का।
लेकिन जब तर्क का कोई लक्ष्य ही नहीं होता और सिर्फ तोड़ना ही लक्ष्य
हो जाता है; जब मजा मारने में ही आने लगता है, तब हम उसे कुतर्क कहते हैं। तर्क पागल हो जाए तो कुतर्क हो जाता है। विक्षिप्त अवस्था है तर्क की, तब वह पागल हो जाता है; तब वह तोड़ने में लग जाता है; तब कोई और लक्ष्य नहीं रह जाता, नष्ट करना ही रसपूर्ण हो जाता है।
वितर्क, तर्क की अंतर्यात्रा है। तुम यहां तक आए हो घर से चल कर, तो नजर, तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारी दिशा, इस तरफ रही है--मेरी तरफ रही है। पीठ घर की तरफ हो गई थी। यहां से जब तुम लौटोगे घर की तरफ, रास्ता वही होगा। रास्ते में क्या फर्क पड़ना है! रास्ता वही होगा; सिर्फ दिशा बदल जाएगी--पीठ मेरी तरफ होगी, मुंह घर की तरफ होगा।
तर्क और वितर्क में रास्ता तो वही है; इसीलिए उसको वितर्क कहते हैं-- विशेष तर्क। रास्ता तो वही है, लेकिन दिशा बदल गई। पहले तर्क दूसरे की तरफ जा रहा था--पदार्थ की तरफ; अब अपनी तरफ आ रहा है--घर की तरफ। और दिशा बदलने से सारा का सारा गुणधर्म बदल जाता है। दूसरे की तरफ जाता था, तो तोड़ कर ही जाना जा सकता था; क्योंकि दूसरे में प्रवेश करना हो तो तोड़ कर ही प्रवेश हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है।
अगर तुम मेडिकल कालेज में जाओ तो वहां तुम विद्यार्थियों को काटते हुए पाओगे--मेंढक को काट रहे हैं; क्योंकि उसके भीतर जानना है। और तो कोई उपाय भी नहीं। मेंढक को काट कर ही भीतर जाना जा सकता है। लेकिन खुद के भीतर जानना हो तो काटने की तो कोई भी जरूरत नहीं है; क्योंकि तुम भीतर मौजूद ही

हो। दूसरे को जानना हो तो तोड़ कर जानना पड़ेगा, मार कर जानना पड़ेगा; क्योंकि उसके भीतर प्रवेश का और कोई रास्ता नहीं है। स्वयं को जानना हो तो तोड़ने और मारने का कोई सवाल नहीं; वहां तो तुम मौजूद ही हो। स्वयं को जानना हो तो सिर्फ आंख बंद कर लेनी काफी है। आंख बंद करने का नाम ध्यान है। बाहर से ध्यान हट जाए, भीतर चलने लगे, तो तर्क वितर्क हो जाता है।
वितर्क का ही दूसरा नाम विवेक है--होश, अवेयरनेस। और यह विवेक या वितर्क संश्लेषण की प्रक्रिया है। जैसे-जैसे तुम भीतर आते हो, वैसे-वैसे तुम इकट्ठे होते जाते हो। ऐसा समझो कि एक वर्तुल है, बड़ी उसकी परिधि है। वर्तुल के मध्य में उसका केंद्र है। अगर तुम परिधि पर दो बिंदु बनाओ तो दूर होंगे। फिर दोनों बिंदुओं से तुम दो रेखाएं खींचना शुरू करो केंद्र की तरफ। तो जैसे-जैसे दोनों रेखाएं केंद्र के करीब आएंगी, वैसे-वैसे पास आने लगेंगी--और पास, और पास। और जब केंद्र पर दोनों आ जाएंगी तो एक ही रेखा रह जाएगी, दो नहीं; केंद्र पर मिल जाएंगी। अगर इन्हीं दो रेखाओं को तुम परिधि के बाहर फैलाते चले जाओ तो ये दूर होती जाएंगी--और दूर, और दूर, और दूर। अनंत आकाश में इनकी अनंत दूरी हो जाएगी।
तुम्हारे भीतर से जब तुम बाहर की तरफ जाते हो तो चीजें एक-दूसरे से दूर होती जाती हैं, फासला बढ़ता जाता है। इसलिए हजार तरह के विज्ञान पैदा हो गए हैं, होंगे ही; क्योंकि फासला बड़ा होता जाता है। रोज नये विज्ञान पैदा हो रहे हैं; क्योंकि जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, और फासला हो जाता है। अब वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं; क्योंकि वे कहते हैं कि एक विज्ञान की भाषा दूसरे की समझ में नहीं आती। और अब ऐसा एक भी आदमी पृथ्वी पर नहीं है जो सभी विज्ञान को समझता हो; जो सभी के बीच कोई संश्लेषण कर ले। ऐसे तो बहुत कठिन हो गया मामला। एक ही विज्ञान को जानना असंभव जैसा है। तो दुनिया में ज्ञान बहुत है, लेकिन संश्लेषण बिल्कुल खो गया। और धर्म एक है, उनके नाम कितने ही अलग हों; क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति भीतर की तरफ आता है, फासला कम होने लगता है। केंद्र पर सब चीजें जुड़ जाती हैं। केंद्र परम संश्लेषण है-- अल्टीमेट सिंथीसिस है।
"वितर्क अर्थात विवेक से आत्मज्ञान होता है।"
तोड़ो मत! बाहर मत जाओ! दूसरे पर ध्यान मत रखो! भीतर ध्यान लाओ! जोड़ो! धीरे-धीरे सरकते आओ केंद्र की तरफ; उस जगह पहुंच जाओ, जहां तुम्हारे प्राणों का मध्यबिंदु है। वहां ठहर जाओ; महाऊर्जा उत्पन्न होगी।
वह जो हम प्रकाश देखते हैं बुद्ध और महावीर में, वह जो हम आनंद देखते हैं कृष्ण में, मीरा में, चैतन्य में--वह किस बात का आनंद है? वह रोशनी किस बात की खबर है? वे उस जगह पहुंच गए, जहां अनंत ऊर्जा का स्रोत है। अब वे दरिद्र नहीं हैं। अब वे दीन नहीं हैं। अब वे किसी से मांग नहीं रहे हैं। अब वे सम्राट हो गए।
उनका सम्राट होना तुम्हारी भी संभावना है। लेकिन एक-एक कदम उठाना जरूरी है।
विस्मय, स्व में स्थिति की धारणा, वितर्क से स्वयं तक पहुंचने का उपाय, और चौथा सूत्र हैः "लोकानंदः समाधिसुखम्। अस्तित्व का आनंद भोगना समाधि सुख है।"
और जब तुम स्वयं में पहुंच गए, ठहर गए, तो तुम अस्तित्व की गहनतम स्थिति में आ गए। वहां सघनतम अस्तित्व है; क्योंकि वहीं से सब पैदा हो रहा है। तुम्हारा केंद्र तुम्हारा ही केंद्र नहीं है, सारे लोक का केंद्र है। हम परिधि पर ही अलग-अलग हैं। मैं और तू का फासला शरीरों का फासला है। जैसे ही हम शरीर को छोड़ते और भीतर हटते हैं, वैसे-वैसे फासले कम होने लगते हैं। जिस दिन तुम आत्मा को जानोगे, उसी दिन तुमने परमात्मा को भी जान लिया। जिस दिन तुमने अपनी आत्मा जानी, उसी दिन तुमने समस्त की आत्मा जान ली; क्योंकि वहां केंद्र पर कोई फासला नहीं है। परिधि पर हममें भेद हैं। वहां भिन्नताएं हैं। केंद्र में हममें कोई भेद नहीं है। वहां हम सब एक अस्तित्व रूप हैं।
शिव कहते हैंः उस अस्तित्व को स्वयं में पाकर समाधि का सुख उपलब्ध होता है।

समाधिसुखम्--इस शब्द को समझ लेना जरूरी है। तुमने बहुत से सुख जाने हैं--कभी भोजन का सुख, कभी स्वास्थ्य का सुख, कभी प्यास लगी तो जल से तृप्ति का सुख, कभी शरीर-भोग का सुख, संभोग का सुख--तुमने बहुत सुख जाने हैं। लेकिन इन सुखों के संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है और वह यह कि उन सुखों के साथ दुख जुड़ा हुआ है। अगर तुम्हें प्यास न लगे, तो पानी पीने की तृप्ति भी न होगी। प्यास की पीड़ा तुम झेलने को राजी हो, तो पानी पीने का मजा तुम्हें आएगा। दुख पहले है, और दुख लंबा और सुख क्षण भर; क्योंकि जैसे ही कंठ से पानी उतरा, तृप्ति हो गई। फिर दुख, फिर प्यास! भूख न लगे, भूख की पीड़ा न हो, तो भोजन की कोई तृप्ति नहीं।
इसलिए एक दुनिया में बड़ी दुर्घटना घटती है--जिनके पास भूख है, उनके पास भोजन नहीं; वे भोजन का मजा ले सकते थे, उन्हें भोजन में सुख आता, क्योंकि वे बड़ा दुख झेल रहे हैं भूख का। और जिनके पास भूख नहीं है, उनके पास भोजन है; वे भोजन का सुख ले नहीं पाते; भोजन से दुख ही मिलता है उनको उलटा।
जब तक तुम्हें प्यास लगती है, तभी तक तुम्हें पानी की तृप्ति है। लेकिन तुम ऐसा जीवन जी सकते हो, जिसमें प्यास न लगे। धूप में मत जाओ, श्रम मत करो, आराम से घर में रहो--प्यास न लगेगी। तब तुम सोचते होओ कि अब खूब मजे से पानी पीयो और सुख भोगो, तो तुम पाओगे अब पानी पीने में कोई सुख नहीं है। जिस आदमी ने दिन भर श्रम किया है, उसे ही रात सोने का सुख मिलेगा। अब यह बड़ी कठिन बात हो गई। अगर रात सोने का सुख चाहिए तो दिन मजदूर जैसी जिंदगी चाहिए। कठिनाई यह है कि दिन तो तुम चाहते हो एक अमीर सम्राट जैसा और रात की नींद भी मजदूर जैसी। यह नहीं हो सकता।
बाहर के जगत में सुख और दुख जुड़े हैं। इसलिए जिस दिन तुम्हारे पास महल
आ जाएगा, उसी दिन नींद खो जाएगी। जिस दिन तुम शय्या का इंतजाम कर लोगे सुखद, उसी दिन तुम पाओगे कि करवट बदलने के सिवाय और कोई उपाय नहीं। और देखो मजदूर को! वह सो रहा है वृक्ष के नीचे। कंकड़-पत्थरों का भी उसे पता नहीं है। मच्छर भी काट रहे हैं, उनका भी उसे कुछ पता नहीं है। गरमी है, पसीना बह रहा है, उसका भी उसे कुछ पता नहीं है। यह सब गौण है। उसने दिन भर इतनी पीड़ा झेल ली है कि रात का सुख अर्जित कर लिया।
दुख की कीमत चुकानी पड़ती है सुख पाने के लिए, संसार में। यहां हर सुख
के साथ दुख जुड़ा है। और आदमी यहीं एक मजबूरी में उलझा हुआ है। वह चाहता है, सुख बचे और दुख कट जाए। यह नहीं हो सकता। यही हमने हजारों साल से कोशिश की है कि दुख कट जाए और सुख बच जाए। हम जो कर रहे हैं कोशिश, वह संभव नहीं हो पाती। निश्चित दुख कट जाता है, लेकिन उतना ही सुख कट जाता है। दुख हम चाहते नहीं, सुख हम चाहते हैं; इसलिए बड़ी झंझट है।
समाधि सुख का क्या अर्थ है? जिसके साथ दुख बिल्कुल नहीं है। समाधि सुख किसी प्यास की तृप्ति नहीं है। समाधि सुख किसी भूख में लिया गया भोजन नहीं है। समाधि सुख श्रम करके रात में ली गई निद्रा का सुख नहीं है। समाधि सुख के साथ दुख का कोई भी संबंध नहीं है। वही अंतर है सांसारिक सुख और आध्यात्मिक सुख में। समाधि सुख सिर्फ होने का सुख है। उसके साथ कोई तृषा, कोई तृष्णा, कोई दुख नहीं जुड़ा है। वह सिर्फ होने का आनंद है।
इसलिए शिव कह रहे हैं, लोकानंदः! अस्तित्व का आनंद है। तुम हो, बस इतनी
ही बात आनंदपूर्ण है। इसमें कोई तृषा और पीड़ा और इस सबका कोई संबंध नहीं है।
फिर ध्यान रहे कि आत्मा की न तो कोई प्यास है, न कोई भूख है। इसलिए वहां कोई भूख और प्यास और उनकी तृप्ति से होने वाला सुख तो हो नहीं सकता। सारी भूख-प्यास शरीर की है। इसलिए शरीर के सुख दुख से जुड़े ही रहेंगे। जो आदमी भी शरीर के सुख लेना चाहता है, उसे दुखों की तैयारी रखनी चाहिए। और जितनी वह दुख की तैयारी रखेगा, उतने ही शरीर के सुख ले सकता है। आत्मा का सुख शुद्धतम सुख है; वहां दुख का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन वह केंद्र पर घटता है; परिधि पर तो तुम शरीर हो। शरीर परिधि है।
वह तुम्हारा घेरा है घर का, वह तुम नहीं हो। वह तुम्हारा बाहरी वर्तुल है। केंद्र पर तुम आत्मा हो। वहां एक नये सुख का आविर्भाव होता है। वह सुख सिर्फ होने का सुख है--सिर्फ होना मात्र। वहां दुख की कोई खाई नहीं है और

वहां सुख का कोई शिखर नहीं है। वहां ऊंचाइयां-नीचाइयां नहीं हैं। वहां पाना-खोना नहीं है। वहां दिन-रात नहीं हैं। वहां श्रम-विश्राम नहीं हैं।
वहां तुम सिर्फ हो। वहां शाश्वत होना है। उस शाश्वत होने की एक दशा है, जो बड़ी रसपूर्ण है। उस रस में कभी विघ्न नहीं पड़ता। इसलिए उसे संत "सनातन", "शाश्वत" कहते हैं, "नित्य" कहते हैं। उस रस में कभी भी बाधा नहीं आती। कबीर ने कहा है, वहां अमृतरस झरता ही रहता है--एक सा, एकरस।
यहां भी वर्षा होती है; लेकिन उस वर्षा के लिए गरमी का होना जरूरी है।
जब गरमी से तुम उत्तप्त हो जाते हो, पृथ्वी दरार पड़ जाती है सब तरफ, वृक्ष चीख-पुकार करने लगते हैं, सब तरफ त्राहि-त्राहि मच जाती है गरमी से--तब वर्षा होती है।
तुम कहोगे, ऐसा बेहूदा नियम क्यों है? ऐसा क्यों नहीं है कि वर्षा हो
और त्राहि-त्राहि न हो?
लेकिन तब तुम्हें पूरी व्यवस्था समझनी पड़े, गणित समझना पड़े। यह त्राहि-त्राहि मचे तो ही बादल निर्मित होते हैं। जब भयंकर धूप पड़ती है, तो पानी भाप बनता है। जब पानी भाप न बने तो वर्षा नहीं हो सकती। तो जब पानी भाप बन जाएगा, आकाश में बादल सघन होंगे, और जब बादल इतने सघन हो जाएंगे कि उनको बरसना ही पड़ेगा, तभी वर्षा होगी। तो वर्षा के पहले भयंकर गरमी जरूरी है।
आत्मा के जगत में विपरीतता नहीं है; वहां द्वंद्व नहीं है। इसलिए हम उसे निर्द्वंद्व, अद्वैत--इन शब्दों से पुकारते हैं। वहां एक है, वहां दो नहीं हैं। पर तब तुम्हें समझना बहुत कठिन हो जाएगा कि वहां किस तरह का सुख होगा; क्योंकि ऐसा तो तुम्हें कोई सुख पता नहीं है, जिसके साथ दुख न जुड़ा हो।
कोई पूछ रहा था सिग्मंड फ्रायड से कि विक्षिप्तता की क्या परिभाषा है
और विक्षिप्तता तक लोग कैसे पहुंच जाते हैं? सिग्मंड फ्रायड ने बड़ा अदभुत उत्तर दिया। उसने कहा, विक्षिप्तता और सफलता, इनकी एक ही परिभाषा है। और जो ढंग सफलता तक पहुंचने का है, वही ढंग विक्षिप्तता तक पहुंचने का है। क्योंकि जब तुम सफल होना चाहते हो, तो तुम तन जाते हो। जब तुम सफल होना चाहते हो, तो तुम लड़ते हो। जब तुम सफल होना चाहते हो, तो तुम्हारे रात-दिन चिंता से भर जाते हैं। जब तुम सफल होना चाहते हो, तो प्रतिपल तुम भयभीत होते हो कि पता नहीं, जीत पाओ, न जीत पाओ। तुम अकेले ही नहीं हो सफलता के लिए, करोड़ों प्रतिद्वंद्वी हैं। तब तुम्हारी रात-दिन चिंता, पीड़ा, तनाव, तुम कंपते ही रहते हो--पता नहीं क्या होगा, क्या नहीं होगा! और यही तो पागल होने का भी रास्ता है।
तो जिनको तुम सफल कहते हो, अगर तुम उन्हें बहुत गौर से देखो, तुम उन्हें उसी तनाव की और बेचैनी की अवस्था में पाओगे, जिनमें तुम पागलों को पाते हो।
ऐसा हुआ कि जब रूस में ख्रुश्चेव प्रधानमंत्री था, तो एक पागलखाना देखने गया। कुछ जरूरी बात उसे याद आ गई, तो उसने अपने सेक्रेटरी को फोन करना चाहा। लेकिन बड़ी मुश्किल थी, वह लड़की जो आपरेटर होगी बीच में, वह कोई ध्यान ही नहीं दे रही थी। ध्यान न देने का कारण भी था, जो पीछे साफ हुआ। ख्रुश्चेव ने बार-बार उससे कहा कि शीघ्र नंबर दो, उस लड़की ने कोई फिक्र ही नहीं की। तब ख्रुश्चेव ने कहा, लड़की, तू समझती है मैं कौन हूं?
जो कि सदा ही सफल, पद पर, धन पर पहुंचे आदमी की धारणा भीतर वह पूरे वक्त, चौबीस घंटे कहता रहता है, पता है मैं कौन हूं? चाहे बोले न बोले, भीतर वह यही बोलता रहता है, पता है मैं कौन हूं? क्योंकि इसी के लिए तो सारा गंवाया है, इसी पता करवाने के लिए। आखिर नहीं रहा गया और उसने कहा, लड़की, तुझे पता है मैं कौन हूं? मैं ख्रुश्चेव बोल रहा हूं--प्रधानमंत्री!
उस लड़की ने कहा, मुझे पता नहीं कि आप कौन हैं, लेकिन मुझे पता है कि आप कहां से बोल रहे हैं--पागलखाने से!
लेकिन सभी प्रधानमंत्री वहीं से बोल रहे हैं। और कोई जगह है भी नहीं जहां से वे बोलें।
ख्रुश्चेव एक बार लंदन आया। किसी ने उसे बहुमूल्य कपड़ा भेंट किया था। कपड़ा इतना कीमती था कि वह चाहता था दुनिया का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ दर्जी

उसे बनाए। मास्को में भी उसने पुछवाया--जो अच्छे से अच्छा दर्जी था। वह चाहता था कि एक कोट भी बन जाए, एक बंडी भी बन जाए, एक पैंट भी बन जाए। पर उस दर्जी ने कहा कि मुश्किल, तीन चीजें मुश्किल। दो कोई भी बन सकती हैं। कपड़ा इतना कीमती था कि वह चाहता था पूरा सूट ही बने। तो वह लंदन ले आया। लंदन के दर्जी ने उसको देखा तो उसने कहा कि ठीक है; एक पैंट, एक कोट, एक बंडी तो बन ही सकती है, कुछ कपड़ा भी बचेगा। आपके बच्चे के लिए भी बन सकता है। तो ख्रुश्चेव बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, क्या! और मैंने अपने दर्जी को पूछा मास्को में, हद कर दी उस बेईमान ने, वह कह रहा था कि इसमें बस दो ही चीजें बन सकती हैं!
तो लंदन के दर्जी ने कहा, आप उस पर नाराज न हों। मास्को में आप बहुत बड़े आदमी हैं, ज्यादा कपड़ा लगेगा; लंदन में आप ना-कुछ हैं।
आदमी पूरे जीवन जिन-जिन सुखों की खोज में--सफलताओं की, महत्वाकांक्षाओं की खोज में होता है, उनके साथ-साथ उतने दुख झेलने की तैयारी में से गुजरना पड़ता है। और वे दुख तोड़ जाते हैं। इसके पहले कि तुम सफल होओ, तुम करीब-करीब असफल हो जाते हो। संसार में सफल कोई होता ही नहीं, क्योंकि यहां सफलता की कीमत में इतनी गहरी विक्षिप्तता झेलनी पड़ती है, इतना पागलपन झेलना पड़ता है, जब तक सफलता हाथ में आती है, हाथ में आने योग्य नहीं रह जाती।
समाधि का सुख बिल्कुल भिन्न है; वहां मूल्य तुम्हें चुकाना नहीं है। क्योंकि जो तुम पाने चले हो, वह अभी मौजूद है इसी वक्त; वह कोई भविष्य नहीं है कि जिसके लिए तुम्हें यात्रा करनी पड़े, चलना पड़े, मेहनत करनी पड़े। वह अभी मौजूद है। इसी वक्त मौजूद है। वह तुम्हें मिला ही हुआ है। वह तुम्हारी स्वभाव-सिद्ध संपदा है। और उसकी कीमत में कोई दुख नहीं है। लेकिन तब उसका स्वाद कैसा होगा?
तुमने जो भी सुख जाने हैं, उनमें से किसी से भी उसके स्वाद का पता नहीं
चल सकता; क्योंकि उन सब में दुख मिश्रित है। तुमने जो-जो अमृत जाना है, चखा है, उस सब में जहर पड़ा हुआ है; क्योंकि शरीर के साथ यह होगा ही। शरीर में जन्म और मृत्यु दोनों जुड़ी हैं; अमृत और जहर दोनों पड़े हैं। शरीर से तुम जो भी सुख जानोगे, उसमें दुख रहेगा ही। लेकिन आत्मा सिर्फ अमृत है। उसकी कोई मृत्यु नहीं। वह शाश्वत है। वहां विपरीत नहीं है। वह सिर्फ जीवन है--शुद्ध जीवन है।
इसलिए तुमने जो भी सुख चखे हैं, उनकी तिक्तता, उनकी कड़वाहट छोड़ दो, उनकी तिक्तता को बिल्कुल हटा दो, तो तुम कल्पना शायद थोड़ी सी कर पाओ। तुमने जो भी सुख जाने हैं, उन सबमें से, उनका विपरीत जो दुख का हिस्सा है, वह अलग कर दो, तो थोड़ी सी तुम्हें झलक कल्पना में आ सकती है। लेकिन वह झलक भी पक्की खबर न देगी; क्योंकि परिधि पर सिर्फ झलकें मिलती हैं; क्योंकि तुम कितना ही सोचो, जो तुमने नहीं चखा है, उसके तुम प्रत्यय और धारणा न बना सकोगे; चलना ही पड़ेगा।
ये सूत्र बड़े कीमती हैं। विस्मय से भरो। मुड़ो स्व की ओर। स्वयं में ठहरो, ताकि महाऊर्जा तुम्हें उपलब्ध हो जाए। जीवन तुम्हारा हो परम जीवन। विवेक से आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाओ--जागृति से, परम जागृति से, निद्रा को तोड़ कर। और अस्तित्व का आनंद भोग सकोगे तब तुम। समाधि सुख तुम्हारा है। समाधि सुख के संबंध में कुछ बातें और।
एक--जीवन में जो भी सुख तुम भोगते हो, वह बहुत सी बातों पर निर्भर करेगा। तुम्हारी योग्यता-अयोग्यता, शिक्षा-अशिक्षा, शक्ति-सामर्थ्य, परिवार-संबंध, सब पर निर्भर करेगा। तुम अकेले नहीं हो वहां। अगर गरीब घर में पैदा हुए हो तो उसी सुख को पाने में तुम्हें जीवन भर गंवाना पड़ेगा; अमीर घर में पैदा हुए हो, जल्दी पहुंच जाओगे। अगर बुद्धिमान हो, चालाक हो, होशियार हो गणित में, तो जल्दी पहुंच जाओगे; अगर बुद्धू हो, काफी भटकोगे; पहुंच जाओ, संदिग्ध है। शरीर रुग्ण है, मुश्किल पड़ेगा; शरीर स्वस्थ है, जल्दी पहुंच जाओगे। सांयोगिक है, हजार बातों पर निर्भर है।
लेकिन समाधि सुख किसी बात पर निर्भर नहीं है, अनकंडीशनल है, बेशर्त है। न तुम्हारी बुद्धि पर, न तुम्हारे शरीर पर, न तुम्हारी योग्यता- अयोग्यता पर, न तुम्हारी शिक्षा, परिवार पर, सुंदर-कुरूप, स्त्री-पुरुष,

किसी बात पर निर्भर नहीं; शूद्र-ब्राह्मण, हिंदू-मुसलमान, किसी बात पर निर्भर नहीं; जवान-वृद्ध, किसी बात पर निर्भर नहीं; बेशर्त सुख है। क्योंकि वह तुम्हारी संपदा है। वह तुम्हारे पास है ही। तुम उसे लेकर ही पैदा हुए हो। तुमने उस तरफ ध्यान नहीं दिया, बस इतनी ही बात है। तुमने विस्मरण किया है, तुमने खोया नहीं है। सिर्फ आंख लौटाओ, मुड़ो पीछे की तरफ और अपने को देख लो।
तो ऐसा कुछ नहीं कि बुद्धिमान ज्यादा समाधि सुख पा लेंगे, बुद्धू वंचित रह जाएंगे। ऐसा कुछ भी नहीं है। बेपढ़े-लिखे भी वहां पहुंच जाते हैं। कबीर भी वहां पहुंच जाता है--निपट गंवार। बुद्ध भी वहां पहुंचते हैं। और जब दोनों पहुंच जाते हैं, तो जरा भी फर्क नहीं है।
समाधि सुख जीवन का स्वरूप है। तुम्हारी बाहरी परिधि काली है या गोरी; स्वस्थ या सुंदर; रुग्ण, गैर-रुग्ण; तुम्हारी बुद्धि में बहुत से शब्द भरे हैं कि थोड़े; शास्त्र तुमने ज्यादा जाने कि कम--इस सबसे कोई भी संबंध नहीं। तुम्हारा होना पर्याप्त है। तुम हो, इतना काफी है।
इसलिए समस्त ध्यान, शुद्ध होने की खोज है। जहां तुम शरीर को भी भूल जाओगे, मन को भी भूल जाओगे, वहीं तुम्हें आत्मा का समाधि सुख, अस्तित्व का आनंद उपलब्ध होना शुरू हो जाएगा। किसी भांति बस इतना ही करो कि थोड़ी देर को शरीर तुम्हें स्मरण न रहे, मन स्मरण न रहे। जैसे ही शरीर और मन का विस्मरण होगा, आत्मा का स्मरण होगा। जब तक तुम्हें शरीर और मन का स्मरण रहेगा, आत्मा का स्मरण न रहेगा। क्योंकि शरीर और मन बाहर, आत्मा भीतर। तुम दोनों की तरफ एक साथ न देख सकोगे; एक की तरफ ही देख सकोगे।
इस समाधि शिविर में तुमने अगर इतना ही किया कि थोड़ी देर को, एक क्षण को भी, शरीर और मन भूल जाए, तो तुम्हें समाधि सुख का स्वाद मिल जाएगा। और एक बार स्वाद मिल जाए, बस काफी है। फिर तुम्हारी जिंदगी दूसरी हो गई। पहला स्वाद ही कठिन है। एक दफा गर्दन मुड़ जाए, फिर तो तुम जान लिए तरकीब, फिर तुम्हारे हाथ में है। फिर तुम जहां भी गर्दन मोड़ लोगे, वहीं तुम देख लोगे। पहली गर्दन का मोड़ना ही सारा श्रम लेता है। एक बार कुंजी हाथ में आ गई, फिर तुम मालिक हो। फिर जब चाहा तब। तब तुम मजे से संसार में घूमो, तुम्हारे समाधि सुख को कोई छीन न सकेगा। तुम दुकान पर बैठो, तुम समाधि सुख में रहोगे। तुम बाजार में रहो, तुम समाधि सुख में रहोगे।
एक बात घटना शुरू होगी कि जो तुम्हारी बाहर सुखों की बड़ी दौड़ है, वह अपने आप क्षीण होती जाएगी। क्योंकि जब महान सुख हाथ में आ जाए तो क्षुद्र सुखों की चिंता कौन करता है! जब हीरे-जवाहरात हाथ में आ जाएं, तो कंकड़-पत्थर आदमी अपने आप फेंक देता है, उन्हें फिर त्यागना नहीं पड़ता।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, ज्ञानी कभी कुछ त्यागता नहीं; जो व्यर्थ है, वह छूट जाता है। अज्ञानी त्यागते हैं, क्योंकि त्याग उन्हें कष्टपूर्ण है। उन्हें सार्थक का तो कोई पता नहीं है और व्यर्थ को छोड़ने की कोशिश करते हैं। मन पकड़ता है। क्योंकि मन कहता है, अभी इसको छोड़े दे रहे हो जो हाथ में है! और जो हाथ में नहीं है उसका क्या भरोसा! वह है भी या नहीं, यह भी संदिग्ध है।
तो मैं तुमसे कुछ भी त्यागने को नहीं कहता; मैं तुमसे सिर्फ उसका स्वाद लेने को कहता हूं। वह स्वाद तुम्हारे जीवन में महात्याग हो जाएगा। उस स्वाद के बाद तुम्हें दिखाई खुद ही पड़ जाएगा कि क्या व्यर्थ है। और जो व्यर्थ है, उसे कोई भी नहीं पकड़ता। उसे तो लोग अपने आप ही छोड़ने लगते हैं। सुना है मैंने, बंगाल में एक संत हुए--युक्तेश्वर गिरि। एक धनी समृद्ध व्यक्ति उनके पास आया और कहने लगा, आप महात्यागी हैं! गिरि खिलखिला कर हंसने लगे और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि देखो, यह खुद आदमी महात्यागी है और मुझको महात्यागी कहता है। तू मुझको मत फंसा!
वह आदमी चौंका। उसने तो प्रशंसा में कहा था। शिष्य भी चौंके; क्योंकि गिरि त्यागी थे, इसमें कोई संदेह ही न था। शिष्यों ने कहा, हम समझे नहीं। वह आदमी ठीक ही कहता है।
गिरि ने कहा, ऐसे समझो कि हीरा पड़ा है और पत्थर पड़ा है; यह आदमी पत्थर पकड़े है और मैं हीरा पकड़े हूं। और यह मुझको त्यागी कहता है!
कौन त्यागी है? महावीर त्यागी हैं कि तुम? बुद्ध त्यागी हैं कि तुम?

तुम ही त्यागी हो, क्योंकि कचरे को पकड़े हो। समाधि सुख को छोड़ रहे हो
और व्यर्थ, क्षुद्र, परिधि पर घटने वाली दुख-मिश्रित घटनाएं--जहां कुछ भी शुद्ध नहीं है, जहां सभी अशुद्ध है, जहां सभी बासा है, उच्छिष्ट है--उसे तुम पकड़े बैठे हो।
संसारी महात्यागी हैं; लेकिन संसारी संन्यासियों को त्यागी समझते हैं। उनको लगते हैं संन्यासी त्यागी। सच में तो वे दया करते हैं कि बेचारे! सब छूट गया! सब छोड़ दिया, कुछ भोगा नहीं! सम्मान भी करते हैं भीतर, गहरे मन में दया भी करते हैं कि नासमझ हैं, बिना भोगे सब छोड़ दिया। कुछ तो भोग लेते!
उन्हें पता ही नहीं कि वे किससे कह रहे हैं। संन्यासी को महाभोग उपलब्ध हुआ है। अस्तित्व ने उसे महाभोग में आमंत्रित कर लिया है।
तुमसे मैं छोड़ने को नहीं कहता; तुमसे मैं जानने को कहता हूं, स्वाद लेने को कहता हूं। वही स्वाद तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे, जो व्यर्थ है, उसका कटना हो जाएगा। व्यर्थ छूट ही जाता है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
चौथा प्रवचन

चित्त के अतिक्रमण के उपाय

चित्तं मंत्रः।
प्रयत्नः साधकः।
गुरुः उपायः।
शरीरं हविः।
ज्ञानमन्नम्।
विद्यासंहारे तदुत्थस्वप्नदर्शनम्।

चित्त ही मंत्र है।
प्रयत्न ही साधक है।
गुरु उपाय है।
शरीर हवि है।
ज्ञान ही अन्न है।
विद्या के संहार से स्वप्न पैदा होते हैं।

चित्त ही मंत्र है।
मंत्र का अर्थ हैः जो बार-बार पुनरुक्त करने से शक्ति को अर्जित करे; जिसकी पुनरुक्ति शक्ति बन जाए। जिस विचार को भी बार-बार पुनरुक्त करेंगे, वह धीरे-धीरे आचरण बन जाएगा। जिस विचार को बार-बार दोहराएंगे, जीवन में वह प्रकट होना शुरू हो जाएगा। जो भी आप हैं, वह अनंत बार कुछ विचारों के दोहराए जाने का परिणाम है।
सम्मोहन पर बड़ी खोजें हुई हैं। आधुनिक मनोविज्ञान ने सम्मोहन के बड़े गहरे तलों को खोजा है। सम्मोहन की प्रक्रिया का गहरा सूत्र एक ही है कि जिस विचार को भी वस्तु में रूपांतरित करना हो, उसे जितनी बार हो सके, दोहराओ। दोहराने से उसकी लीक बन जाती है; लीक बनने से मन का वही मार्ग हो जाता है। जैसे नदी बह जाती है, अगर एक गड्ढा खोद कर राह बना दी जाए, नहर बन जाती है; वैसे ही अगर मन में एक लीक बन जाए, किसी भी विचार की, तो वह विचार परिणाम में आना शुरू हो जाता है।
फ्रांस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ--इमायल कुए। उसने लाखों लोगों को केवल मंत्र के द्वारा ठीक किया। लाखों मरीज सारी दुनिया से कुए के पास पहुंचते थे। और उसका इलाज बड़ा छोटा था। वह सिर्फ मरीज को कहता था, तुम यही दोहराए चले जाओ कि तुम बीमार नहीं हो, स्वस्थ हो, स्वस्थ हो रहे हो। रात सोते समय दोहराओ, सुबह उठते समय दोहराओ, दिन में जब स्मृति आ जाए तब दोहराओ। बस एक विचार को दोहराते रहो कि मैं स्वस्थ हूं, मैं स्वस्थ हूं, मैं निरंतर स्वस्थ हो रहा हूं।
चमत्कार मालूम होता है कि कठिन से कठिन रोग के मरीज सिर्फ इस पुनरुक्ति से ठीक हुए। कुए के पास सारी दुनिया से लोग पहुंचने लगे। लेकिन बात तो बहुत छोटी है। साधारणतः भी जब आप ठीक होते हैं बीमारी से, तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उसमें दवा का काम तो दस प्रतिशत होता है, नब्बे प्रतिशत तो पुनरुक्ति का काम होता है। दवा को दिन में चार बार लेते हैं, आठ बार लेते हैं। जब भी दवा को लेते हैं, तभी मन में यह भाव आता है--अब मैं ठीक हो जाऊंगा; ठीक दवा मिल गई है।
होमियोपैथी की गोलियों में कुछ भी नहीं है; लेकिन उससे उतने ही लोग ठीक होते हैं जितने एलोपैथी से। अच्छा डाक्टर अगर पानी भी दे दे तो आप ठीक हो जाएंगे; क्योंकि सवाल दवा का नहीं है, अच्छे डाक्टर पर भरोसा होता है। भरोसा पुनरुक्ति बन जाता है। आप जानते हैं कि अच्छे डाक्टर ने इलाज किया है। इसलिए जो डाक्टर आपसे कम फीस लेता है, शायद वह आपको ठीक न कर पाए। जो डाक्टर आपसे ज्यादा फीस लेता है, वही आपको ठीक कर पाएगा। क्योंकि जब ज्यादा जेब आपकी खाली होती है, तो भरोसा बढ़ता है; लगता है कि बड़ा डाक्टर है। और आप जैसे बड़े मरीज को बड़ा डाक्टर चाहिए। पुनरुक्ति।

मनोवैज्ञानिक एक प्रयोग किए हैं, जिसे वे प्लेसबो कहते हैं--झूठी दवा। और बड़ी हैरानी मालूम हुई। एक ही बीमारी के मरीज हैं पचास; पच्चीस को वास्तविक दवा दी गई और पच्चीस को सिर्फ पानी दिया गया। लेकिन पता किसी को भी नहीं है कि किसको पानी दिया गया, किसको दवा दी गई। मरीजों को पता नहीं है; वे सभी दवा मान कर चल रहे हैं। हैरानी हुई कि जितने दवा से ठीक हुए, उतने ही पानी से भी ठीक हुए। प्रतिशत बराबर वही रहा।
इसलिए जब कभी कोई पहली बार दवा खोजी जाती है तो उससे बहुत मरीज ठीक होते हैं। फिर धीरे-धीरे संख्या कम हो जाती है। इसलिए हर दवा दो-तीन साल से ज्यादा नहीं चलती। क्योंकि जब पहली दफा दवा खोजी जाती है तो बड़ा भरोसा पैदा होता है कि अब खोज ली गई असली दवा। सारी दुनिया में मरीज उससे प्रभावित होते हैं। फिर धीरे-धीरे भरोसा कम होने लगता है; क्योंकि कभी कोई मरीज उससे ठीक भी नहीं होता। कभी कोई जिद्दी मरीज मिल जाता है, जो सुनता ही नहीं दवा की, न डाक्टर की। उसके कारण दूसरे मरीजों का भरोसा भी क्षीण होने लगता है। धीरे-धीरे दवा का प्रभाव खो जाता है। इसलिए हर दो साल में नयी दवाएं खोजनी पड़ती हैं।
दवाओं का भी प्रभाव, विज्ञापन ठीक से किया जाए, तो ही होता है। तो हर अखबार, पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, सब तरफ से प्रचार होना चाहिए। प्रचार ज्यादा कारगर है, जितनी दवा के तत्व, उससे ज्यादा। क्योंकि वही प्रचार आपको सम्मोहित करेगा। वह प्रचार मंत्र बन जाता है। अखबार खोला और "एस्प्रो", रेडियो खोला और "एस्प्रो", टेलीविजन पर गए और "एस्प्रो", बाजार में निकले और बोर्ड, "एस्प्रो"--जो कुछ भी करें, एस्प्रो पीछा करती है। वह सिरदर्द से भी बड़ा सिरदर्द बन जाती है; फिर वह सिरदर्द को हरा देती है। पुनरुक्ति शक्ति पैदा करती है। मंत्र का अर्थ हैः किसी चीज को बार-बार दोहराना।
यह सूत्र कह रहा हैः "चित्त ही मंत्र है। चित्तं मंत्रः।"
यह कहता है, और किसी मंत्र की जरूरत नहीं; अगर तुम चित्त को समझ लो तो चित्त की प्रक्रिया ही पुनरुक्ति है। तुम्हारा मन कर क्या रहा है जन्मों- जन्मों से? सिर्फ दोहरा रहा है। सुबह से सांझ तक तुम करते क्या हो? रोज वही दोहराते हो। जो तुमने कल किया था, जो परसों किया था, वही तुम आज कर रहे हो; वही तुम कल भी करोगे, अगर न बदले। और तुम जितना वही करते जाओगे उतनी ही पुनरुक्ति प्रगाढ़ होती जाएगी और तुम झंझट में इस तरह फंस जाओगे कि बाहर आना मुश्किल हो जाएगा।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, सिगरेट नहीं छूटती।
सिगरेट मंत्र बन गई है। उन्होंने इतनी बार दोहराया है! दिन में दो पैकेट पी रहे हैं, उसका मतलब हुआ कि चौबीस बार दोहरा रहे हैं कि बीस बार दोहरा रहे हैं। बार-बार दोहराया है, और सालों से दोहरा रहे हैं; आज अचानक छोड़ देना चाहते हैं। लेकिन जो चीज मंत्र बन गई, उसको अचानक नहीं छोड़ा जा सकता। तुम छोड़ दोगे, इससे क्या फर्क पड़ता है! पूरा मन मांग करेगा। पूरा शरीर उसको दोहराएगा। वह कहेगा--चाहिए! उसी को तुम तलफ कहते हो। तलफ का मतलब हुआ कि जिस चीज को तुमने मंत्र बना लिया, उसे अचानक छोड़ना चाहते हो--यह नहीं हो सकता। तलफ का मतलब है कि जो चीज मंत्र बन गई है, उसको विपरीत मंत्र से तोड़ना होगा।
रूस में पावलफ ने इस पर बहुत काम किया। और पावलफ अकेला आदमी है, जिसने तलफ वाले मरीजों को ठीक करने में सफलता पाई। अगर आप सिगरेट पीने के रोगी हो गए हैं, छोड़ना चाहते हैं और नहीं छूटती, तो पावलफ मंत्र का प्रयोग करता था। उसके मंत्र जरा तेज थे। आपको सिगरेट देगा और जैसे ही आप सिगरेट हाथ में लेंगे, आपको बिजली का शॉक लगेगा; झनझना जाएगी पूरी तबीयत, सिगरेट हाथ से छूट जाएगी। ऐसा सात दिन आपको पावलफ भरती रखेगा अपने अस्पताल में, और जब भी आप सिगरेट पीएंगे, तभी बिजली का शॉक लगेगा। सात दिन में मंत्र सिगरेट से ज्यादा गहरा हो जाएगा। सिगरेट का नाम ही सुन कर आपको कंपकंपी आने लगेगी। पीने का रस तो दूर, एक वैराग्य का उदय हो जाएगा। पावलफ ने हजारों मरीज विपरीत मंत्र से ठीक किए। और पावलफ कहता है कि जो लोग भी आदतों से ग्रस्त हो गए हैं, जब तक उनको विपरीत आदतें न दी जाएं, जो पहली आदत से ज्यादा मजबूत हों, तब तक कोई छुटकारा नहीं है।

तुम्हारा जीवन जैसा भी है, तुम्हारे मन का ही परिणाम है। और तुम दोहराए चले जाते हो। तुम क्रोध से बाहर भी होना चाहते हो, लेकिन तुम रोज क्रोध को दोहराए चले जाते हो। जितना दोहराते हो उतना मजबूत हो रहा है। कितनी बार तुम कसमें खाते हो कि अब नहीं करूंगा! और कसमें टूट जाती हैं और क्रोध फिर करते हो। उपद्रव और भी बढ़ गया। इससे तो बेहतर था कसम तुमने न खाई होती; क्योंकि अब यह दोहरा मंत्र हो गया। अब तुम जानते हो कि क्रोध कसम से ज्यादा बड़ा है और ज्यादा ताकतवर है। कसमों का कोई मूल्य नहीं है। तुम कितना ही व्रत लो, तुम्हारे व्रत दो कौड़ी के हैं, क्रोध ज्यादा सबल है। यह भी सम्मोहन बैठ गया। अब तुम जब कसम भी लोगे, व्रत भी लोगे, तब भी तुम जानते हो भीतर कि यह सधने वाली नहीं है। तुम भीतर दोहरा रहे हो उस समय भी कि यह होगा नहीं; मैं ले तो रहा हूं, लेकिन यह होगा नहीं।
भूल कर भी व्रत मत लेना, अगर उसे पूरा न कर सको। उससे तो बेहतर है कि तुम अपनी एक ही आदत से भरे रहना। व्रत लेकर और तोड़ना, बहुत महंगा धंधा है; क्योंकि तोड़ने की भी आदत बन रही है। फिर तुम जीवन में कभी भी व्रत न ले पाओगे। तथाकथित धार्मिक गुरुओं ने तुम्हें बहुत अधार्मिक बनाया है; क्योंकि वे सस्ते में व्रत दे देते हैं। तुम मंदिर गए, तुम साधु के पास गए, मुनि के पास गए, और वह कहता है--कोई व्रत लो! उसके प्रभाव में, मंदिर की शांति में; और फिर अहंकार में कि जब साधु कह रहा है तो यह कहना कि मैं कोई भी व्रत न ले सकूंगा, बड़ी दीनता मालूम पड़ती है; तो तुम कहते हो, आज से सिगरेट छोड़ देंगे।
मेरे एक मित्र हैं। उनका दिमाग जरा खराब है; लेकिन आपसे बेहतर है। वे
एक मुनि के पास गए--जैन हैं--और मुनि ने कहा कि कोई व्रत लो! उन्होंने कहा, अच्छी बात है, ले लिया। मुनि ने कहा, क्या लिया? उन्होंने कहा, आज से बीड़ी पीया करेंगे।
दिमाग उनका खराब है; लेकिन व्रत का उन्होंने पालन किया है। वे तब तक बीड़ी पीते नहीं थे। और मैं आपको कहता हूं कि वे ज्यादा फायदे में रहे बजाय उस आदमी के जिसने नियम लिया कि मैं बीड़ी नहीं पीऊंगा और फिर बीड़ी पीनी शुरू कर दी। उसका व्रत भी टूट गया। उसकी आत्मग्लानि बढ़ गई। कम से कम वे सफल तो हुए। दिमाग उनका खराब हो; आपसे बेहतर है। कम से कम इतना तो है कि व्रत पूरा किया है।
इससे जब भी व्रत टूटता है तो आत्मग्लानि पैदा होती है, अपराध पैदा होता है। और जितनी आत्मग्लानि पैदा होती है, अपराध पैदा होता है, उतना तुम दीन होते जाते हो। और आत्मा तो उसको मिलेगी जो सम्राट है, जो दीन नहीं है। तुम आत्मा से दूर हटते जाते हो।
मन का स्वरूप समझो, तो यह सूत्र समझ में आ जाएगा। मन की सारी कला पुनरुक्ति है। मन मंत्र है। जो-जो तुमने दोहराया है, वही तुम्हारी आदत बन गई है। जो-जो तुम दोहराते रहोगे, वही तुम्हारे जीवन में आता रहेगा। जन्मों-जन्मों से तुमने एक ही बात दोहराई है, तो वही बात तुम्हें बार-बार उपलब्ध हो जाती है। और तुम गलत को दोहराने से बंधे हो।
क्या करना? पहली बात--गलत को तोड़ने की जल्दी मत करना। बेहतर यह होगा
कि गलत को तोड़ने की कोशिश करने के बजाय तुम सही को करने का नया मंत्र सीखना। तुम सिगरेट पीते हो, कोई हर्जा नहीं; तुम ध्यान सीखना। सिगरेट ध्यान में जरा भी बाधा नहीं है। तुम ध्यान सीखना। तुम ध्यान के मंत्र को सघन करना। जिस दिन ध्यान के मंत्र में तुम सफल हो जाओगे, उस दिन तुम्हें आत्म-गौरव उपलब्ध होगा। उस आत्म-गौरव और ध्यान की सफलता में सिगरेट को छोड़ना आसान हो जाएगा; क्योंकि तुमने एक विधायक मंत्र पूरा कर लिया। नकारात्मक मत बनना, अन्यथा तुम मुश्किल में पड़ोगे। पश्चात्ताप, पाप, पीड़ा और उदासी पकड़ लेगी। तुम्हारे साधु मंदिरों में बैठे हैं, सब उदास हैं। उनके जीवन में कोई हंसी नहीं है, कोई खुशी नहीं है, कोई प्रसन्नता, उत्फुल्लता नहीं है; क्योंकि उन्होंने नकारात्मक मंत्रों का उपयोग किया है। निगेटिव उनकी खोज है। क्या-क्या गलत है, वह उन्होंने छोड़ा। मैं तुमसे कहता हूं, गलत को छोड़ने की जल्दी मत करना; तुम ठीक को पकड़ने की जल्दी करना। जिस दिन ठीक तुम्हें पकड़ जाएगा, गलत को छोड़ना बहुत आसान हो जाएगा। तुम बीमारी से मत लड़ना; तुम स्वास्थ्य को पाने की कोशिश करना। वही कुए अपने

मरीजों को कह रहा है। वह कह रहा है कि मैं स्वस्थ हो रहा हूं--तुम यही भाव दोहराओ।
उलटा, विपरीत भी तुम कर सकते हो। तुम्हारे सिर में दर्द है, तुम यह भी
कह सकते हो कि नहीं, मुझे सिरदर्द नहीं है। लेकिन जितनी बार तुम यह कहोगे, उतनी बार ही "सिरदर्द" शब्द को भी तुम दोहरा रहे हो। और जितनी बार तुम कहोगे कि "सिरदर्द नहीं है", अगर सिरदर्द है तो तुम्हारे कहने से क्या होगा! भीतर तो तुम जानते हो कि तुम्हारा कहना झूठ है। ऊपर तुम कितना ही कहो कि सिरदर्द नहीं है; लेकिन सिरदर्द हो रहा है। भीतर तो तुम यही कहोगे कि हो रहा है। यह कुए कहता है तो दोहरा रहे हैं; लेकिन सिरदर्द हो रहा है। कुए के कहने से तुम्हारा सिरदर्द नहीं मिटेगा; तुम्हारा सिरदर्द तो तुम्हारी भीतरी प्रक्रिया से ही मिटेगा। न, नकारात्मक शब्द पकड़ना ही मत।
इसलिए मैं कहता हूं, संसार को छोड़ने की कोशिश मत करना; परमात्मा को पाने की कोशिश करना। इसलिए मैं कहता हूं, त्याग की दिशा में मत जाना; परम भोग की खोज करना। क्या गलत है, उस पर आंख मत गड़ाना; क्योंकि गलत को छोड़ने के लिए भी तो गलत को देखना पड़ता है बार-बार। और जितना तुम देखते हो, उतना ही मंत्र दोहराया जा रहा है। और जिस चीज को भी तुम देखते रहते हो, उससे तुम सम्मोहित हो जाते हो।
दुनिया भर में बहुत खोजबीन चली है कार के एक्सीडेंटों के बाबत; क्योंकि अब कार के एक्सीडेंट से उतने आदमी मर रहे हैं, जितने युद्धों में भी नहीं मर रहे हैं। दूसरे महायुद्ध में एक साल में जितने आदमी मरे, उससे दोगुने आदमी सिर्फ कार के एक्सीडेंट से मर रहे हैं सारी दुनिया में। बहुत बड़ी संख्या है। कुछ करना जरूरी है। और बहुत सी बातें प्रकाश में आई हैं। उसमें एक बात तो यह प्रकाश में आई है कि कार के एक्सीडेंट अक्सर रात बारह बजे और तीन बजे के बीच में होते हैं। पचास प्रतिशत एक्सीडेंट, दुर्घटनाएं, रात बारह बजे और तीन बजे के बीच में होती हैं। क्योंकि वह समय निद्रा का समय है, और मन तंद्रा में हो जाता है, होश खो जाता है। उस होश के खोए क्षण में सम्मोहन बिल्कुल आसान है। और ड्राइवर सम्मोहित हो जाता है; क्योंकि कार की पुनरुक्त होती आवाज, वही आवाज बार-बार दोहर रही है। रास्ते पर आंख गड़ी है, वही रास्ता सैकड़ों मील तक दिखाई पड़ रहा है। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि रास्तों पर बीच में जो सफेद लकीर डाली जाती है, उसके कारण हजारों लोग मर रहे हैं। क्योंकि उस लकीर को देखते, देखते, देखते, देखते, ड्राइवर उसको देखता रहता है, सम्मोहित हो जाता है। फिर वह होश में नहीं है; वह नशे में है। बारह और तीन के बीच वैसे ही नींद का वक्त, कार की एक ही सी गूंजती आवाज ऊब पैदा करती है, निद्रा लाती है, मंत्र बन जाती है। फिर एक ही रास्ता, और रात में बेरौनक; क्योंकि न आस-पास के वृक्ष दिखाई पड़ते हैं, न पहाड़ दिखाई पड़ते हैं, सिर्फ रास्ता दिखाई पड़ता है। और फिर बीच में पड़ी सीधी लकीर।
एक छोटा सा प्रयोग करके देखना। एक मुर्गी को टेबल पर रखना। एक सीधी लकीर खींच देना। मुर्गी की गर्दन झुका कर लकीर पर लगा देना, ताकि लकीर उसको दिखाई पड़ने लगे। फिर तुम छोड़ देना। मुर्गी वहीं रुकी रहेगी। फिर वह हटेगी नहीं; वह सम्मोहित हो गई। वह घंटों वैसी ही बैठी रहेगी। वह लकीर से पकड़ गई; लकीर ने उसे पकड़ लिया।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ड्राइवर को लकीर पकड़ लेती है बीच में। इसलिए वे कहते हैं कि रास्ते सीधे मत बनाओ; रास्ते में भेद होना चाहिए, ताकि तंद्रा टूटे। और एक सी पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए। वे यह भी सुझाव देते हैं कि कार की आवाज भी बीच-बीच में थोड़ी बदले तो ठीक होगा। बदलाहट से तंद्रा टूटेगी और सैकड़ों दुर्घटनाएं कम हो जाएंगी।
तुम्हारी जिंदगी की भी दुर्घटनाएं सैकड़ों कम हो सकती हैं। एक तो गलत
पर तुम नजर मत बांधो; क्योंकि जिसको तुम देखोगे, वह तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होता जाता है। और तुम गलत पर नजर बांधने के आदी हो। तुम्हारे भीतर जो-जो बुरा है, उसी पर तुम ध्यान देते हो। क्रोधी अक्सर क्रोध पर ध्यान देता है--कैसे छुटकारा पाऊं? हालांकि वह सोचता है कि मैं छुटकारा पाने के लिए ध्यान दे रहा हूं। लेकिन उसे पता नहीं कि जितना तुम क्रोध पर

ध्यान दे रहे हो, उतना ही क्रोध की लकीर से तुम सम्मोहित हो जाओगे। कामी कामवासना पर ध्यान लगाए रखता है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया, सौ साल की उम्र का हो गया। पत्रकार उसके घर आए उसकी भेंट लेने; क्योंकि वह अकेला आदमी था, जो उस इलाके में सौ साल का हो गया था। उन्होंने कई प्रश्न पूछे। उनमें एक प्रश्न यह भी था कि तुम्हारा स्त्रियों के संबंध में क्या ख्याल है? नसरुद्दीन ने कहा, यह बात ही मत पूछो मुझसे। तीन दिन पहले ही मैंने उनके संबंध में सोचना बंद कर दिया।
सौ साल का आदमी, वह भी अभी तीन दिन पहले तक उनके ही संबंध में सोच रहा था। स्त्री पकड़े रहेगी; क्योंकि तुम उससे छूटना चाहते हो। वह तुम्हारा नकारात्मक मंत्र बन गया। तुम जिससे छूटना चाहते हो, उससे तुम छूट न पाओगे। गलत को देखने अगर तुम लग गए तो तुम गलत पर ध्यान कर रहे हो।
महावीर ने ध्यान के चार रूप कहे हैं--दो गलत, दो सही। दुनिया में किसी
भी आदमी ने गलत को ध्यान नहीं कहा है; महावीर ने कहा है। मनोवैज्ञानिक उनसे राजी होंगे। उन्होंने कहा, गलत ध्यान भी ध्यान तो है ही। जैसे क्रोधी ध्यानमग्न हो जाता है, क्योंकि क्रोध में सारी दुनिया मिट जाती है। क्रोध में चित्त एकाग्र हो जाता है। इसलिए क्रोध में बड़ी शक्ति आ जाती है। तुमने कभी ख्याल किया? क्रोधी आदमी अपने से दुगने ताकतवर आदमी को उठा
कर फेंक देगा क्रोध में। होश में होता, क्रोध न होता, तो पच्चीस दफा सोचता कि इस आदमी से झंझट लेनी कि नहीं, दुगना ताकतवर है। क्रोध में आदमी बड़ी से बड़ी चट्टान सरका देता है; होश में सोच भी नहीं सकता। क्रोध में आदमी कुछ भी कर लेता है; क्रोध में सारी शक्ति जग जाती है। क्या होता है? बंटती हुई शक्ति जो सब तरफ जा रही थी, एकाग्र हो जाती है। जैसे किरणें सूरज की इकट्ठी हो जाएं तो आग पैदा हो जाती है, ऐसा क्रोध में चित्त इकट्ठा हो जाता है, आग पैदा हो जाती है। महावीर ने उसको भी ध्यान कहा है।
महावीर ने कहा, आर्त और रौद्र, दो गलत ध्यान हैं। दुख में भी आदमी ध्यानमग्न हो जाता है। कोई मर गया। तब तुम रोते हो, चीखते हो, चिल्लाते हो, बस एक पर ही ध्यान अटक जाता है।
गलत ध्यान से बचना। और तुम सभी गलत ध्यान में लगे हो। तुम्हारे जीवन
की तकलीफ ही यही है, मूल पीड़ा और बीमारी यही है कि तुमने अपनी आंखें गलत पर जमा ली हैं--क्या-क्या गलत है, उसे छोड़ना है। और तुम सोच रहे हो कि छोड़ने के लिए ही तुम यह कर रहे हो। इस ध्यान के कारण ही तुम नहीं छोड़ पा रहे हो।
मैं तुमसे कहता हूं, संसार की फिक्र ही छोड़ दो; तुम परमात्मा पर ध्यान लगाओ। तुम क्रोधी हो--सारी दुनिया क्रोधी है--क्रोध पर आंखें मत गड़ाओ; करुणा पर आंखें गड़ाओ। तुम, जो सही है, उसको ध्यान में लाओ। और जैसे-जैसे सही में शक्ति बढ़ेगी, गलत से शक्ति विसर्जित हो जाएगी। क्योंकि शक्ति तो एक ही है, तुम सब तरफ नहीं लगा सकते। अगर तुमने शांत होने की चेष्टा पर ध्यान लगा दिया, तो जब तुम अशांत होना चाहोगे तब तुम पाओगे कि शक्ति तुम्हारे पास है नहीं, वह शांति की तरफ बह गई है। और जिसने शांति का स्वाद ले लिया, वह अशांत होना क्यों चाहेगा! अशांत तो वही होता है, जिसने शांति का स्वाद नहीं लिया। जिसने परमात्मा का रस नहीं लिया, वही संसार में डूबता है, लिप्त होता है।
इसे बहुत ठीक से ख्याल में ले लो। नकार से बचना। नहीं से बचना। बुरे
को छोड़ने की फिक्र ही मत करना; क्योंकि छोड़ने में ही तुम सम्मोहित हो जाओगे और बुरे को तुम कभी भी न छोड़ पाओगे। जिसको भी हम छोड़ना चाहते हैं, उसमें एक पकड़ आ जाती है।
मैंने सुना है, एक आदमी एक होटल में मेहमान हुआ। मैनेजर ने कहा, हम दे
न सकेंगे कमरा। कमरा तो खाली है; लेकिन उसके नीचे एक आदमी ठहरे हुए हैं, वे बहुत उपद्रवी हैं। जरा सी भी आवाज ऊपर हो गई, तो वे बखेड़ा खड़ा कर देंगे। उनकी वजह से उनके ऊपर का कमरा हमने खाली ही छोड़ दिया है। उस आदमी ने कहा कि चिंता आप न करें, मैं तो बाजार में दिन भर उलझा रहूंगा। रात कोई ग्यारह-बारह बजे लौट कर सो जाऊंगा। और तीन बजे की मुझे गाड़ी पकड़ लेनी है। तीन घंटे मुश्किल से मैं इस कमरे में रहूंगा। कोई कारण नहीं है मेरे द्वारा उपद्रव होने का। फिर मैं ध्यान भी रखूंगा। आपने बता दिया तो ठीक किया।

वह आदमी बारह बजे थका-मांदा बाजार से काम करके लौटा। बिस्तर पर बैठा।
एक जूता छोड़ कर उसने पटका, फर्श पर गिरा तो उसे ख्याल आया कि कहीं उस आदमी की नींद न टूट जाए। उसने दूसरा चुपचाप रख कर वह सो गया। कोई पंद्रह मिनट बाद नीचे के आदमी ने आकर दस्तक दी। दरवाजा खोला तो वह आदमी क्रोध से कंप रहा था। यह घबड़ा गया कि रात, अंधेरा, अब क्या! उसने कहा, क्या भूल हो गई? मैं तो सो चुका था। उस आदमी ने कहा, भूल! दूसरे जूते का क्या हुआ? पहला गिरा, मैंने कहा आ गए। फिर दूसरे का क्या हुआ? मैं सो ही नहीं पा रहा हूं। वह दूसरा जूता सिर पर लटका हुआ है। तो पूछ लूं, पता चल जाए, निश्चिंतता हो। सबने दूसरा जूता लटका लिया है--वह नकार का है। वह तुम यह छोड़ना है, यह छोड़ना है, यह बुरा है--और इतनी बुराइयां हैं कि जीवन छोटा मालूम पड़ता है, तुम छोड़ न पाओगे। जगह-जगह बुराई है, कोने-कोने में बुराई है, सारा जीवन बुराई से भरा है। और तुम्हारे साधु-संत तुम्हें सिर्फ अपराध से भरते हैं; क्योंकि वे तुमसे कहते हैं--यह गलत, यह गलत, यह गलत। उनसे सही की तो तुम खबर ही न पाओगे। क्योंकि वे कहते हैं, जब तक गलत न छूटेगा, तब तक सही तुम्हें मिलेगा भी कैसे? और उनकी बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। वे यह कह रहे हैं कि जब तक अंधेरा न जाएगा, तब तक प्रकाश जलेगा कैसे!
और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुमने उनकी बात सुन ली, तो कितनी ही तर्कयुक्त मालूम होती हो, तुम भटक जाओगे जन्मों-जन्मों तक। उन्हीं की बात से तुम भटके हुए हो। तुम्हें शैतानों ने नहीं भटकाया है; तुम्हारे तथाकथित संतों ने भटकाया है। क्योंकि बात तर्कयुक्त लगती है कि जब तक गलत न छूटेगा, ठीक कैसे मिलेगा! लेकिन कभी तुमने कोशिश की है अंधेरे को हटाने की? पहले अंधेरा हट जाए, फिर दीया जलाओगे? तो फिर तुम कभी न जला पाओगे। मैं तुमसे कहता हूं, तुम दीया जलाना। अंधेरे की तुम बात ही मत करो; क्योंकि दीया जलते ही अंधेरा हट जाता है। तुम प्रकाश लाओ; अंधेरे पर ध्यान मत करो। दुनिया में कोई अंधेरे को कभी नहीं हटा पाया। बुराई कभी नहीं हटाई जा सकती; भलाई लाई जा सकती है। संसार कभी नहीं छोड़ा जा सकता; आत्मा पाई जा सकती है। और आत्मा के पाते ही संसार छूट जाता है। हम उसे पकड़े ही इसलिए हैं कि उससे बेहतर हमें दिखाई नहीं पड़ता। और जब तक बेहतर न दिखाई पड़ जाए, तुम उसे छोड़ोगे भी कैसे? तुम छोड़ना भी चाहोगे, तो भी तुम छोड़ न पाओगे। तुम लड़ोगे, परेशान होओगे; तुम अपने को थका लोगे, मिटा लोगे; लेकिन कहीं पहुंचोगे नहीं। तुम्हारी जिंदगी एक व्यर्थ की दौड़-धूप हो जाएगी। फिर तुम उतर आओगे शरीर में, फिर वही चक्र शुरू हो जाएगा। इससे जो बच गया--बुराई पर ध्यान देने से--वह भलाई को उपलब्ध हो जाता है।
चित्त मंत्र है--चाहे बुराई के लिए उपयोग कर लो, चाहे भलाई के लिए। पुनरुक्ति शक्ति बन जाती है। तुमसे क्रोध होता है, स्वीकार कर लो। कितनी बार क्रोध होता है? तुम क्रोध का पश्चात्ताप भी मत करो। तुम क्रोध से लड़ो भी मत। जितनी बार क्रोध हो, उतनी बार करुणा के कृत्य भी करो। जितनी बार लोगों को तुमसे हानि पहुंचती हो, उतनी बार लोगों को तुम लाभ भी पहुंचाओ। तुम जरा लोगों को लाभ पहुंचाने का रस भी लो। बुराई के लिए अपने को दंड मत दो; भलाई का पुरस्कार भोगो। बुराई के लिए अपने को कष्ट मत दो; थोड़ा भला करो, उसका स्वाद लो। अगर तुमसे किसी के प्रति गाली निकल गई है, तो जाकर किसी की प्रशंसा करो, किसी के गुण भी गाओ। गाली का रस तुमने काफी लिया है, अब किसी के गुण ग्राहकता का रस भी लो।
कांटों से मत उलझो, वे हैं; ध्यान फूलों पर दो। एक दफा कांटों से तुम उलझ गए, तो फूलों तक तुम पहुंच ही न पाओगे। कांटे बहुत हैं। और जब तक तुम पहुंचोगे, तुम इतने लहूलुहान हो जाओगे कि फूल भी तुम्हें सुख न दे सकेंगे। और फूलों का भी जो स्पर्श है, वह तुम्हें पुलकित न करेगा। तुम घावों से भर गए होओगे। फूल भी कष्ट देंगे; क्योंकि घाव अगर पहले से ही लगा हो तो फूल भी पीड़ा देगा। कांटों पर ध्यान मत दो; ध्यान फूल पर दो। और अगर तुम फूल के रस में डूब गए तो तुम एक दिन पाओगे कि कांटे हैं ही नहीं; क्योंकि फूल के रस में जो डूब जाए, उसे कांटा भी चुभ नहीं सकता।
असली सवाल फूल के रस में डूबने का है; विस्मय विमुग्ध हो जाने का है। असली बात परमात्मा की शराब पी लेने का है, तब तुम्हें इस संसार की शराबें आकर्षित न करेंगी। अन्यथा तुम लड़ोगे उन्हीं से और उन्हीं से पराजित

होओगे। बुराई से जो लड़ता है, वह बुराई से पराजित होता है। बुराई से लड़ने वाला मन बुराई का मंत्र बना लेता है; क्योंकि चित्त मंत्र है। चित्त की इस प्रक्रिया को समझो कि चित्त दोहराता है।
तुमने कभी ख्याल किया है? एक सात दिन अपने चित्त का निरीक्षण करो, लिखो--चित्त जो-जो दोहराता है। और तुम पाओगे कि एक वर्तुलाकार चित्त का भ्रमण है। अगर तुम ठीक से निरीक्षण करोगे तो तुम पाओगे जैसे रात आती है, दिन आता है, सुबह होती है, सांझ होती है, ऐसे ही चित्त में क्रोध का बंधा हुआ समय है; प्रेम का बंधा हुआ समय है; कामवासना का बंधा हुआ समय है; लोभ का बंधा हुआ समय है; ठीक उसी समय पर लोभ तुम्हें पकड़ता है, जैसे भूख पकड़ती है। लेकिन तुमने कभी निरीक्षण नहीं किया। अन्यथा तुम अपना अट्ठाइस दिन का कैलेंडर बना सकते हो और तुम लिख सकते हो कि सोमवार की सुबह मुझसे सावधान! पत्नी-बच्चे घर में जान सकते हैं कि सोमवार की सुबह पिताजी से जरा दूर रहना। और इसका उपयोग हो सकता है; क्योंकि तुम सोमवार की सुबह... अगर ठीक से निरीक्षण तुमने किया कुछ दिनों तक, तो तुम पकड़ लोगे वे बिंदु जहां वर्तुल की तरह तुम्हारा मन घूमता है। शरीर ही वर्तुलाकार नहीं है, मन भी वर्तुलाकार है।
इस जगत में सभी गतियां वर्तुलाकार हैं, सर्कुलर हैं। चांद-तारे गोल घूमते हैं। जमीन गोल घूमती है। सब चीजें गोल घूमती हैं। मौसम गोल घूमते हैं। तुम्हारे मन की ऋतुएं भी गोल घूमती हैं। जैसे स्त्रियों को मासिक धर्म होता है, ठीक अट्ठाइस दिन में वर्तुल पूरा होता है।
अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुषों के भीतर भी वैसी ही रासायनिक प्रक्रिया होती है अट्ठाइस दिन में जैसी स्त्रियों की; क्योंकि शरीर कुछ बहुत भिन्न नहीं हैं। तुमने ख्याल किया कि स्त्रियों को जब मासिक धर्म होता है, वे ज्यादा चिड़चिड़ी, ज्यादा झगड़ैल, क्रोधी, उदास, परेशान, बेचैन हो जाती हैं। हिंदू बहुत होशियार थे। वे उनको तीन-चार दिन के लिए कमरों में अलग ही बंद कर देते थे। क्योंकि उस समय उनसे कुछ आशा करनी ठीक नहीं; उनके शरीर में इतनी रासायनिक प्रक्रिया हो रही है कि उस रासायनिक प्रक्रिया में होश रखना उन्हें मुश्किल होगा। वे बेहोश हो जाएंगी।
लेकिन ठीक अट्ठाइस दिन पर हर पुरुष को भी ऐसा ही होता है। पुरुष का भी मासिक धर्म है। बाहर रक्तस्राव नहीं होता; लेकिन भीतर रस-ग्रंथियों में रक्तस्राव होता है। इसलिए दिखाई नहीं पड़ता; लेकिन हर अट्ठाइसवें दिन पर तुम भी उदास, बेचैन, परेशान हो जाते हो।
तुम थोड़ा निरीक्षण करो। तब तुम पाओगे कि तुम्हारे मन का एक वर्तुल है,
जो अट्ठाइस दिन में पूरा होता है, चार सप्ताह में पूरा होता है। और उस वर्तुल में तुम धीरे-धीरे निरीक्षण की प्रक्रिया को प्रगाढ़ करोगे तो ठीक-ठीक बिंदु खोज लोगे कब क्या होता है। तब तुम बड़े हैरान होओगे। तब तुम पाओगे कि तुम क्रोधित किसी और के कारण नहीं होते; क्रोधित तुम्हारे भीतरी कारणों से होते हो, दूसरा तो सिर्फ बहाना है। तब तुम दूसरे पर जिम्मेवारी भी न डालोगे। तब तुम क्रोधित होओगे तो दूसरे से क्षमा मांगोगे कि मुझे माफ करना, अभी मेरी दशा, मौसम ठीक नहीं। और यह संयोग की बात है कि तुम सामने पड़ गए, कोई दूसरा पड़ता तो उस पर यह उपद्रव होता।
आत्म-निरीक्षण से तुम इस बात को सहज ही समझ लोगे कि मन एक वर्तुल में घूम रहा है। वह एक मंत्र है। और अगर तुम इसे न समझे तो तुम उस वर्तुल में भटकते ही रहोगे। इसलिए हिंदुओं ने संसार को चक्र कहा है--वह घूमता है। और तुम वही-वही कर रहे हो बार-बार। और तुम यह भी मत सोचना कि तुम कुछ नया कर रहे हो, सभी लोग वही कर रहे हैं। जब पहली दफा तुम प्रेम में पड़ते हो तो तुम सोचते हो, संसार में शायद ऐसी अनूठी घटना कभी घटी नहीं। रोज घट रही है। वही सारे लोग करते रहे हैं। वही पशु-पक्षी कर रहे हैं, पौधे कर रहे हैं, आदमी कर रहा है। कुछ प्रेम तुम्हें ही घट गया है, ऐसा नहीं है; सभी को वैसा ही घटा है। क्रोध भी सभी को वैसा ही घटा है।
इस वर्तुल के बाहर सिर्फ एक चीज है--वह ध्यान है, जो अपने आप नहीं घटती। बाकी सब अपने आप घटेगा, तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम चक्के पर बैठे भर रहो, चक्का अपने आप घूम रहा है, तुम उसमें बंधे हुए घूमते रहोगे। सिर्फ एक घटना है जो इस वर्तुल के बाहर है कि तुम छलांग लगा कर इस

चक्र के बाहर निकल जाओ, वह ध्यान है। वह अपने आप नहीं घटता है। वह कभी किसी बुद्ध को घटता है।
पश्चिम के बहुत बड़े इतिहासज्ञ अर्नाल्ड टायनबी ने हिसाब लगाया है कि
अब तक केवल छह आदमी इस चक्र के बाहर हुए हैं पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में। छह न हुए हों, साठ हुए हों, संख्या कुछ बहुत बड़ी नहीं है। वह एक अनहोनी घटना है। न तो प्रेम, न क्रोध, न लोभ; ये सामान्य घटनाएं हैं; सभी को घट रही हैं; जानवरों को घट रही हैं। इससे तुम आदमी नहीं हो। तुम्हारे जीवन में आदमी होने का सूत्र तो उसी दिन घटेगा, जिस दिन तुम इस चित्त के मंत्र के बाहर हो जाओ; चित्त के वर्तुलाकार भ्रमण के बाहर हो जाओ। यह चित्त का चक्र टूट जाए और तुम इसके बाहर हो जाओ--वह ध्यान है।
ध्यान वर्तुलाकार नहीं है। ध्यान एक स्थिति है; मन एक गति है। ध्यान ठहराव का नाम है; मन भटकाव का नाम है। और भटकाव भी कुछ नयी जगहों पर नहीं, वही जगह फिर-फिर, वही जगह फिर-फिर। कोल्हू के बैल की तरह तुम घूम रहे हो। सचेत होकर देखोगे तो समझ में आ जाएगा। यह कोई सिद्धांत नहीं है, यह तथ्य है। यह कोई दर्शन-शास्त्र का सिद्धांत नहीं है--तुम्हारे मन का वर्तुलाकार भ्रमण, तुम्हारे मन का मंत्र की भांति होना। यह तुम्हारे जीवन का तथ्य है।
जिन्होंने जीवन को समझने की कोशिश की है, उन्होंने इसका आविष्कार किया है। यह कोई विचार से निर्णीत सिद्धांत नहीं है; अनुभव से पाया गया तथ्य है। तुम भी इसे अनुभव से पा सकते हो। मैं कहता हूं, इसलिए मानने की जरूरत नहीं। शिव कहें, इसलिए मानने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे पास आंखें हैं। आंख बंद करके मन को जरा कुछ दिनों तक देखते रहो, तब तुम हैरान हो जाओगे। तब तुम पाओगे कि तुम इस चाक से बंधे हो। और सारी प्रकृति इसी चाक से बंधी है। तुम्हारी मनुष्यता की घोषणा इसमें नहीं है, तुम्हारी गरिमा इसमें नहीं है। तुम्हारी गरिमा इसके बाहर उतर जाने में है। उसी क्षण तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हो या शिवत्व को उपलब्ध हो जाते हो।
"चित्त मंत्र है।"
पुनरुक्ति चित्त का स्वभाव है, रिपीटीशन। इसलिए चित्त के जगत में कभी कोई नयी चीज नहीं घटती। चित्त के जगत में कभी भी कोई मौलिक तत्व नहीं घटता; वहां सब बासा और पुराना है--सब उच्छिष्ट! तुम उसी-उसी की जुगाली करते हो। भैंस को देखा है जुगाली करते? भोजन कर लेती है, फिर उसको निकाल कर मुंह में जुगाली करती रहती है। चित्त जुगाली कर रहा है। तुम जो भी ले लेते हो भोजन की तरह चित्त में, फिर चित्त उसकी जुगाली करता रहता है। पढ़ो एक किताब, फिर चित्त में वह चलने लगेगी। मुझे सुन कर जाओगे, फिर चौबीस घंटे वह चित्त में चलने लगेगा। एक चक्र शुरू हो गया। चित्त फिर उसे चबाएगा, पचाएगा, पुनरुक्त करेगा। लेकिन चित्त में नया कभी नहीं घटता। ओरिजिनल, मौलिक चित्त में कभी नहीं घटता। और आत्मा मौलिक तत्व है। परमात्मा परम मौलिकता है। वह नवीनता है। उससे ज्यादा ताजा और कुछ भी नहीं। चित्त से वह उपलब्ध न होगा। चित्त के मंत्र को तोड़ना पड़ेगा।
ये सूत्र ठीक से समझनाः "चित्त ही मंत्र है।"
"और प्रयत्न साधक है"--दूसरा सूत्र।
प्रयत्न का अर्थ हैः इस चित्त के चक्र के बाहर निकलने की चेष्टा। जो निकल गया, वह सिद्ध है; जो निकलने की चेष्टा कर रहा है, वह साधक है। और महत प्रयत्न करना होगा, तभी तुम निकल पाओगे। उतना ही प्रयत्न करना होगा, जितना चित्त को बांधने में तुमने किया है। लेकिन बड़ी कठिनाई यह है कि उसी चित्त से तुम देखते हो। इसलिए तुम जो देखते हो, चित्त उसे अपने ही रंग में रंग देता है। यह बड़ी कठिनाई है। मैं तुमसे बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो; लेकिन तुम नहीं सुन रहे हो, तुम्हारा चित्त बीच में खड़ा है। मैं जो भी कहूंगा, चित्त अपना रंग उस पर फेंकेगा और उसको अपने अनुकूल बदल लेगा; उसका अर्थ बदल जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन शराब पीए एक बस में सवार हुआ। एक बूढ़ी औरत, जिसके बाल सब सफेद हो गए, उसे बड़ी दया आई। मुल्ला अभी जवान था; मुंह से शराब की बदबू आ रही। तो उस बूढ़ी औरत ने उससे कहा, बेटे, तुम्हें होश है या नहीं? तुम

सीधी नरक की यात्रा पर जा रहे हो! मुल्ला उचक कर खड़ा हो गया और उसने कहा, रोको भाई! मैं गलत बस में सवार हो गया।
वह जो चित्त है, अगर शराब में डूबा है, तो वह हर चीज को अपने रंग में रंग लेगा। वे समझे कि यह बस नरक जा रही है। तुम्हारा चित्त चौबीस घंटे यही कर रहा है। इसलिए बड़ी से बड़ी जटिल बात है वह यह है कि चित्त को अलग करके सुनने की चेष्टा। वही श्रावक, वही सम्यक श्रवण--कि चित्त को तुम हटा दो और सीधा सुनो।
"प्रयत्न साधक है।"
चेष्टा करनी पड़ेगी। महत चेष्टा करनी पड़ेगी। आलस्य में पड़े रहने से तुम बाहर न हो पाओगे इस वर्तुल के। कैसे कोई पड़ा-पड़ा वर्तुल के बाहर हो पाएगा? पड़ा-पड़ा तो वर्तुल घूमता ही रहेगा, चक्र घूमता ही रहेगा, और डर के कारण कि कहीं तुम गिर न जाओ, तुम उसे जोर से पकड़े रहोगे।
अगर तुमने कभी जंगल में बहेलियों को देखा है तोतों को पकड़ते, तो बहेलिये बड़ी सीधी तरकीब का उपयोग करते हैं। वही तरकीब तुम्हारा चित्त तुम्हारे लिए कर रहा है। वे रस्सी बांध देते हैं। तोते उस पर आकर बैठते हैं, वजन के कारण उलटे होकर लटक जाते हैं। रस्सी पर बैठा नहीं जा सकता। तोता रस्सी पर आकर बैठता है, वजन के कारण उलटा हो जाता है, उलटा लटक कर घबरा जाता है, घबरा कर रस्सी को जोर से पकड़ लेता है कि कहीं गिर न जाऊं! अब मुश्किल में पड़ा। अगर छोड़े रस्सी को तो डर लगता है कि गिर पडूंगा। कुछ पकड़ने की जरूरत नहीं, वे अपने आप पकड़े गए। वह बहेलिया आकर उनको पकड़ कर ले जाएगा। यह तोता भूल ही गया कि मेरे पास पंख हैं, गिरने का कोई कारण नहीं, कोई भय नहीं। लेकिन एक दफा रस्सी में उलटे लटक कर तुमको भी यही भय हो जाता है कि चक्के से अगर उतरे, क्या होगा? खो जाएंगे, भटक जाएंगे!
हेमिंग्वे के एक पात्र ने एक उपन्यास में कहा है कि दुख मुझे स्वीकार
है खालीपन की बजाय। आई विल चूज सफरिंग दैन नथिंगनेस। ना-कुछ मैं न चुनूंगा; इससे तो दुख चुन लेना बेहतर है।
खाली होना तुम पसंद न करोगे। नरक भी ठीक है; कम से कम भरे तो हो। वह तोता लटका है। डर रहा है कि कहीं सब न खो जाए। शक उसे भी हो रहा है कि फंस गए। लेकिन फंसा होना ठीक है कम से कम गिरने से। इस चाक को तुम्हीं पकड़े हुए हो। चाक तुम्हें नहीं पकड़े हुए है। मन तुम्हें नहीं पकड़े हुए है। अगर मन तुम्हें पकड़े होता, तो फिर बुद्ध और महावीर पैदा नहीं हो सकते; क्योंकि वह उनको भी पकड़े रहता। वे भागते क्या होता! मन उनको पकड़े रहता। मन उनका पीछा करता।
नहीं, मन तुम्हें नहीं पकड़े है, मन को डर के कारण तुमने ही पकड़ा हुआ है। और तुम इतने जोर से पकड़े हो और फिर भी तुम जाते हो संतों-साधुओं के पास पूछने कि मन से छुटकारा कैसे हो? मन से छुटकारे के लिए किसी से पूछने की कोई जरूरत नहीं। इतना ही समझ लेना जरूरी है कि तुमने पकड़ा है। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे जीवन के लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है। पर पकड़ना अब सुविधापूर्ण हो गया है; क्योंकि तुम सदा से पकड़े हो, उसकी आदत हो गई है, उसमें कुछ श्रम नहीं लगता। छोड़ने में श्रम लगेगा। अगर तुमने मुट्ठी जन्मों-जन्मों से बांध रखी है, तो खोलना मुश्किल होगा। जड़ हो गई हैं अंगुलियां; हाथ बंध गया है। बस इतनी ही बात है। थोड़े से प्रयत्न की जरूरत है कि मांस-पेशियां फिर सजग हो जाएं, खून फिर हाथ-अंगुलियों में दौड़ने लगे और तुम खोलने में समर्थ हो जाओ। जिसे बांधा है, वह खुल सकता है, इतना तो पक्का है। नहीं तो बांधते कैसे? मुट्ठी बंधती है, क्योंकि खुल सकती है। कभी खुली ही रही होगी, तभी बंधी है; फिर कभी खुल सकती है। लेकिन अगर बहुत दिन तक बांध कर रखी है, तो खुलना मुश्किल हो जाता है। बस इतनी ही अड़चन है। प्रयत्न की इसीलिए जरूरत है।
प्रयत्न का अर्थ हैः चित्त को छोड़ने के लिए श्रम करना होगा। और चित्त बार-बार तुम्हें समझाएगा कि क्या कर रहे हो! क्या पागलपन कर रहे हो! क्योंकि तुमने छोड़ा कि चित्त मरा।
"प्रयत्न साधक है।"
तुम जब तक साधक न होओगे, तब तक तुम प्रयत्न न करोगे। प्रयत्न तुम थोड़ा- बहुत करते भी हो; लेकिन वह हमेशा आधा-आधा है। और आधे मन से किए गए प्रयत्न

का कोई अर्थ नहीं। वह ऐसा है, जैसे एक हाथ से चाक को पकड़े हैं और दूसरे से छोड़ा। फिर इससे पकड़ा और दूसरे से छोड़ा। उससे कुछ हल न होगा। नहीं; आधे-आधे से कोई प्रयोजन नहीं है।
एक व्यापारी अपनी पत्नी को सांझ कहा कि एक बड़ा ग्राहक आ रहा है, लाखों रुपयों का सौदा होना है। तो मैं जाता हूं; ताजमहल में भोजन पर निमंत्रण दिया है। वह गया। रात--आधी रात--पीए, खाए-पीए लौटा। पत्नी ने कहा, कुछ हुआ? उसने कहा, फिफ्टी-फिफ्टी, आधा-आधा। पत्नी ने कहा, चलो, कुछ तो हुआ! फिर पत्नी ने सोचा कि मतलब क्या है आधे-आधे का? तो उसने पूछा, जब वह सोने ही जा रहा था पति, कि फिफ्टी-फिफ्टी का मतलब? तो उसने कहा, मैं तो पहुंचा, वह ग्राहक नहीं आया।
तुम जब भी आधे-आधे हो, बस ऐसा ही है। कुछ होगा नहीं; वह फिफ्टी-फिफ्टी
है नहीं। और सब जगह तुम आधे-आधे हो; पूरे तुम कहीं भी नहीं हो। जहां तुम पूरे हो जाते हो, वहीं जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। तब तुम उबलते हो। तब तुम सौ डिग्री पर वाष्पीभूत होते हो। तब पानी भाप बनता है। तब तुम नीचे की तरफ नहीं बहते, जैसा पानी बहता है; तब तुम भाप की तरह ऊपर उठते हो। तब तुम्हारी दिशा अधोगामी नहीं रह जाती, ऊर्ध्वगामी हो जाती है। "प्रयत्न साधक है।"
तुम्हें आलस्य छोड़ना पड़े। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि सुबह
का ध्यान जरा मुश्किल है; छह बजे आने में कठिनाई होती है। तुम समझ ही नहीं रहे कि तुम क्या कह रहे हो। अगर तुम्हें छह बजे उठने में कठिनाई हो रही है, तो तुम्हें मन के बाहर जागने में तो भयंकर कष्ट होगा। अगर छह बजे उठने में तुम्हें इतनी मुश्किल मालूम पड़ रही है, तो जीवन के चाक से छलांग तुम कैसे लगाओगे? एक छोटी सी आदत कि तुम छह बजे नहीं उठते रहे हो बस! दो-चार दिन आलस्य पकड़ेगा। पर आलस्य को तुम जीतने देते हो और आलस्य की कीमत पर ध्यान को खोने को तुम तैयार हो, तो ध्यान का तुम्हारे मन में कोई मूल्य ही नहीं है। अगर मूल्य होता तो यह सवाल तुम उठाते न।
कोई आता है, वह कहता है कि चार ध्यान में तो थकान हो जाती है; अगर दो छोड़ दें?
तुम चार ही छोड़ सकते हो। क्योंकि चार में थकान होती है, दो में आधी होगी, लेकिन होगी तो ही। और मैं जानता हूं कि अगर मैं तुम्हारे मन को सुविधा दूं कि दो छोड़ दो, कल तुम आओगे कि एक ही करें तो? क्योंकि वही मन! दो में भी तुम थकोगे तो ही।
अगर तुम उस सूत्र को मान कर चलते हो तो तुम आज नहीं कल आलस्य में डूबना
ही पसंद करोगे; क्योंकि कुछ भी करने में श्रम तो होगा। ध्यान रहे--जीवन श्रम है, मृत्यु विश्राम है। तो अगर मरना हो, तब कुछ करने की जरूरत नहीं। अगर जीना हो तो कुछ करना पड़ेगा। और अगर विराट जीना हो तो विराट उद्यम करना होगा। अगर परमात्मा को पाना हो तो ऐसा छोटा-छोटा प्रयास काम नहीं करेगा। तुम्हारा पूरा जीवन ही प्रयास बन जाए, तुम रत्ती-रत्ती दांव पर लगा दो अपने को; कुछ भी तुमने बचाया, तो तुम चूक जाओगे। यहां पूरा ही दांव लगेगा, तो ही तुम बच सकते हो। इसीलिए थोड़े से लोग उपलब्ध हो पाते हैं। कोई कारण नहीं, सिवाय आलस्य के।
तुम ध्यान भी करते हो तो तुम ऐसे करते हो कि कहीं पैर में चोट न लग जाए;
कि कहीं किसी का धक्का न लग जाए; कि ऐसा करें कि थक भी न जाएं।
तुम कर ही क्यों रहे हो? तुमसे कहा किसने? लेकिन तुम साफ भी नहीं हो। तुम ऐसे धुंधलके में जीते हो जहां सब अंधेरा-अंधेरा है। तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि तुम यहां आ कैसे गए। कैसे चले आए तुम? कोई आ रहा था, तुम साथ आ गए; कि सोचा चलो देखें! कि चलो देखें, दूसरे क्या कर रहे हैं!
तुम ऐसे ही धक्के खा रहे हो। और ऐसा अनंत जन्मों से चल रहा है। लेकिन धक्कों से कोई मंजिल पर नहीं पहुंचता। मंजिल कोई संयोग नहीं है कि तुम किसी भी भांति पहुंच जाओगे। मंजिल एक गंतव्यपूर्ण यात्रा है। मंजिल एक दिशा की तरफ सारे जीवन की धारा को लेकर चलने का श्रम है। मंजिल एक संकल्प है। संकल्प करते ही तुम्हारा मन एक धारा में आ जाता है; शक्ति इकट्ठी हो जाती है।

तो ऊर्जा तुममें महान है। तुम जितना सोचते हो कि इतनी कम शक्ति है कि इतने जल्दी थक जाओगे, वह तुम गलती में हो। मनुष्य के शरीर में शक्ति के, ऊर्जा के तीन तल हैं। एक तल ऊपर का है, जो रोजमर्रा काम के लिए है। जैसे तुम जेब-खर्च के लिए खीसे में कुछ रुपये डाल रखते हो। वह तुम्हारी पूरी संपदा नहीं है; वह जेब-खर्च के लिए है कि बाजार गए कुछ सामान वगैरह लाना--कुछ रुपये।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दफा गांव से गुजर रहा था। बाहर अंधेरा था। चार आदमियों ने पकड़ कर उस पर हमला कर दिया। उसने इस भयंकर ढंग से लड़ाई की कि चारों को पछाड़ दिया। बामुश्किल वे चार उस पर कब्जा कर पाए--बामुश्किल! और जब उसके खीसे में हाथ डाला तो केवल सात पैसे थे। तो उन्होंने कहा, हद कर दी, नसरुद्दीन! सात पैसे के लिए? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं नहीं समझा कि तुम सात पैसे के लिए लड़ रहे हो। बाएं पैर के जूते में पांच सौ रुपये छिपा रखे हैं। लेकिन तब उन्होंने भी हिम्मत न की उसका बायां जूता खोलने की; क्योंकि जो सात पैसे के लिए ऐसा भयंकर श्रम किया। उन्होंने कहा, नमस्कार! फिर कभी। वह जो तुम्हारी रोजमर्रा की ऊर्जा है, वह सात पैसे से ज्यादा नहीं है।
वह रोज के काम के लिए है--उठना, बैठना, भोजन करना, पचाना, सोना, काम-धाम; ऊपर का अंग है; खीसे में पड़े हुए पैसे हैं। जब तुम ध्यान शुरू करते हो, वह चुक जाती है। जल्दी चुक जाती है; क्योंकि ध्यान उसने कभी किया नहीं। वह एक नया क्रम शुरू हो गया। अगर तुम उसकी ही बात मान कर रुक गए, तो तुम कभी ध्यान न कर पाओगे। उसकी तुम सुनो मत। अगर तुम किए ही गए, जल्दी ही तुम पाओगे कि दूसरे तल की ऊर्जा संलग्न हो गई।
कई दफे तुम्हें अनुभव भी होता है। तुम बैठे हो रात, सोने जा रहे थे, ऐसी नींद आ रही थी कि पलक खुलते नहीं खुलते थे, कि तत्क्षण घर में आग लग गई। फिर तुम सो पाते हो? फिर तुम कहते हो मुझे नींद आ रही है? न, नींद तिरोहित हो जाती है। कहां से यह ऊर्जा आई? अभी तुम झपकी खा रहे थे; और तुमसे कोई कहता गीता पढ़ो, तो तुम कहते, भाई, मुश्किल है। लेकिन घर में आग लग गई! गीता छोड़ सकते थे, लेकिन घर में आग लग गई! अब तुम दौड़ रहे हो, भाग रहे हो, बुझा रहे हो। और आग भी बुझ जाएगी, तो भी अब इस रात तुम सोने वाले नहीं। अब तुम जागे ही रहोगे; कितनी ही कोशिश करो सोने की, नींद न आएगी। क्या हुआ? दूसरा तल, जो रोजमर्रा शक्ति का नहीं है--संरक्षित तल--टूट गया। उसके टूट जाने के कारण तुम इतनी ऊर्जा से भर गए हो कि सब नींद खो गई।
अगर तुमने ध्यान का प्रयोग जारी रखा, तुम थके न, जल्दी ही दूसरी ऊर्जा उपलब्ध होगी। उसके उपलब्ध होते ही तुम पाओगे कि कितना ही ध्यान करो, थकने वाला नहीं है, कुछ भीतर खर्च होने वाला नहीं है। यह भी दूसरा तल है। एक तीसरा तल है। यह दूसरा तुम्हारा खजाना है, यह भी चुक सकता है; इतनी आसानी से नहीं, जितनी आसानी से पहला तल चुकता है। यह भी एक दिन चुकेगा। महत उपाय तुम करते रहोगे ध्यान के तो एक दिन यह भी चुकेगा। और तब तीसरा तल टूटता है। वह तल तुम्हारा नहीं, वह परमात्मा का है; वह कभी भी नहीं चुकता। लेकिन अगर तुमने आलस्य किया तो तुम दूसरे तल पर ही नहीं पहुंचोगे; तीसरे पर पहुंचने का तो कोई सवाल नहीं।
परमात्मा परम ऊर्जा है; तुम्हारे भीतर ही छिपा है।
पहला तल तुम्हारे मन का, दूसरा तल तुम्हारी आत्मा का, तीसरा तल परमात्मा का। मन को चुकाओ तो आत्मा की ऊर्जा उपलब्ध होगी। आत्मा को भी चुका दो तो परमात्मा की ऊर्जा उपलब्ध होगी--जो शाश्वत है; जिसके फिर चुकने का कोई उपाय नहीं है। फिर तुम विराट के साथ एक हो गए।
इसलिए शिव कहते हैंः "प्रयत्न साधकः।"
प्रयत्न--सतत, गहरा, और गहरा प्रयत्न--साधक है। उस समय तक प्रयत्न करते जाना है, जब तक कि तीसरा तल न टूट जाए, तुम उस परम ऊर्जा को न उपलब्ध हो जाओ। फिर तुम सिद्ध हो। फिर विश्राम किया जा सकता है। उसके पूर्व विश्राम आत्मघात है।
तीसरा सूत्र हैः "गुरु उपाय है।"
यह जो जीवन की खोज है, तुम अकेले न कर पाओगे; क्योंकि अकेले तो तुम अपने वर्तुल में बंद हो। तुम्हें उसके बाहर दिखाई भी नहीं पड़ता। उसके बाहर कुछ है, इसकी खबर भी तुम्हें नहीं है। तुम जो हो--अपनी खोल में बंद--

तुम समझते हो, यही जीवन है। यह खबर तुम्हें बाहर से किसी को देनी पड़ेगी, जिसने इससे विराट जीवन को जाना हो। तुम अपने घर में कैद हो। तुम्हें पता भी नहीं कि घर के बाहर खुला आकाश है, चांद-तारे हैं। यह तो कोई जो चांद-तारों को देख कर आया हो और तुम्हें घर में दस्तक दे और कहे कि बाहर आओ, कब तक भीतर बैठे रहोगे!
पहले तो तुम यही पूछोगे कि बाहर जैसी कोई चीज भी है? यही तो लोग पूछते हैं कि परमात्मा जैसी कोई चीज है? आत्मा जैसी कोई चीज है? और तुम चाहते हो कि सिद्ध कर दे कोई घर के भीतर बैठे हुए कि आकाश है। कैसे सिद्ध करेगा? घर के भीतर बैठे, आकाश है, यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है? तुम्हें चलना पड़ेगा साथ। वह जो कह रहा है कि आकाश है, उसके पीछे तुम्हें दो-चार कदम उठाने पड़ेंगे; क्योंकि आकाश दिखाया जा सकता है, सिद्ध नहीं किया जा सकता; सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। और अगर कोई आकाश को सिद्ध करना चाहेगा घर के छप्पर के भीतर, तो तुम उसको हरा सकते हो। क्योंकि तुम कहोगे, कहां की बातें कर रहे हो? छप्पर है। यहां तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता; दीवारें हैं। क्या प्रमाण है कि बाहर कुछ है? तुम थोड़ा सा आकाश भीतर लाकर मुझे दिखा दो।
तो आकाश कोई वस्तु तो नहीं कि भीतर लाई जा सके; कि आकाश का काट कर एक टुकड़ा हम भीतर ले आएं; तुम्हें दिखा दें नमूना ताकि फिर तुम बाहर जा सको। नहीं, परमात्मा का कोई खंड लाकर तुम्हें दिखाया नहीं जा सकता; तुम्हें जाना होगा।
इसीलिए गुरु उपाय है। गुरु का केवल इतना ही अर्थ हैः जिसे अनुभव हुआ हो, जिसने जाना हो, जो कारागृह से छूट गया हो। वही तुम्हें खबर दे सकता है कि तुम कारागृह में हो; और वही तुम्हें खबर दे सकता है कि छूटने का उपाय है; और वही तुम्हें रास्ता बता सकता है कि आओ मेरे पीछे, इस कारागृह में भी द्वार हैं, जहां से बाहर निकला जा सकता है। इस कारागृह में भी ऐसे द्वार हैं, जहां के संतरी सोए हुए हैं। इस कारागृह में ऐसे भी द्वार हैं, जहां के संतरी बड़े सजग हैं। अगर तुमने वहां से निकलने की कोशिश की, तो तुम और मुसीबत में पड़ जाओगे। अभी कम से कम कारागृह में तुम मुक्त हो। अगर तुमने वहां से निकलने की कोशिश की, जहां संतरी सजग हैं, जहां मुख्य द्वार है, तो तुम काल कोठरी में डाल दिए जाओगे; तो कारागृह और छोटा हो जाएगा।
और ध्यान रहे, नकार से निकलने की कोशिश में तुम काल कोठरी में गिर जाओगे। अगर तुम लड़े बुराई से, तो तुम और भी बुराई में फेंक दिए जाओगे। वह मुख्य द्वार है; लेकिन वहां से कोई कभी निकल नहीं सकता। कोई कभी निकला नहीं। क्योंकि मुख्य द्वार पर पहरा देना पड़ता है, मुख्य द्वार पर सब सुरक्षा रखनी पड़ती है। लेकिन इस कारागृह में ऐसे द्वार भी हैं जो गुप्त हैं, ऐसे द्वार भी हैं जहां कोई पहरा नहीं है, क्योंकि उस तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता कैदी। कैदी भी ध्यान देता है मुख्य द्वार की तरफ।
मैंने सुना है, एक कारागृह में फ्रांस में ऐसा हुआ क्रांति के दिनों में कि कारागृह के कैदियों ने बगावत कर दी। कैदी बगावत न करें तो ठीक है। कोई दो हजार कैदी थे और कोई बीस संतरी थे, कभी भी छूट सकते थे। बीस संतरी की औकात क्या! बगावत नहीं की थी, क्योंकि कैदी कभी इकट्ठे नहीं होते। कैदी एक-दूसरे के भी दुश्मन होते हैं। साथ होने के लिए इतनी भी सरलता नहीं होती। मित्रता बनाने का उपाय नहीं होता; एक-दूसरे के शत्रु होते हैं। इसलिए बीस संतरी काफी थे। फिर बगावत कर दी, कैदी इकट्ठे हो गए। उन्होंने बगावत कर दी तो जो प्रधान जेलर था वह घबड़ाया। उसने कहा, क्या करें! उसने पहला काम यह किया कि संतरियों से कहा कि मुख्य द्वार की फिक्र छोड़ दो। तुम जाकर छोटी खिड़कियों और दरवाजों पर खड़े हो जाओ। संतरियों ने कहा भी कि यह निर्णय बड़ा गलत है। उस जेलर ने कहा, तुम फिक्र मत करो। मुख्य द्वार बिल्कुल छोड़ दो। मुख्य द्वार खाली छोड़ दिया गया। वहां एक भी संतरी न था। लेकिन कोई कैदी भाग न सका; क्योंकि छोटे द्वारों पर पहरा लगा दिया गया। जिन पर कभी पहरा न था, उन पर पहरा लगवा दिया। और जहां सदा पहरा था, वहां से पहरा बिल्कुल हटा दिया। अगर चाहते तो सभी कैदी बाहर निकल जाते।
पीछे उस जेलर से उसके संतरियों ने पूछा कि हम समझे नहीं, तरकीब काम कर गई। तो उसने कहा कि बगावत का मतलब है कि कोई बाहर का आदमी भीतर पहुंच गया। इन कैदियों में कोई खुला आदमी बाहर से भीतर पहुंच गया है--कोई आदमी जो

जानता है। और जो भी जानता है, वह छोटे द्वारों से निकलने की चेष्टा करवाएगा। जो नहीं जानता, वह हमेशा मुख्य द्वार से निकलने की कोशिश करेगा।
तो कल तक हम मुख्य द्वार पर पहरा दे रहे थे; क्योंकि अज्ञानी थे भीतर। लगता है कोई गुरु पहुंच गया।
जीवन में बुराई से लड़ कर निकलने का द्वार मुख्य मालूम होता है। तुम्हारा मन कहता हैः पहले बुराई को मिटाओ, तभी तो साधुता उपलब्ध होगी; पहले गलत को छोड़ो, तभी तो ठीक के लिए राह बनेगी; पहले संसार को बाहर निकालो, तभी तो परमात्मा का सिंहासन खाली होगा। यह मुख्य द्वार है। गुरु तुम्हें इससे निकलने को न कहेगा। क्योंकि इससे कोई कभी नहीं निकल पाता; वहां पहरा भयंकर है। और जो आदमी वहां से निकलने की कोशिश करता है, वह और छोटी काल कोठरियों में डाल दिया जाता है।
मेरे देखे, तुम्हारे साधु-संत तुम से भी बुरे कारागृहों में बंद हैं। तुम्हारे पास आंखें नहीं हैं, इसलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। गृहस्थ तो परेशान हैं ही, तुम्हारे साधु तुमसे भी बुरी तरह परेशान हैं। तुम्हारे पास कम से कम छोटा आंगन भी है, जिसमें तुम थोड़ी स्वतंत्रता अनुभव करते हो; उनका आंगन भी छिन गया है। वे जेल के भीतर हैं; लेकिन जेल के भीतर जो स्वतंत्रता साधारण कैदी को मिलती है, वह भी उनको नहीं है। वे चौबीस घंटे काल कोठरी में बंद हैं।
मेरे पास साधु-संन्यासी आते हैं; उनका मन बिल्कुल ही रुग्ण और विक्षिप्त है।
एक जैन मुनि ने मुझे कहा कि साठ साल का हो गया हूं, चालीस साल से मुनि हूं, लेकिन निरंतर मन में यह शक बना रहता है कि मैंने कहीं भूल तो नहीं की! कहीं ऐसा तो नहीं है कि साधारण संसारी आनंद भोग रहा है और मैं नाहक कष्ट पा रहा हूं!
यह संदेह उठना बुद्धिमान आदमी के लिए स्वाभाविक है। यह आदमी नासमझ नहीं है, यह आदमी समझदार है। यह संदेह उठना स्वाभाविक है। क्योंकि इसको दिखाई पड़ रहा है कि पाया तो मैंने कुछ भी नहीं; ये चालीस साल क्रोध, काम, लोभ, इनसे ही लड़ने में बीत गए, मिला तो कुछ भी नहीं। और क्रोध मिट गया हो, ऐसा भी नहीं है; सिर्फ छिप गया है। तो दूसरों से तुम छिपा सकते हो, खुद से कैसे छिपाओगे? खुद तो तुम्हें पता है। दबा कर बैठे हो, सज्जन मालूम पड़ते हो, अपराध नहीं करते हो; लेकिन अपराधी भीतर मौजूद है, और कभी भी कर सकता है; और किसी भी क्षण मौका मिल जाए तो करेगा। एक कारागृह और छोटा हो गया है। थोड़ी बाहर स्वतंत्रता थी घूमने की, वह भी छिन गई है; काल कोठरी है।
प्रमुख द्वार से जो निकलने की कोशिश करेगा, वह और भी बंध जाएगा। लेकिन गुप्त द्वार हैं। पर गुप्त द्वार गुरु बता सकता है। चाबियां हैं, जिनसे गुप्त द्वार खुल जाते हैं। जो बाहर जा चुका है, वही तुम्हें बाहर ले जा सकता है।
शास्त्र तुम्हें साथ दे सकते हैं कि तुम कारागृह में ही पढ़ते रहो; लेकिन तुम्हें बाहर नहीं ले जा सकते। क्योंकि शास्त्रों का अर्थ कौन करेगा? तुम ही करोगे। शास्त्रों को समझेगा कौन? तुम ही समझोगे। तुम अपने हिसाब से समझोगे। तुम ही अगर समझदार होते, तो शास्त्र की कोई जरूरत न थी।
तुम समझदार नहीं हो, यह पक्का है। और शास्त्र से जब नासमझ अर्थ निकालता है तो और झंझटों में पड़ जाता है।
नहीं, तुम्हें जीवित शास्त्र चाहिए। गुरु का अर्थ हैः जीवित शास्त्र। जीवित व्यक्ति को खोजो, जो तुम्हें राह दे सके।
शिव कहते हैंः "गुरु उपाय है।"
उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। और तुमने अगर अपने ही हाथ से चेष्टा की सुलझाने की, तो उलझ जाने का ज्यादा डर है। क्योंकि मन बड़ा सूक्ष्म यंत्र है। अक्सर होता है कि हम ही सुलझा लें। अक्सर ऐसा होता है कि तुम्हारी घड़ी बंद हो गई, तो दिल होता है, खोल कर और ठीक कर लें। सभी का दिल होता है। और जितना नासमझ आदमी हो, उतना जल्दी दिल होता है। छोटा बच्चा तो बिल्कुल खोल कर बैठ ही जाएगा; क्योंकि उसे यह लगता ही नहीं कि इसमें ऐसी अड़चन क्या है। चलती थी, अभी नहीं चलती; जरा देखें खोल कर।

घड़ी कोई बहुत जटिल यंत्र नहीं है। लेकिन अगर तुमने सुधारने की कोशिश की, तो तुम्हारी हालत वैसी हो जाएगी, जैसे मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन घड़ीसाज की दुकान पर गया। उसने अपनी घड़ी, जो कि खंड-खंड थी, टुकड़े-टुकड़े थी, वह उसकी टेबल पर रखी। उस आदमी ने चौंक कर पहले तो घड़ी को देखा--घड़ीसाज ने, फिर नसरुद्दीन को देखा। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं बड़ा हैरान हूं कि यह मेरे हाथ से गिर कैसे गई! उस घड़ीसाज ने कहा कि हैरान मैं हूं कि तुमने इसे उठाया क्यों! अब इसमें कुछ किया नहीं जा सकता। और यह गिरने से नहीं बिगड़ी है। नसरुद्दीन ने कहा, थोड़ी मैंने सुधारने की जरूर कोशिश की। उसने कहा, इसे ले जाओ। अब इसे सुधारा नहीं जा सकता।
घड़ी बिल्कुल साधारण यंत्र है, कोई बहुत जटिल नहीं है। मन बहुत जटिल यंत्र है। तुम्हें मन की जटिलता का पता ही नहीं है। मन से जटिल इस जगत में कुछ भी नहीं है।
तुम्हारे मस्तिष्क में कोई सात करोड़ कोष्ठ हैं। और प्रत्येक कोष्ठ, एक-एक कोष्ठ एक करोड़ सूचनाओं को संगृहीत कर सकता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इस जगत में जितने पुस्तकालय हैं, एक आदमी के मस्तिष्क में सभी कंठस्थ कराए जा सकते हैं। एक-एक सेल एक-एक करोड़ सूचनाओं को संगृहीत कर सकता है। सात करोड़ सेल हैं। तुम्हारी छोटी सी इस खोपड़ी में, इस पृथ्वी पर जितना ज्ञान है, वह सब संगृहीत किया जा सकता है। इतनी छोटी सी खोपड़ी है, मुश्किल से कोई डेढ़ किलो वजन है, और सात करोड़ तंतु हैं, जो आंख से नहीं देखे जा सकते। तंतु बहुत बारीक हैं।
इसीलिए मस्तिष्क का आपरेशन अभी तक रुका रहा। अब मस्तिष्क का आपरेशन शुरू हुआ है। लेकिन तब भी खतरा है; क्योंकि काटने तुम कुछ जाओ, हजार दूसरे तंतु कट जाते हैं। इतने सब सूक्ष्म हैं। यंत्र तो डालोगे, औजार तो भीतर ले जाओगे, भीतर-बाहर ले जाने में ही औजार लाखों तंतु कट जाते हैं। औजार ले जाने की भी जरूरत नहीं है, तुम सिर्फ शीर्षासन ही करते रहो आधा घंटा रोज, तुम्हारी खोपड़ी खराब हो जाएगी। तुम शीर्षासन करने वाले लोगों को बहुत बुद्धिमान कभी न पाओगे; क्योंकि इतना खून का प्रवाह छोटे तंतुओं को तोड़ देता है, जैसे बाढ़ आ जाए।
आदमी का मस्तिष्क विकसित इसीलिए हुआ कि वह खड़ा हो गया और सिर की तरफ खून की धारा कम हो गई। जानवरों का मस्तिष्क विकसित नहीं हुआ; क्योंकि उनकी खोपड़ी और उनका शरीर एक ही तल में है। तो उनके पास मोटे स्नायु हैं; पतले स्नायु नहीं हैं। आदमी की सारी प्रतिष्ठा और खूबी यह है कि वह खड़ा हो गया। खड़े होने से, गुरुत्वाकर्षण की धारा उसके खून को नीचे की तरफ खींचती है और फेफड़े को पंप करना पड़ता है, खून तब सिर तक पहुंचता है। बहुत कम खून पहुंच पाता है। इसलिए सूक्ष्म तंतु विकसित हो गए। अगर बाढ़ आए तो बड़े-बड़े झाड़ बह जाएंगे, छोटे पौधों का क्या! तो इतने सूक्ष्म तंतु हैं कि खून की जरा सी गति ज्यादा हो जाए तो नष्ट हो जाते हैं।
इस सात करोड़ के सूक्ष्म जाल में, तुम अगर खोल कर बैठ गए खुद ही, तो इसकी आशा करना असंभव है कि उससे कुछ लाभ होगा, हानि निश्चित है। और बहुत लोग खोल कर अपने मस्तिष्क को बैठ जाते हैं--अपने ही मन से ध्यान करने लगते हैं, आसन लगाने लगते हैं, कुछ किताब से इकट्ठा कर लेते हैं, कुछ सुन लेते हैं, हवा से बातें पकड़ लेते हैं, कुछ करने लगते हैं। उससे सिवाय नुकसान के कभी कोई लाभ नहीं होता।
एक बौद्ध भिक्षु को मेरे पास लाया गया। वह तीन साल से सो नहीं सका। सब तरह के इलाज किए गए, लेकिन नींद नहीं आती। सब ट्रैंक्वेलाइजरों को उसने हरा दिया। नींद आती ही नहीं, कुछ भी उपाय काम नहीं कर पा रहे हैं। और तीन साल तक जो न सोए, उसकी हालत तुम समझ सकते हो। वह बिल्कुल विक्षिप्त अवस्था है। मैंने उससे पूछा कि... क्योंकि वह किसी डाक्टर ने उससे पूछा ही नहीं। डाक्टरों ने उसकी चिकित्सा शुरू कर दी; जांच-पड़ताल की शरीर की--खून का दबाव, हृदय की स्थिति--सारा सब जांच-पड़ताल करके इलाज शुरू किया। वह उसकी बीमारी नहीं है। वे सज्जन एक ध्यान कर रहे हैं। एक प्राचीन परंपरा है बौद्धों की, विपश्यना, वे विपश्यना ध्यान कर रहे हैं। वह ध्यान उन्होंने शास्त्र से सीधा पढ़ लिया। क्योंकि गुरु तो एक-एक शिष्य को ख्याल में रखेगा। या अगर वह कोई सामूहिक पद्धति विकसित करता है, तो वह समूह को ध्यान

में रखेगा। लेकिन शास्त्र तो आपका ध्यान नहीं रख सकते कि कौन पढ़ेगा। कोई भी पढ़ेगा! और शास्त्र हजारों साल तक जीते हैं।
तो बहुत पुरानी विपश्यना की पद्धति है, वह उन्होंने पढ़ ली और उस पर प्रयोग शुरू कर दिया। फिर उसमें उन्हें रस आया; क्योंकि पद्धति बड़ी कीमती है, बुद्ध ने खुद उपयोग किया है। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि जब रस आ जाए तो कहां रुकना; क्योंकि रस भी ज्यादा हो जाए तो जहर हो जाता है। तो रस उन्हें इतना आया कि वे चौबीस घंटे उसे भीतर साधने लगे। जब तुम कोई चीज भीतर चौबीस घंटे साधोगे, नींद खो जाएगी। क्योंकि भीतर अगर इतना प्रयत्न चलाओगे, तो नींद के आने की संभावना नहीं है। फिर उन्होंने वर्षों तक यह प्रयोग किया कि जिन तंतुओं से नींद आती है, वे तंतु टूट गए। तो अब नींद का कोई उपाय नहीं। क्योंकि डाक्टर भी साथ दे सकता है, अगर तंतु मौजूद हों; तो ट्रैंक्वेलाइजर जाकर उन तंतुओं को शिथिल कर देगा और आप सो जाएंगे। लेकिन अगर तंतु ही टूट गए, तो अब डाक्टर भी क्या करेगा!
तो मैंने उनको कहा कि तुम साल भर के लिए सब तरह का ध्यान छोड़ दो। तुमसे जितना आलस्य बन सके, आलस्य करो। ध्यान की बात ही मत करना। शास्त्र मत पढ़ना। सोना, जितना सो सको। लेटना, विश्राम करना; खूब खाओ, खूब पीओ। साल भर के लिए परम संसारी हो जाओ।
उन्होंने कहा, आपसे ऐसी आशा न थी। आप और ऐसे शब्द कह रहे हैं? भ्रष्ट
कर रहे हैं आप? मैंने कहा कि तुम अगर भ्रष्ट समझते हो तो फिर तुम समझो। साल भर यह करो, फिर मेरे पास आना।
ठीक तीन महीने बाद वे ठीक हो गए। अब उन्हें नयी पद्धति देनी पड़ी। और पद्धति को भी सोच कर देना जरूरी है कि कितना तुम कर सकोगे। और फिर क्रमशः गति बढ़नी चाहिए। और पूरे चित्त की व्यवस्था का ध्यान रखना जरूरी है। इसलिए शिव कहते हैंः "गुरु उपाय है।"
तुम खुद अपने उपाय मत बन जाना; अन्यथा तुम बिगाड़ कर लोगे। पहले जीवित पुरुष को खोजना। कठिनाई है; क्योंकि किसी जीवित पुरुष को गुरु मानने में बड़ी बेचैनी है; अहंकार को चोट लगती है। इसलिए शास्त्रों में लोग ज्यादा रस लेते हैं; क्योंकि शास्त्र से कोई अहंकार को चोट नहीं लगती। शास्त्र को उठा कर फेंक दो, तो भी शास्त्र कुछ नहीं कर सकता। जहां रखो सम्हाल कर, वहां रखा रहता है, कुछ नहीं कर सकता।
तुम गुरु के साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते; तुम्हारे अहंकार को वहां छूटना पड़ेगा। वहां तुम्हें झुकना पड़ेगा। शास्त्र के सामने भी तुम झुकते हो, तो वह तुम्हारी मौज है; मालिक तुम ही रहते हो। जब दिल आए, बदल दो; और शास्त्र से कह दो, चलो हटो। तो शास्त्र कुछ न कर पाएगा। लेकिन गुरु जीवित है। वहां झुकना पड़ेगा। और जीवित व्यक्ति--बड़ी चोट लगती है।
इसलिए लोग पहले किताब देखते हैं; जब थक जाते हैं किताबों से, तब गुरु
को खोजते हैं। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि किताबें उन्हें इतना बिगाड़ देती हैं कि उनकी आंखें ऐसी विकृत हो जाती हैं शब्दों से कि फिर वे गुरु को पहचान ही नहीं पाते। तुम अगर गुरु के पास भी जाते हो तो तुम किताब की पहचान लेकर जाते हो। तुमने किताब में पढ़ लिया कि गुरु कैसा होना चाहिए।
कोई किताब नहीं बता सकती कि गुरु कैसा होना चाहिए। कोई भी किताब किसी गुरु के संबंध में बता सकती है। अगर कबीर के संबंध में किसी ने किताब लिखी है तो वह कबीर के संबंध में बताती है कि कबीर ऐसे गुरु थे। दुबारा कबीर थोड़े ही होंगे। जो लक्षण हैं, वे कबीर के हैं, गुरु के नहीं हैं। अगर तुम कबीरपंथी हो और कबीर की किताब से भर गए हो, तो तुम वह कबीर के गुण किसी गुरु में खोजोगे। वह गुरु तुम्हें अब कभी नहीं मिलने वाला। क्योंकि कबीर दुबारा पैदा नहीं होंगे।
दिगंबर जैन है, वह तब तक गुरु न मानेगा किसी को, जब तक वह नग्न न खड़ा हो। अब वह महावीर की मौज थी कि वे नग्न खड़े हुए। वह मेरी मौज नहीं है। अब वह महावीर को खोज रहा है, जो अब नहीं हैं। और बड़े मजे की बात है--जब महावीर थे, तब हो सकता है यही आदमी दिक्कत में था, क्योंकि वे नंगे खड़े थे। उस समय जो किताबें प्रचलित थीं, उनमें ये लक्षण नहीं था। खुद महावीर के पहले के जो तीर्थंकर हैं, वे भी वस्त्रधारी थे। जैन तीर्थंकर भी वस्त्रधारी थे। तो खुद जैन भी महावीर को स्वीकार करने को राजी नहीं था; क्योंकि नंगा खड़ा

होना, यह बात बेहूदी है। तब जो शास्त्र था, वह कहता था कि गुरु नग्न तो होगा ही नहीं, क्योंकि यह तो अशोभन है। तो महावीर को इनकार किया। जब महावीर मर गए और शास्त्र बन गए, तब वह महावीर को ढो रहा है। अब अगर पार्श्वनाथ मिल जाएं कपड़े पहने हुए, तो कहेगा कि यह आदमी कैसे चल सकता है गुरु की तरह! ध्यान रहे, जो भी शास्त्र हैं, वे किसी एक गुरु के संबंध में कह रहे हैं और वह गुरु दुबारा नहीं होता। गुरु तो अद्वितीय हैं, बेजोड़ हैं। इसलिए तुम्हारी आंखें अगर शास्त्रों से भरी हैं, तो तुम जीवित गुरु को कभी न पहचान पाओगे; क्योंकि शास्त्र उसकी खबर दे रहे हैं, जो हो चुका और अब कभी न होगा। जो लोग महावीर को मानते हैं, वे बुद्ध के पास जाएंगे, इनकार कर देंगे। वे कहेंगे, होंगे महात्मा, होंगे; लेकिन भगवान नहीं हैं, क्योंकि वस्त्र पहने हुए हैं।
एक जैन सज्जन हैं। उन्होंने एक किताब लिखी है। भले आदमी हैं; लेकिन भले होने से कुछ समझ तो होती नहीं। बुरे नासमझ होते हैं; भले भी नासमझ होते हैं। यहां नासमझी इतनी गहरी है कि भलेपन से कुछ फर्क नहीं पड़ता। भले आदमी हैं, इसलिए एक तरह का सदभाव रखते हैं सभी धर्मों के प्रति। तो उन्होंने एक किताब लिखी है--भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। लेखक हैं। पूना में लोग उन्हें जानते हैं। वे ही मुझे पहली दफा पूना लेकर आए थे। गांधी के पुराने भक्त हैं। तो गांधी ने उनको भाव चढ़ा दिया कि सभी एक हैं। तो किताब लिख दी, लेकिन भीतर तो जैन बुद्धि है। मैं उनके घर मेहमान था तो मैंने पूछा, और तो मेरी समझ में आया, लेकिन इतना फर्क काहे रखा कि भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध? तो बोले, ऐसा है कि भगवान तो महावीर ही हैं। ज्यादा से ज्यादा इतना हम स्वीकार कर सकते हैं कि बुद्ध महात्मा हैं, लेकिन भगवान नहीं। क्यों? सवस्त्र हैं; भगवान तो निर्वस्त्र होते हैं!
बस तब दिक्कत खड़ी हो जाती है। और ऐसा नहीं कि यह कोई जैन के साथ दिक्कत है, सभी के साथ वही दिक्कत खड़ी होगी। इसलिए जैन कभी राम को भगवान नहीं मान सकता; सीता के साथ खड़े हैं, यह बात अड़चन की है; कि जैनी यह सोच ही नहीं सकता कि भगवान होकर और भैरवी क्यों साथ है! भगवान तो सब छोड़ देगा। जो मुक्त ही हो गया, तो अब यह स्त्री क्यों साथ है? इसलिए सीता जैसी बहुमूल्य स्त्री भी जैन को खो जाती है, उसकी बुद्धि में नहीं पकड़ती।
कृष्ण को तो वे नरक में डाल देते हैं; क्योंकि एक नहीं, सोलह हजार स्त्रियां! तो इनसे ज्यादा योग्य और कोई है नहीं नरक के। तो जैनियों ने कृष्ण को नरक में डाल दिया है। डर के कारण, क्योंकि जाति के सब वणिक हैं, तो भयभीत भी हैं। हिंदुओं से भय भी खाते हैं कि कोई झगड़ा-झांसा खड़ा न हो जाए। और शायद इसीलिए अहिंसा में मानते हैं।
अक्सर भीरु लोग अहिंसा में मानते हैं; क्योंकि हिंसा में मानने के लिए थोड़ी तो लड़ाई-झगड़े की हिम्मत चाहिए। न मारेंगे, न मारे जाएंगे। इसलिए सिद्धांत ठीक है कि किसी को मत मारो, जीने दो और जीओ। मगर जीने की इच्छा है; वह कोई दूसरे से प्रयोजन नहीं है।
तो डर के मारे एक दूसरी तरकीब भी लगाई है। वह यह कि कृष्ण को नरक में डाल दिया और फिर भय के कारण--क्योंकि नरक में तो डालना जरूरी है, सिद्धांत में कहीं आते नहीं--मगर भय के कारण कि हिंदुओं के बीच जीना है, तो यह भी स्वीकार कर लिया है कि अगले कल्प में वे पहले तीर्थंकर होंगे। समझौता हो गया। यह बनिया की जो वृत्ति है, गणित। अब हिंदू नाराज भी नहीं हो सकते कि भाई कोई हर्जा नहीं। अपना सिद्धांत भी सम्हल गया, झगड़े से भी बच गए।
गुरु को अगर तुमने शास्त्र से खोजा तो तुम कभी न खोज पाओगे; क्योंकि
जब तक शास्त्र लिखे जाते हैं, तब तक जिसके लिए लिखे गए हैं, वह तिरोहित हो जाता है। और हर गुरु पृथक, भिन्न, अपने ही ढंग का है। उस जैसा तुम दूसरा नहीं खोज सकते। दोबारा महावीर नहीं खोजे जा सकते, न कृष्ण खोजे जा सकते हैं, न बुद्ध खोजे जा सकते हैं। और तुम उन्हीं को खोज रहे हो, इसलिए भटक रहे हो। और जब वे थे, तब तुम किसी और को खोज रहे थे। तुम चूकते ही चले जाते हो। गुरु को खोजना हो तो शास्त्र को अलग रख देना। और गुरु को खोजना हो तो किसी व्यक्ति की सन्निधि को पाने की कोशिश करना; उसके सत्संग में बैठना। और अपने सिद्धांत लेकर मत जाना; अपने नापने-जोखने के इंतजाम लेकर मत जाना।
सीधे हृदय को हृदय से मिलने देना, बुद्धि को बीच में मत आने देना। अगर

तुमने बुद्धि बीच में आने दी, तो हृदय का मिलन न होगा और तुम गुरु को न पहचान पाओगे। गुरु की पहचान आती है हृदय से, बुद्धि से नहीं। और जब भी तुम बुद्धि को हटा कर हृदय से देखोगे, तत्क्षण कोई चीज घट जाती है। अगर तुम्हारा मेल हो सकता है इस गुरु से तो तत्क्षण मेल हो जाएगा, एक क्षण की भी देरी न लगेगी। तुम पाओगे कि तुम उसमें पिघल गए, वह तुममें पिघल गया। उस दिन से तुम उसके अभिन्न अंग हो गए। उस दिन से तुम उसकी छाया हो गए; उसके पीछे चल सकते हो। हृदय से खोजा जाता है गुरु। और गुरु के बिना कोई उपाय नहीं है।
"शरीर हवि है।"
और ध्यान रखना, यह जिसे तुम शरीर कहते हो, जिसे तुमने समझ रखा है कि मैं सब कुछ इस शरीर में ही हूं, यह शरीर हवि से ज्यादा नहीं है। जैसे यज्ञ में आहुति डालनी पड़ती है, ऐसे ही ध्यान में तुम्हें धीरे-धीरे इस शरीर को खो देना होगा। बाकी आहुतियां व्यर्थ हैं। कोई घी डालने से, गेहूं डालने से कुछ हवि नहीं होती। अपने को ही डालना पड़ेगा, तभी तुम्हारी जीवन-अग्नि जलेगी। इस पूरे शरीर को दांव पर लगा देना। इसे बचाने की कोशिश की तुमने अगर, तो यज्ञ जलेगा ही नहीं, अग्नि पैदा ही नहीं होगी। तुम अपने पूरे शरीर को दांव पर लगा देना।
"शरीर हवि है। ज्ञान ही अन्न है।"
और तुम अभी तो भोजन से जीते हो। भोजन शरीर में जाता है; शरीर के लिए जरूरी है। बोध, ज्ञान, ध्यान, अवेयरनेस--वह भोजन है आत्मा का। अभी तक तुमने शरीर को ही खिलाया-पिलाया है; आत्मा तुम्हारी भूखी मर रही है। आत्मा तुम्हारी अनशन पर पड़ी है जन्मों से; शरीर परिपुष्ट हो रहा है, आत्मा भूखी मर रही है।
ज्ञान अन्न है आत्मा का। तो जितने तुम जाग्रत हो सको, ज्ञानपूर्ण हो सको--ज्ञान का मतलब पांडित्य नहीं है, ज्ञान का अर्थ है होश--जितने तुम जाग्रत हो सको, तुरीयावस्था, तुरीय जितना तुममें सघन हो सके, तुम जितने होशपूर्ण और विवेकपूर्ण हो सको, उतनी ही तुम्हारी आत्मा में जीवनधारा दौड़ेगी।
तुम्हारी आत्मा करीब-करीब सूख गई है। उसको तुमने भोजन ही नहीं दिया। तुम भूल ही गए हो कि उसको भोजन की कोई जरूरत है। शरीर तुम्हारा भोजन कर रहा है, आत्मा उपवासी है। इसीलिए अनेक धर्मों ने उपवास का उपयोग किया। शरीर को उपवास करवाओ थोड़े दिन और आत्मा को भोजन दो। विपरीत करो प्रक्रिया को। लेकिन जरूरी नहीं है कि तुम शरीर को भूखा मारो। शरीर को उसकी जरूरत दो; लेकिन तुम्हारे जीवन की सारी चेष्टा शरीर को ही भरने में पूरी न हो जाए। तुम्हारे जीवन की चेष्टा का बड़ा अंश ज्ञान को जन्माने में लगे; क्योंकि वही तुम्हारी आत्मा का भोजन है।
"ज्ञान ही अन्न है। विद्या के संहार से स्वप्न पैदा होते हैं।"
और अगर यह ज्ञान तुम्हारे भीतर न गया और तुम्हारे भीतर की ज्योति को ईंधन न मिला, तो फिर तुम्हारे जीवन में स्वप्न पैदा होते हैं। तब तुम्हारे जीवन में वासनाएं पैदा होती हैं। तब तुम्हारा जीवन अंधेरे में भटकता है। तब तुम कल्पना में जीते हो। तब तुम तृष्णा में जीते हो। तब बस तुम सोचते ही रहते हो।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि इस वर्ष कहां जाने के इरादे हैं? क्योंकि अक्सर वे यात्रा पर जाते हैं। तो उन्होंने कहा कि मैं तीन वर्ष में एक ही बार यात्रा पर जाता हूं। मैंने पूछा, तो बाकी दो वर्ष क्या करते हैं? तो उन्होंने कहा, एक वर्ष तो पिछली यात्रा जो की, उसको सोचने में, उसका रस लेने में बिताते हैं। और एक वर्ष अगली यात्रा की योजना बनाने में बिताते हैं।
फिर भी मुल्ला नसरुद्दीन कम से कम तीन साल में एक बार यात्रा पर जाते हैं, तुम एक बार भी नहीं गए। तुम्हारा आधा जीवन अतीत के सोचने में जाता है और आधा भविष्य के सोचने में; यात्रा तो कभी शुरू ही नहीं होती। या तो तुम स्मृति में भटकते रहते हो, जो कि स्वप्न है मरा हुआ; और या तुम कल्पना में भटकते रहते हो, जो कि स्वप्न है भविष्य का, जो अभी जन्मा नहीं। तुम दोनों

में कटे हो; और मध्य में है वर्तमान, वहां है जीवन; उससे तुम वंचित रह जाते हो।
ज्ञान तुम्हें जगाएगा--अभी और यहीं, इस क्षण के प्रति। ज्ञान तुम्हें वर्तमान में लाएगा। अतीत खो जाएगा; खो ही गया है; तुम व्यर्थ ही उस राख को ढो रहे हो। भविष्य अभी आया नहीं; तुम उसे ला भी नहीं सकते। जब आएगा, तब आएगा। वर्तमान अभी मौजूद है। जो मौजूद है, वही सत्य है। स्वप्न का अर्थ हैः जो मौजूद नहीं है, उसमें भटकना।
यह सूत्र ध्यान रखनाः "विद्या के संहार से स्वप्न पैदा होते हैं।"
जब तुम्हारे भीतर ज्ञान नहीं होता, आत्मा जाग्रत नहीं होती, तो तुम सपनों में खोते हो। अतीत-भविष्य सब कुछ हो जाते हैं, वर्तमान ना-कुछ। और वर्तमान ही सब कुछ है। जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे अतीत कम, भविष्य कम, वर्तमान ज्यादा होगा। जिस दिन तुम पूरे जागोगे, उस दिन सिर्फ वर्तमान रह जाता है। उस दिन न कोई भविष्य है, न कोई अतीत है। और जब अतीत नहीं, भविष्य नहीं, तो चित्त के सारे रोग, सारी पुनरुक्तियां, सारे वर्तुल नष्ट हो जाते हैं। तब तुम यहां हो--शुद्ध, निर्मल, निर्दोष, ताजे; जैसे सुबह की ओस। तब तुम यहां हो--जैसे कमल का फूल। इस क्षण में अगर तुम पूरे के पूरे मौजूद हो जाओ, तो तुम परमात्मा हो।
इस क्षण में तुम बिल्कुल मौजूद नहीं हो; इसलिए तुम शरीर हो, मन हो, लेकिन आत्मा नहीं। ध्यान सिर्फ इसी बात की चेष्टा है कि तुम्हें खींच कर अतीत से यहां ले आए, भविष्य से खींच कर यहां ले आए। तुम न तो आगे जाओ, न पीछे जाओ; तुम यहीं खड़े हो जाओ। यहीं, अभी, इसी क्षण में परिपूर्ण रूप से शांत, सजग होकर खड़े हो जाना ध्यान है। उससे ही विद्या का जन्म है। उससे ही तुम्हें जीवन का चरम उत्कर्ष और जीवन की चरम समाधि और आनंद उपलब्ध होगा। उसे जिसने खोया, सब खोया। उसे जो पा लेता है, वह सब पा लेता है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
पांचवां प्रवचन

संसार के सम्मोहन और सत्य का आलोक

आत्मा चित्तम्।
कलादीनां तत्वानामविवेको माया।
मोहावरणात सिद्धिः।
मोहजयादनत्ताभोगात्सहज विद्याजयः।
जाग्रद द्वितीय करः।

आत्मा चित्त है।
कला आदि तत्वों का अविवेक ही माया है।
मोह आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता है।
स्थायी रूप से मोह-जय होने पर सहज विद्या फलित होती है।
ऐसे जाग्रत योगी को, सारा जगत मेरी ही किरणों का प्रस्फुरण है, ऐसा बोध होता है।

आत्मा चित्तम्--आत्मा चित्त है।
यह सूत्र अति महत्वपूर्ण है।
सागर में लहर दिखाई पड़ती है; लहर भी सागर है। लहर कितनी ही विक्षुब्ध हो, लहर कितनी ही सतह पर हो, उसके भीतर भी अनंत सागर है। क्षुद्र भी विराट को अपने में लिए है। कण में भी परमात्मा छिपा है। तुम कितने ही पागल हो गए हो, तुम्हारा मन कितना ही उद्विग्न हो; कितने ही रोग, कितनी ही व्याधियों ने तुम्हें घेरा हो--फिर भी तुम परमात्मा हो। इससे कोई भेद नहीं पड़ता कि तुम सोए हो, बेहोश हो। बेहोशी में भी परमात्मा ही तुम्हारे भीतर बेहोश है। सोए हुए भी परमात्मा ही तुम्हारे भीतर सो रहा है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि तुमने बहुत पाप किए हैं; बहुत पापों का विचार किया है। वे विचार भी परमात्मा ही तुम्हारे भीतर कर रहा है। वे पाप भी परमात्मा के माध्यम से ही हुए हैं।
आत्मा चित्तम का अर्थ है कि तुम्हारी चित्त तुम्हारी आत्मा की ही एक परिणति है।
यह बहुत महत्वपूर्ण है समझ लेना। अन्यथा तुम चित्त से लड़ना शुरू कर दोगे। और जो भी चित्त से लड़ेगा वह हार जाएगा। विजय का मार्ग हैः चित्त को स्वीकार कर लेना कि वह भी परमात्मा का है। संघर्ष नहीं, व्यर्थ की, द्वंद्व की, द्वैत की स्थिति नहीं, लहर भी सागर है--इस प्रतीति के साथ ही मन की विकृतियां क्षीण होनी शुरू हो जाती हैं। जिस दिन भी तुम यह समझ पाओगे कि क्षुद्र में विराट छिपा है, क्षुद्र की क्षुद्रता खोनी शुरू हो जाएगी। उसकी सीमा तुम्हारी मानी हुई है। छोटे से कण की भी कोई सीमा नहीं है। वह भी असीम का ही भाग है। सीमा तुम्हारी आंखों के कारण दिखाई पड़ती है। जैसे ही तुम देख पाओगे कि सीमा में भी असीम छिपा है, सीमा खो जाएगी।
यह जीवन की गहनतम प्रतीति है कि जिस दिन भी व्यक्ति अपने चित्त में भी परमात्मा को देखने लगता है; अपनी बुराई में भी उसी को देखता है; अपनी भटकन में भी उसके ही चरण-चिन्हों को पाता है; उसी दिन से भटकन बंद हो जाती है। भटकन का अर्थ है कि तुमने अपने को परमात्मा से अलग माना है। उस अलगपन में ही तुम्हारा सारा पाप है, तुम्हारी सारी विकृति है। तुमने अपने को भिन्न माना है, वही तुम्हारा अहंकार है।
और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अहंकार के संबंध में पापी और पुण्यात्मा में रत्ती भर भी भेद नहीं होता। पापी भी अहंकार से भरा होता है उतना ही, जितना जिसे हम पुण्यात्मा कहते हैं वह अहंकार से भरा होता है। उनके कृत्य होंगे अलग; लेकिन उनकी प्रतीति एक ही है। दोनों ही अपने को भिन्न मान रहे हैं। एक अपने को बुरा मान रहा है, एक अपने को भला मान रहा है; लेकिन दोनों अपने को भिन्न मान रहे हैं। और जब तक तुम भिन्न मानोगे, तब तक

तुम भिन्न बने रहोगे। भिन्न तुम हो नहीं; तुम्हारी मान्यता ने ही तुम्हें संकीर्ण किया है। तुम्हारी धारणा ने ही तुम्हें बांधा है। तुम अपने ही ख्याल में, अपने ही ख्याल के कारागृह में कैद हो। अन्यथा चारों तरफ खुला आकाश है और कहीं कोई दीवार नहीं है। किसी ने तुम्हें रोका नहीं, किसी ने कोई बाधा खड़ी नहीं की है। तुम्हारी अस्मिता कैसे गल जाए?
आत्मा चित्तम्--इसका अर्थ है कि तुम तुम नहीं हो; तुम परमात्मा हो। तुम बड़े विराट से जुड़े हो। तुम छोटी लहर नहीं, पूरे सागर हो। इस विराट की प्रतीति से तुम्हारा अहंकार खो जाएगा। और जहां अहंकार नहीं, वहां पाप का कोई उपाय नहीं। एक ही पाप है कि मैं पृथक हूं। और यह पृथकता का भाव, जिसे हम साधु कहते हैं, उसमें भी बना रहता है।
मैंने सुना है, एक हठयोगी मरा। स्वर्ग पहुंचा। द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुला और पहरेदार ने कहा, स्वागत है। भीतर आएं! हठयोगी ठिठक गया। उसने कहा, अगर ऐसा स्वर्ग में सभी का स्वागत हो रहा है--क्योंकि न तुमने पूछा पता-ठिकाना; न तुमने पूछा कृत्य; न तुमने पूछा कि कौन हो; क्या किया, पुण्य कि पाप; कुछ भी पूछा नहीं और सीधा अगर इस तरह स्वागत है ऐरे गैरे नत्थू खैरे का, तो यह स्वर्ग मेरे लिए नहीं। न आरक्षण किया, न कोई रिजर्वेशन, न कोई पूछताछ; सीधा स्वागत! तो फिर यह मेरी धारणा का स्वर्ग नहीं।
यह अहंकार पुण्य से भरा है, पाप से नहीं। साधना की है इसने, बड़ी सिद्धियां पाई होंगी; लेकिन सब सिद्धियां व्यर्थ हो गईं। सभी सिद्धियों ने अहंकार को ही भरा है--यह असिद्धि हो गई।
बर्नार्ड शा को नोबल प्राइज मिली। तो एक छोटा सा, लेकिन बड़ा कीमती क्लब है यूरोप में। वह केवल सौ व्यक्तियों को सदस्यता देता है पूरी पृथ्वी पर; चुने हुए लोगों का है, जिनकी बड़ी महिमा है, नोबल पुरस्कार जिन्होंने पाए हैं या कोई और बड़ी जिनकी उपलब्धि है--बड़े चित्रकार, मूर्तिकार, साहित्यकार; पर केवल सौ, सौ से ज्यादा संख्या उस क्लब की नहीं होती। जब एक सदस्य मरता है, तभी कोई नया व्यक्ति प्रवेश करता है। लोग जीवन भर प्रतीक्षा करते हैं कि उस क्लब की सदस्यता मिल जाए।
जब बर्नार्ड शा को नोबल प्राइज मिली, तो उस क्लब की सदस्यता का निमंत्रण उसके पास आया। और क्लब ने कहा, हम गौरवान्वित होंगे तुम्हें अपना सदस्य बना कर। बर्नार्ड शा ने उत्तर में लिखा, जो क्लब मुझे सदस्य बना कर गौरवान्वित होता है, वह मेरे योग्य नहीं। वह मुझसे कुछ नीचा है। मैं उस क्लब का सदस्य बनना चाहूंगा, जो मुझे सदस्य बनाने को राजी न हो। अहंकार हमेशा दुर्गम को खोजता है, कठिन को खोजता है; और जीवन बिल्कुल सरल है। इसलिए अहंकार जीवन से वंचित रह जाता है। और परमात्मा से सरल कुछ भी नहीं है। इसलिए अहंकार उस द्वार पर जाता ही नहीं। वह द्वार खुला ही हुआ है। वहां स्वागत है ही, बिना पूछे कि तुम कौन हो। अगर परमात्मा के द्वार पर भी पूछा जाता हो कि तुम कौन हो, तब होगा स्वागत, तो वह द्वार सांसारिक हो गया। तुम उस द्वार पर ही खड़े हो। अगर तुमने पीठ की है तो अपने ही कारण। द्वार ने तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया है। तुम अगर आंख बंद किए हो और द्वार तुम्हें नहीं दिखता तो अपने ही कारण। अन्यथा द्वार सदा खुला है और निमंत्रण सदा तुम्हारे लिए है। "स्वागत" सदा वहां लिखा है।
आत्मा चित्तम्--इसका अर्थ है कि तुम अपने को पृथक मत मानना, कितने ही बुरे तुम हो।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम अपनी बुराई किए चले जाना। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम बुरे बने रहना। तुम बने ही न रह सकोगे।
मनस्विद कहते हैं कि व्यक्ति वैसा ही हो जाता है, जैसा वह स्वयं को मानता है। मान्यता ही धीरे-धीरे जीवन बन जाती है। मनस्विद कहते हैं कि अगर आदमी बुरा भी हो तो भी उसे बुरा मत कहना। क्योंकि बुरा कहने से, बार-बार पुनरुक्त करने से--कि तुम बुरे हो, तुम बुरे हो--यह मंत्र बन जाता है। और अगर सब तरफ सभी लोग दोहराते हों कि तुम बुरे हो, तो वह व्यक्ति भी भीतर दोहराने लगता है कि मैं बुरा हूं। न केवल वह दोहराता है, बल्कि जो सबकी अपेक्षा है, उसको सिद्ध करने की कोशिश भी करता है। धीरे-धीरे बुराई में आबद्ध हो जाता है।

शायद धर्म के जगत में खोज करने वाले लोग इस सत्य को बहुत पहले पहचान लिए थे। उन्होंने तुम्हें जीवन की परम सत्ता को मंत्र बनाने को कहा हैः आत्मा चित्तम्। तुम परमात्मा हो। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा मन है। यह बड़ी से बड़ी बात है, जो तुम्हारे संबंध में कही जा सकती है। और अगर यह तुम्हारा मंत्र बन जाए; और यह तुम्हारे जीवन में ओत-प्रोत हो जाए; तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाए इसकी झंकार, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि जो तुमने सोचा, वह तुम होने लगे हो; जो तुमने धुना भीतर, वह तुम्हारे जीवन में आना शुरू हो गया है।
धर्म की शुरुआत--तुम नहीं हो, परमात्मा है--इस सूत्र से होती है। माना
कि तुम सोए हो; माना कि तुम बहुत अर्थों में बुरे हो; माना कि बहुत भूल-चूक तुमने की है; लेकिन इससे तुम्हारे स्वभाव में कोई भी फर्क नहीं पड़ता। निर्मलता तुम्हारा स्वभाव है। तुम कितना ही बुरा किए हो, इस बात का स्मरण आ जाए कि मैं परमात्मा हूं, सब बुराई कट जाएगी।
तुम्हें एक-एक बुराई को अलग-अलग काटना हो, तो तुम वह भी कर सकते हो; तब जन्मों-जन्मों तक बुराई न कटेगी। क्योंकि अनंत है बुराई, और एक-एक बुराई को जो काटने चलेगा, वह कभी भी काट न पाएगा। क्योंकि जब तुम एक बुराई काटते हो, तब तुम दस बुराइयां पैदा भी कर रहे हो। एक बुराई काटते हो, निन्यानबे बुराइयां तो तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। वे तुम्हारी एक भलाई को भी रंग देंगी, उसे भी बुरा कर देंगी।
इसलिए तुम पुण्य भी करते हो, तो वह भी पाप जैसा हो जाता है। तुम अमृत
भी छूते हो, तो जहर हो जाता है; क्योंकि शेष सब बुराइयां उस पर टूट पड़ती हैं। तुम मंदिर भी बनाओ, तो भी उससे विनम्रता नहीं आती; उससे अहंकार भरता है। और अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं! व्यर्थ से भी अहंकार भरता है। मुल्ला नसरुद्दीन के पास एक कुत्ता था। न उस कुत्ते की कोई नसल का ठिकाना था; न कोई ढंग-डौल; देखने में बदशक्ल, कमजोर; हर समय डरा हुआ, भयभीत; पैर झुके हुए, शरीर दुर्बल। लेकिन नसरुद्दीन उसकी भी तारीफ हांका करता था।
मैंने उससे पूछा, कुछ इस कुत्ते के संबंध में बताओ भी।
नसरुद्दीन ने कहा... नाम उसने रखा था उसका एडोल्फ हिटलर। नसरुद्दीन ने कहा, हिटलर की नसल का भला कोई ठीक-ठीक पता न हो; लेकिन बड़ा कीमती जानवर है। और एक अजनबी कदम नहीं रख सकता घर के आस-पास, बिना हमें खबर हुए। हिटलर फौरन खबर देता है।
मैंने पूछा, क्या करता है तुम्हारा हिटलर? क्योंकि उसे देख कर संदेह होता था कि वह कुछ कर सकेगा। भौंकता है, चिल्लाता है, चीखता है, काटता है, क्या करता है? नसरुद्दीन ने कहा, ये नहीं! जब भी कोई अजनबी आता है, हिटलर फौरन हमारे बिस्तर के नीचे आकर छिप जाता है। ऐसा कभी नहीं होता कि अजनबी आ जाए और हमें पता न हो। मगर उसका भी गुण-गौरव है।
तुम्हारा अहंकार मुल्ला नसरुद्दीन के हिटलर जैसा है। न तो नसल का कोई पता। तुम्हें पता है तुम्हारा अहंकार कहां से पैदा हुआ? जो है ही नहीं, वह पैदा कैसे होगा? वह भ्रांति है। उसकी नसल का कोई पता नहीं हो सकता।
तुम तो परमात्मा से पैदा हुए हो; तुम्हारा अहंकार कहां से पैदा हुआ? तुमने ही निर्मित कर लिया है। और कभी तुमने अपने अहंकार को गौर से देखा कि भला नाम तुम एडोल्फ हिटलर रख लिए हो--सभी सोचते हैं--लेकिन उसके पैर बिल्कुल झुके हैं, दीन-हीन!
बड़े से बड़ा अहंकार भी दीन-हीन होता है। क्यों? क्योंकि बड़े से बड़ा अहंकार भी नपुंसक होता है। उसमें कोई ऊर्जा तो होती नहीं; ऊर्जा तो आत्मा की है। ऊर्जा का स्रोत अलग है। इसलिए अहंकार को चौबीस घंटे सम्हालना पड़ता है। वह अपने पैर पर खड़ा भी नहीं रह सकता; उसे और पैर हमें उधार देने पड़ते हैं। कभी पद से हम सहारा देते हैं; कभी धन से सहारा देते हैं; कभी पुण्य से सहारा देते हैं; कुछ न बने तो पाप से सहारा देते हैं।
कारागृह में जाकर देखो! वहां लोग अपने पापों की झूठी चर्चा करते हैं,
जो उन्होंने कभी किए ही नहीं। जिसने एक आदमी को मारा है, वह कहता है कि मैंने सैकड़ों का सफाया कर दिया। क्योंकि कारागृह में अहंकार के बड़े होने का वही उपाय है। छोटे-मोटे कैदी, छोटे-मोटे आदमी वहां बड़े कैदी हैं,

जिन्होंने काफी उपद्रव किए हैं। जिन पर एकाध धारा में मुकदमा चला है, उनकी कोई कीमत है! जिन पर दस-पच्चीस धाराएं लगी हैं; जिन पर सौ, दो सौ मुकदमे चल रहे हैं; जो रोज अदालत में हाजिर होते हैं--आज इस मुकदमे के लिए, कल उस मुकदमे के लिए--कारागृह में वे ही दादा गुरु हैं। वहां आदमी झूठे पापों की भी बात करता है, जो उसने कभी नहीं किए।
पुण्य से भी, पाप से भी; धन से, पद से, हर चीज से अहंकार को तुम सहारा देते हो। तब भी वह खड़ा नहीं रह पाता; मौत उसे गिरा देती है। क्योंकि जो नहीं है, मौत उसी को मिटाएगी; जो है, उसके मिटने का कोई भी उपाय नहीं। तुम तो बचोगे। लेकिन ध्यान रखना--जब मैं कहता हूं तुम बचोगे, तो मैं उस तुम की बात कर रहा हूं जिसका तुम्हें कोई पता ही नहीं है। जिसे तुम समझते हो तुम्हारा होना, वह तो नहीं बचेगा; वह तुम्हारा अहंकार मात्र है। तुम्हारा नाम, तुम्हारा रूप, तुम्हारा धन, तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारी योग्यता, तुमने जो कमाया, वह कुछ भी न बचेगा। उसको छोड़ कर भी तुम अगर कुछ हो; अगर तुम्हें थोड़ी सी भी संधि-रेखा उसकी मिलनी शुरू हो गई, जो तुम्हारी योग्यता से बाहर है; जो तुमने कमाया नहीं, जिसे तुम लेकर ही पैदा हुए थे; जो पैदा होने के पहले भी तुम्हारे साथ था--वही केवल मृत्यु के बाद तुम्हारे साथ रहेगा।
"आत्मा चित्तम्।"
वही आत्मा खोजने जैसी है। तुम्हारे चित्त में भी उसकी किरण है; अन्यथा चित्त भी न चल सकेगा। पाप भी करोगे तो कौन करेगा? करने के लिए ऊर्जा चाहिए। वह ऊर्जा उसी से मिलती है। तुम उस ऊर्जा का दुरुपयोग कर रहे हो। लेकिन दुरुपयोग को तुम सदुपयोग में न बदल सकोगे; क्योंकि दुरुपयोग का मूल कारण और जड़ अहंकार में है।
एक ही पाप है और वह है स्वयं को अस्तित्व से पृथक समझना; फिर सभी पाप उसके पीछे छाया की तरह चले आते हैं। एक ही पुण्य है, अस्तित्व के साथ स्वयं को एक समझ लेना। लहर सागर के साथ एक हो जाए, सभी पुण्य उसके पीछे अपने आप चले आते हैं।
"आत्मा चित्त है। कला आदि तत्वों का अविवेक ही माया है।"
यह माया क्या है? फिर इस चित्त पर अंधकार क्यों है, अगर आत्मा ही चित्त है? तो कला आदि तत्वों का अविवेक! तुम्हें पता नहीं कि कौन तुम्हारे भीतर कर्ता है; कौन है असली कलाकार भीतर तुम्हारे; कौन है मौलिक तत्व, उसका तुम्हें पता नहीं। और जिसे तुम समझ रहे हो कि यह कर रहा है, वह है ही नहीं। ना-कुछ को पकड़ कर तुम जी रहे हो, इसीलिए परेशान हो। पूरी जिंदगी दौड़-धूप कर भी परेशानी नहीं मिटती, सिर्फ बढ़ती है। और पूरी जिंदगी श्रम करके भी आनंद की एक बूंद भी नहीं मिलती; सिर्फ दुख के पहाड़ बड़े हो जाते हैं। फिर भी आदमी आखिरी दम तक व्यर्थ के पीछे दौड़ता रहता है। आखिर व्यर्थ में इतना रस क्यों है? समझने की कोशिश करें। व्यर्थ की एक खूबी है।
एक आदमी ने एक नया बंगला खरीदा। बगीचा लगाया। फूल के बीज डाले। पौधे
भी आने शुरू हुए; लेकिन साथ-साथ घास-पात भी उगा। वह थोड़ा चिंतित हुआ। उसने पड़ोसी मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि कैसे पहचाना जाए कि क्या घास-पात है और क्या असली पौधा है? नसरुद्दीन ने कहा, सीधी तरकीब है! दोनों को उखाड़ लो। जो फिर से उग आए, वह घास-पात है।
व्यर्थ की एक खूबी है--उखाड़ो, उखाड़ने से कुछ नहीं मिटता। उखाड़ने में सार्थक तो खो जाएगा, व्यर्थ फिर उग आएगा। सार्थक को बोओ, तब भी पक्का नहीं कि फसल काट पाओगे; क्योंकि हजार बाधाएं हैं। व्यर्थ को बोओ ही मत, तो भी फसल काटोगे; उखाड़-उखाड़ कर फेंको, तो और-और उग आएगा। व्यर्थ को बनाने में श्रम नहीं करना पड़ता; सार्थक को बनाने में बड़ा श्रम करना पड़ता है। इसीलिए तुमने व्यर्थ को चुना है। वह अपने से उग रहा है।
किसी को चोर होने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती; चोरी घास-पात की तरह उगती है। किसी को कामवासना से भरने के लिए कोई श्रम करना पड़ता है? कोई प्रार्थना, कोई योग, कोई साधना? वह घास-पात की तरह उगता है। क्रोध करने के लिए कहीं सीखने जाना पड़ता है किसी विद्यापीठ में? नहीं, वह घास-पात की तरह है।

ध्यान सीखना हो तो कठिनाई शुरू होती है। प्रेम सीखना हो तो बड़ी कठिनाई शुरू होती है। मोह बढ़ता है अपने आप घास-पात की तरह। प्रेम श्रम मांगता है। और प्रेम को अगर लाना हो तो घास-पात को प्रतिक्षण उखाड़ कर फेंकना पड़े; नहीं तो घास-पात उस सबको खा जाएगा, जो सार्थक है; उस सब को ढांक लेगा, छिपा लेगा।
व्यर्थ की एक खूबी है कि वह तुमसे श्रम नहीं मांगता; तुम आलसी बने रहो,
वह अपने आप बढ़ता है। वह तुम्हें मृत्यु के आखिरी क्षण तक पकड़े रहेगा। साधक का अर्थ हैः जिसने सार्थक की खोज शुरू की। सार्थक को पाना यात्रा है--पर्वत की तरफ, ऊंचाई की तरफ। व्यर्थ को पाना लुढ़कने जैसा है; जैसे पत्थर पहाड़ से लुढ़कता हो, वह अपने ही आप चला आता है। गुरुत्वाकर्षण उसे नीचे ले आता है, कुछ करना नहीं पड़ता।
तुमने अब तक जीवन में कुछ नहीं किया है, इसीलिए तुम व्यर्थ हो। तुम कहोगे, नहीं, ऐसी बात नहीं। मैंने धन कमाया। मैं पद-प्रतिष्ठा पर पहुंचा। मैंने बड़ी उपाधियां इकट्ठी की हैं।
फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि वह सब तुमने किया नहीं, वह घास-पात की तरह अपने आप बढ़ा है। और अगर गौर से तुम भीतर विश्लेषण करोगे तो तुम्हें भी दिखाई पड़ जाएगा कि धन कमाने के लिए तुमने कुछ किया नहीं; धन की आकांक्षा घास-पात की तरह तुम्हारे भीतर थी, वह बढ़ गई है। तुम उखाड़ कर भी फेंको, तो भी बढ़ जाती है। तुमने घर बनाने के लिए कुछ किया नहीं; वह वासना तुम्हारे भीतर घास-पात की तरह बढ़ी है। वह मृत्यु के आखिरी क्षण तक तुम्हें पकड़ी रहेगी। साधक का अर्थ हैः जो इस सत्य को समझ जाए कि जो अपने आप बढ़ रहा है, वह व्यर्थ ही होगा; मुझे कुछ बोना पड़ेगा।
मैंने सुना है कि एक महिला एक मनोवैज्ञानिक के पास गई। और उसने कहा कि
अब सहायता की जरूरत है। बहुत दिन टाला, लेकिन अब! अब मुझे कहना ही पड़ेगा; मेरी सहायता करें। उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा, क्या है समस्या? उसने कहा, समस्या मेरी नहीं है, मेरे पति की है। समस्या यह है कि जैसा प्रेम प्रथम में उन्होंने दिखाया था, अब वह धीरे-धीरे खो गया। और जैसी प्रगाढ़ वासना उनमें पहले थी, वह धीरे-धीरे क्षीण हो गई। पहले वे बाढ़ की तरह थे, अब वे एक सूखी नदी की तरह हुए जा रहे हैं। मनोवैज्ञानिक भीतर से तो हंसना चाहा, लेकिन बाहर उसने गंभीरता रखी, व्यावसायिक की गंभीरता, और उसने पूछा, लेकिन आपकी उम्र क्या है? उस महिला ने कहा, बस केवल बहत्तर वर्ष।
और तुम्हारे पति की उम्र?
उसने कहा, बस केवल छियासी वर्ष।
सभी लोग ऐसा सोचते हैं कि बस केवल अस्सी-नब्बे। "केवल" मृत्यु के खिलाफ लगाए हुए हैं--कि अभी कोई उम्र है! अभी तो जैसे शुरुआत है!
और मनोवैज्ञानिक ने कहा कि कब तुम्हें ये लक्षण दिखाई पड़ने शुरू हुए
कि पति की ऊर्जा खो रही है, शक्ति खो रही है, प्रेम वासना कम हो रही है। पत्नी ने कहा, कल रात और आज सुबह फिर।
अंतिम, मरते क्षण तक कचरा ही पकड़े रखता है; क्योंकि उसके लिए कुछ करने
की जरूरत नहीं, वह अपने से उग रहा है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करते हैं, छूट-छूट जाता है;
दो दिन चलता है, फिर बंद हो जाता है।
ऐसा वासना के साथ नहीं होता। ऐसा क्रोध के साथ नहीं होता। तुम कभी भूल
कर भी नहीं छोड़ पाते। उसे तुम पकड़े ही रहते हो। मामला क्या है? ध्यान कर-कर के छूट जाता है; दो दिन करते हैं, फिर भूल जाते हैं। फिर चार-छह महीने में याद आती है। प्रार्थना कर-कर के छूट जाती है। और क्रोध? और लोभ? और काम? और मोह?
एक तथ्य को समझने की कोशिश करो--क्योंकि ध्यान तुम्हें करना पड़ता है, इसलिए छूट-छूट जाता है। वे बीज हैं जो बोने पड़ते हैं; उन्हें सम्हालना पड़ेगा। और यह सब कचरा अपने आप उगता है। जो भी अपने आप चल रहा है, उसे व्यर्थ समझना। और जब तक तुम उसी में जीते रहोगे, तब तक तुम्हें कुछ भी न मिलेगा। तब मौत के समय तुम पाओगे कि तुम खाली हाथ आए और खाली हाथ जा रहे हो। और यह अविवेक ही माया है--यह मूर्च्छा, यह भेद न कर पाना कि क्या सार्थक है, क्या व्यर्थ है।

शंकर ने सार्थक और व्यर्थ के विवेक को ही ज्ञान कहा है। जीवन में यह दिखाई पड़ जाए कि यह सार्थक और यह व्यर्थ। वहां दोनों हैं। वहां घास-पात भी है और फूल के पौधे भी हैं। तुम्हें ही जीवन के अनुभव से तय करना पड़ेगा कि क्या सार्थक है। सार्थक पर दृष्टि आ जाए तो ब्रह्म पर दृष्टि आ गई और व्यर्थ पर दृष्टि लगी रहे तो माया में भटकन है। न तुम्हें पता है कि तुम कौन हो; न तुम्हें पता है कि तुम किस दिशा में जा रहे हो; न तुम्हें पता है कि तुम कहां से आ रहे हो; तुम बस रास्ते के किनारे के कचरे से उलझे हुए हो। राह के किनारे को तुम ने घर बना लिया है। और इतनी चिंताओं से तुम भरे हो उस व्यर्थ के कचरे के कारण, जो तुम्हारे बिना ही उगता रहा है। तुम्हें उस संबंध में चिंतित होने का कोई भी प्रयोजन नहीं।
"अविवेक माया है।"
अविवेक का अर्थ हैः भेद न कर पाना, डिसक्रिमिनेशन का अभाव, यह तय न कर पाना कि क्या हीरा है और क्या पत्थर है। जीवन के जौहरी बनना होगा। जीवन के जौहरी बनने से ही विवेक पैदा होता है। तुम्हारे पास जीवन है। और तुम खोजो। और इसको मैं खोज की कसौटी कहता हूं कि जो अपने आप चल रहा है, उसे तुम व्यर्थ जानना; और जो तुम्हारे चलाने से भी नहीं चलता है, उसे तुम सार्थक जानना। यह कसौटी है। और जिस दिन तुम्हारे जीवन में वह चलने लगे, जिसे तुम चलाना चाहते थे और जिसका चलना मुश्किल था, उस दिन समझना कि फूल आएंगे। और जिस दिन उसका उगना बंद हो जाए, जो अपने आप उगता था, समझना माया समाप्त हुई।
"मोह आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता।"
और यह व्यर्थ इतना महत्वपूर्ण हो गया है जीवन में कि जब तुम सार्थक को
भी साधने जाते हो, तब भी सार्थक नहीं सधता, व्यर्थ ही सधता है।
लोग ध्यान करने आते हैं, तो भी उनकी आकांक्षा को समझने की कोशिश करो
तो बड़ी हैरानी होती है। ध्यान से भी वे व्यर्थ को ही मांगते हैं। मेरे पास वे आते हैं, वे कहते हैं कि ध्यान करना चाहता हूं, क्योंकि शारीरिक बीमारियां हैं। क्या आप आश्वासन देते हैं कि ध्यान करने से वे दूर हो जाएंगी?
अच्छा होता, वे चिकित्सक के पास गए होते। अच्छा होता कि उन्होंने आदमी खोजा होता, जो शरीर की चिकित्सा करता। वे आत्मा के वैद्य के पास भी आते हैं तो भी शरीर के इलाज के लिए ही। वे ध्यान भी करने को तैयार हैं, तो भी ध्यान उनके लिए औषधि से ज्यादा नहीं है; और वह औषधि भी शरीर के लिए। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि बड़ी कठिनाई में जीवन जा रहा है,
धन की असुविधा है; क्या ध्यान करने से सब ठीक हो जाएगा?
यह मोह का आवरण इतना घना है कि तुम अगर अमृत को भी खोजते हो तो जहर के लिए। बड़ी हैरानी की बात है! तुम चाहते तो अमृत हो; लेकिन उससे आत्महत्या करना चाहते हो। और अमृत से कोई आत्महत्या नहीं होती। अमृत पीया कि तुम अमर हो जाओगे। लेकिन तुम अमृत की तलाश में आते हो तो भी तुम्हारा लक्ष्य आत्महत्या का है। धन या देह, संसार का कोई न कोई अंग, वही तुम धर्म से भी पूरा करना चाहते हो।
सुनो लोगों की प्रार्थनाएं, मंदिरों में जाकर वे क्या मांग रहे हैं?
और तुम पाओगे कि वे मंदिर में भी संसार मांग रहे हैं। किसी के बेटे की शादी नहीं हुई है; किसी के बेटे को नौकरी नहीं मिली है; किसी के घर में कलह है। मंदिर में भी तुम संसार को ही मांगने जाते हो? तुम्हारा मंदिर सुपर मार्केट होगा, बड़ी दुकान होगा, जहां ये चीजें भी बिकती हैं, जहां सभी कुछ बिकता है। लेकिन तुम्हें अभी मंदिर की कोई पहचान नहीं। इसलिए तुम्हारे मंदिरों में जो पुजारी बैठे हैं, वे दुकानदार हैं; क्योंकि वहां जो लोग आते हैं, वे संसार के ही ग्राहक हैं। असली मंदिर से तो तुम बचोगे।
मेरे एक मित्र हैं, दांत के डाक्टर हैं। उनके घर मैं मेहमान था। बैठा
था उनके बैठकखाने में एक दिन सुबह, एक छोटा सा बच्चा डरा-डरा भीतर प्रविष्ट हुआ। चारों तरफ उसने चौंक कर देखा। फिर मुझसे पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूं--बड़े फुसफुसा कर--कि डाक्टर साहब भीतर हैं या नहीं? तो मैंने कहा, वे अभी बाहर गए हैं। प्रसन्न हो गया वह बच्चा। उसने कहा, मेरी मां ने

भेजा था दांत दिखाने। क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि वे फिर कब बाहर जाएंगे?
बस, ऐसी तुम्हारी हालत है। अगर मंदिर तुम्हें मिल जाए तो तुम बचोगे। दांत का दर्द तुम सह सकते हो; लेकिन दांत का डाक्टर तुम्हें जो दर्द देगा, वह तुम सहने को तैयार नहीं हो। तुम छोटे बच्चों की भांति हो। तुम संसार की पीड़ा सह सकते हो; लेकिन धर्म की पीड़ा सहने की तुम्हारी तैयारी नहीं है। और निश्चित ही धर्म भी पीड़ा देगा। वह धर्म पीड़ा नहीं देता; वह तुम्हारे संसार के दांत इतने सड़ गए हैं, उनको निकालने में पीड़ा होगी। धर्म पीड़ा नहीं देता; धर्म तो परम आनंद है। लेकिन तुम दुख में ही जीए हो और तुमने दुख ही अर्जित किया है। तुम्हारे सब दांत पीड़ा से भर गए हैं; उनको खींचने में कष्ट होगा। तुम इतने डरते हो उनको खींचे जाने से कि तुम राजी हो उनकी पीड़ा और जहर को झेलने को। उससे तुम विषाक्त हुए जा रहे हो; तुम्हारा सारा जीवन गलित हुआ जा रहा है।
लेकिन तुम इस दुख से परिचित हो। आदमी परिचित दुख को झेलने को राजी होता है; अपरिचित सुख से भी भय लगता है! ये दांत भी तुम्हारे हैं। यह दर्द भी तुम्हारा है। इससे तुम जन्मों-जन्मों से परिचित हो। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि अगर ये दांत निकल जाएं, यह पीड़ा खो जाए, तो तुम्हारे जीवन में पहली दफा आनंद का द्वार खुलेगा।
तुम मंदिर भी जाते हो तो तुम पूछते हो पुजारी से, परमात्मा फिर कब बाहर होंगे, तब मैं आऊं। तुम जाते भी हो, तुम जाना भी नहीं चाहते हो। तुम कैसी चाल अपने साथ खेलते हो, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है।
निरंतर तुम्हें देख कर, तुम्हारी समस्याओं को देख कर, मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि तुम्हारी एक ही मात्र समस्या है कि तुम ठीक से यही नहीं समझ पा रहे हो कि तुम क्या करना चाहते हो। ध्यान करना चाहते हो? यह भी पक्का नहीं है। फिर ध्यान नहीं होता तो तुम परेशान होते हो। लेकिन जो करने का तुम्हारा पक्का ही नहीं है, वह तुम पूरे-पूरे भाव से करोगे नहीं, आधे-आधे भाव से करोगे। और आधे-आधे भाव से जीवन में कुछ भी नहीं होता। व्यर्थ तो बिना भाव के भी चलता है। उसमें तुम्हें कुछ भी लगाने की जरूरत नहीं; उसकी अपनी ही गति है। लेकिन सार्थक में जीवन को डालना पड़ता है, दांव पर लगाना होता है।
यह सूत्र कहता हैः "मोह आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता।"
मोह का आवरण इतना घना है कि अगर तुम धर्म की तरफ भी जाते हो तो तुम चमत्कार खोजते हो वहां भी। वहां भी अगर बुद्ध खड़े हों, तुम न पहचान सकोगे। तुम सत्य साईं बाबा को पहचानोगे। अगर बुद्ध और सत्य साईं बाबा दोनों खड़े हों, तो तुम सत्य साईं बाबा के पास जाओगे, बुद्ध के पास नहीं। क्योंकि बुद्ध ऐसी मूढ़ता न करेंगे कि तुम्हें ताबीज दें, हाथ से राख गिराएं; बुद्ध कोई मदारी नहीं हैं।
लेकिन तुम मदारियों की तलाश में हो। तुम चमत्कार से प्रभावित होते हो। क्योंकि तुम्हारी गहरी आकांक्षा, वासना परमात्मा की नहीं है; तुम्हारी गहरी वासना संसार की है। जहां तुम चमत्कार देखते हो, वहां लगता है कि यहां कोई गुरु है। यहां आशा बंधती है कि वासना पूरी होगी। जो गुरु हाथ से ताबीज निकाल सकता है, वह चाहे तो कोहिनूर भी निकाल सकता है। बस गुरु के चरणों में, सेवा में लग जाने की जरूरत है, आज नहीं कल कोहिनूर भी निकलेगा। क्या फर्क पड़ता है गुरु को! ताबीज निकाला, कोहिनूर भी निकल सकता है।
कोहिनूर की तुम्हारी आकांक्षा है। कोहिनूर के लिए छोटे-छोटे लोग ही नहीं, बड़े से बड़े लोग भी चोर होने को तैयार हैं। जिस आदमी के हाथ से राख गिर सकती है शून्य से, वह चाहे तो तुम्हें अमरत्व प्रदान कर सकता है; बस केवल गुरु-सेवा की जरूरत है!
नहीं, बुद्ध से तुम वंचित रह जाओगे; क्योंकि वहां कोई चमत्कार घटित नहीं होता। जहां सारी वासना समाप्त हो गई है, वहां तुम्हारी किसी वासना को तृप्त करने का भी कोई सवाल नहीं है। बुद्ध के पास तो महानतम चमत्कार, आखिरी चमत्कार घटित होता है--निर्वासना का प्रकाश है वहां। लेकिन

तुम्हारी वासना से भरी आंखें वह न देख पाएंगी। बुद्ध को तुम तभी देख पाओगे, तभी समझ पाओगे, उनके चरणों में तुम तभी झुक पाओगे, जब सच में ही संसार की व्यर्थता तुम्हें दिखाई पड़ गई हो, मोह का आवरण टूट गया हो।
मोह एक नशा है। जैसे नशे में डूबा हुआ कोई आदमी चलता है, डगमगाता; पक्का पता भी नहीं कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है; चलता है बेहोशी में; ऐसे तुम चलते रहे हो। कितना ही तुम सम्हालो अपने पैरों को, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सभी शराबी सम्हालने की कोशिश करते हैं। तुम अपने को भला धोखा दे लो, दूसरों को कोई धोखा नहीं हो पाता। सभी शराबी कोशिश करते हैं कि वे नशे में नहीं हैं; वे जितनी कोशिश करते हैं, उतना ही प्रकट होता है। और यह मोह नशा है।
और जब मैं कहता हूं मोह नशा है, तो बिल्कुल रासायनिक अर्थों में कहता हूं कि मोह नशा है। मोह की अवस्था में तुम्हारा पूरा शरीर नशीले द्रव्यों से भर जाता है--वैज्ञानिक अर्थों में भी। जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में गिरते हो, तो तुम्हारा पूरे शरीर का खून विशेष रासायनिक द्रव्यों से भर जाता है। वे द्रव्य वही हैं जो भांग में हैं, गांजे में हैं, एल एस डी में हैं। इसीलिए स्त्री अब, जिसके तुम प्रेम में पड़ गए हो, वह स्त्री अलौकिक दिखाई पड़ने लगती है। वह इस पृथ्वी की नहीं मालूम होती। जिस पुरुष के तुम प्रेम में पड़ जाओ, वह पुरुष इस लोक का नहीं मालूम पड़ता। नशा उतरेगा, तब वह दो कौड़ी का दिखाई पड़ेगा। जब तक नशा है!
इसलिए तुम्हारा कोई भी प्रेम स्थायी नहीं हो सकता; क्योंकि नशे की अवस्था में किया गया है। वह मोह का एक रूप है। होश में नहीं हुआ है वह, बेहोशी में हुआ है। इसलिए हम प्रेम को अंधा कहते हैं। प्रेम अंधा नहीं है, मोह अंधा है। हम भूल से मोह को प्रेम समझते हैं। प्रेम तो आंख है; उससे बड़ी कोई आंख नहीं है। प्रेम की आंख से तो परमात्मा दिखाई पड़ जाता है--इस संसार में छिपा हुआ। मोह अंधा है; जहां कुछ भी नहीं है वहां सब कुछ दिखाई पड़ता है। मोह एक सपना है।
और जिनको हम योगी कहते हैं, वे भी इस मोह से ग्रस्त होते हैं। सिद्धियां तो हल हो जाती हैं। वे कुछ शक्तियां तो पा लेते हैं। शक्तियां पानी कठिन नहीं है। दूसरे के मन के विचार पढ़े जा सकते हैं--थोड़ा ही उपाय करने की जरूरत है। दूसरे के विचार प्रभावित किए जा सकते हैं--थोड़ा ही उपाय करने की जरूरत है। आदमी आए, तुम बता सकते हो कि तुम्हारे मन में क्या ख्याल है--थोड़े ही उपाय करने की जरूरत है। यह विज्ञान है; धर्म का इससे कुछ लेना- देना नहीं है। मन को पढ़ने का विज्ञान है, जैसे किताब को पढ़ने का विज्ञान है। जो अपढ़ है, वह तुम्हें किताब को पढ़ते देख कर बहुत हैरान होता है--क्या चमत्कार हो रहा है! जहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता उसे, काले धब्बे हैं, वहां से तुम ऐसा आनंद ले रहे हो--कविता का, उपनिषद का, वेद का--मंत्रमुग्ध हो रहे हो! अपढ़ देख कर हैरान होता है।
मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में वह अकेला ही पढ़ा-लिखा आदमी था। और जब अकेला ही कोई पढ़ा-लिखा आदमी हो तो पक्का नहीं कि वह पढ़ा-लिखा है भी कि नहीं। क्योंकि कौन पता लगाए? गांव में जिसको भी चिट्ठी वगैरह लिखवानी होती, वह नसरुद्दीन के पास आता। वह चिट्ठी लिख देता था। एक दिन एक बुढ़िया आई। उसने कहा कि चिट्ठी लिख दो नसरुद्दीन! नसरुद्दीन ने कहा, अभी न लिख सकूंगा, मेरे पैर में बहुत दर्द है। बुढ़िया ने कहा, हद हो गई! पैर के दर्द से और चिट्ठी लिखने का संबंध क्या? नसरुद्दीन ने कहा, अब उस विस्तार में मत जाओ। लेकिन मैं कहता हूं कि पैर में दर्द है, और मैं चिट्ठी न लिखूंगा। बुढ़िया भी जिद्दी थी। उसने कहा, मैं बिना जाने जाऊंगी नहीं। क्योंकि मैं बेपढ़ी-लिखी हूं, लेकिन यह मैंने कभी सुना नहीं कि पैर के दर्द से चिट्ठी लिखने का क्या संबंध है। नसरुद्दीन ने कहा, तू नहीं मानती तो मैं बता दूं। फिर पढ़ने दूसरे गांव तक कौन जाएगा? वह मुझ ही को जाना पड़ता है। मेरी लिखी चिट्ठी मैं ही पढ़ सकता हूं। अभी मेरे पैर में दर्द है, मैं लिखने वाला नहीं।
गैर पढ़ा-लिखा आदमी किताब में खोए आदमी को देख कर चमत्कृत होता है।
लेकिन पढ़ना सीखा जा सकता है; उसकी कला है। तुम्हारे मन में विचार चलते हैं। तुम देखते हो विचारों को, दूसरा भी उनको देख सकता है; उसकी कला है।

लेकिन उस विचारों को देखने की कला का धर्म से कोई भी संबंध नहीं। न किताब को पढ़ने की कला से धर्म का कोई संबंध है; न दूसरे के मन को पढ़ने की कला से धर्म का कोई संबंध है। जादूगर सीख लेते हैं; वे कोई सिद्ध पुरुष नहीं हैं। लेकिन तुम बहुत चमत्कृत होओगे। तुम गए किसी साधु के पास और उसने कहा
कि आओ! तुम्हारा नाम लिया, तुम्हारे गांव का पता बताया और कहा कि तुम्हारे घर के बगल में एक नीम का झाड़ है। तुम दीवाने हो गए! लेकिन साधु को नीम के झाड़ से क्या लेना, तुम्हारे गांव से क्या लेना, तुम्हारे नाम से क्या मतलब! साधु तो वह है जिसे पता चल गया है कि किसी का कोई नाम नहीं, रूप नहीं, किसी का कोई गांव नहीं। ये गांव, नाम, रूप, सब संसार के हिस्से हैं। तुम संसारी हो! वह साधु भी तुम्हें प्रभावित कर रहा है, क्योंकि वह तुमसे गहरे संसार में है। उसने और भी कला सीख ली है। तुम्हारे बिना बताए वह बोलता है। वह तुम्हें प्रभावित करना चाहता है।
ध्यान रखो, जब तक तुम दूसरे को प्रभावित करना चाहते हो, तब तक तुम अहंकार से ग्रस्त हो। आत्मा किसी को प्रभावित करना नहीं चाहती। दूसरे को प्रभावित करने में सार भी क्या है? क्या अर्थ है? पानी पर बनाई हुई लकीरों जैसा है। क्या होगा मुझे? दस हजार लोग प्रभावित हों कि दस करोड़ लोग प्रभावित हों, इससे होगा क्या? उनको प्रभावित करके मैं क्या पा लूंगा? अज्ञानियों की भीड़ को प्रभावित करने की इतनी उत्सुकता अज्ञान की खबर देती है। तो राजनेता दूसरों को प्रभावित करने में उत्सुक होता है, समझ में आता है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति क्यों दूसरों को प्रभावित करने में उत्सुक होगा? और जब भी तुम दूसरे को प्रभावित करना चाहते हो, तब एक बात याद रखना, तुम आत्मस्थ नहीं हो। दूसरे को प्रभावित करने का अर्थ है कि तुम अहंकार स्थित हो।
अहंकार दूसरे के प्रभाव को भोजन की तरह उपलब्ध करता है; उसी पर जीता है। जितनी आंखें मुझे पहचान लें, उतना मेरा अहंकार बड़ा होता है। अगर सारी दुनिया मुझे पहचान ले, तो मेरा अहंकार सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। कोई मुझे न पहचाने--गांव से निकलूं, सड़क से गुजरूं, कोई देखे न, कोई रिकग्नीशन नहीं, कोई प्रत्यभिज्ञा नहीं; किसी की आंख में झलक न आए, लोग ऐसा जैसे कि मैं हूं ही नहीं--बस वहां अहंकार को चोट है। अहंकार चाहता है दूसरे ध्यान दें। यह बड़े मजे की बात है। अहंकार ध्यान नहीं करना चाहता; दूसरे उस पर ध्यान करें, सारी दुनिया उसकी तरफ देखे, वह केंद्र हो जाए।
धार्मिक व्यक्ति, दूसरा मेरी तरफ देखे, इसकी फिक्र नहीं करता; मैं अपनी तरफ देखूं! क्योंकि अंततः वही मेरे साथ जाएगा। यह तो बच्चों की बात हुई। बच्चे खुश होते हैं कि दूसरे उनकी प्रशंसा करें। सर्टिफिकेट घर लेकर आते हैं तो नाचते-कूदते आते हैं। लेकिन बुढ़ापे में भी तुम सर्टिफिकेट मांग रहे हो? तब तुमने जिंदगी गंवा दी!
सिद्धि की आकांक्षा दूसरों को प्रभावित करने में है। धार्मिक व्यक्ति की वह आकांक्षा नहीं है। वही तो सांसारिक का स्वभाव है।
यह सूत्र कहता हैः "मोह आवरण से युक्त योगी को सिद्धियां तो फलित हो जाती हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं होता।"
वह कितनी ही बड़ी सिद्धियों को पा ले--उसके छूने से मुर्दा जिंदा हो जाए, उसके स्पर्श से बीमारियां खो जाएं, वह पानी को छू दे और औषधि हो जाए-- लेकिन उससे आत्मज्ञान का कोई भी संबंध नहीं है। सच तो स्थिति उलटी है कि जितना ही वह व्यक्ति सिद्धियों से भरता जाता है, उतना ही आत्मज्ञान से दूर होता जाता है। क्योंकि जैसे-जैसे अहंकार भरता है, वैसे-वैसे आत्मा खाली होती है; और जैसे-जैसे अहंकार खाली होता है, वैसे-वैसे आत्मा भरती है। तुम दोनों को साथ ही साथ न भर पाओगे।
दूसरे को प्रभावित करने की आकांक्षा छोड़ दो, अन्यथा योग भी भ्रष्ट हो जाएगा। तब तुम योग भी साधोगे, वह भी राजनीति होगी, धर्म नहीं। और राजनीति एक जाल है। फिर येन केन प्रकारेण आदमी दूसरे को प्रभावित करना चाहता है। फिर सीधे और गलत रास्ते से भी प्रभावित करना चाहता है। लेकिन प्रभावित तुम करना ही इसलिए चाहते हो कि तुम दूसरे का शोषण करना चाहते हो।
मैंने सुना है, चुनाव हो रहे थे; और एक संध्या तीन आदमी हवालात में बंद किए गए। अंधेरा था, तीनों ने अंधेरे में एक-दूसरे को परिचय दिया। पहले

व्यक्ति ने कहा, मैं हूं सरदार संतसिंह। मैं सरदार सिरफोड़सिंह के लिए काम कर रहा था। दूसरे ने कहा, गजब हो गया! मैं हूं सरदार शैतानसिंह। मैं सरदार सिरफोड़सिंह के विरोध में काम कर रहा था। तीसरे ने कहा, वाहे गुरुजी की फतह! वाहे गुरुजी का खालसा! हद हो गई! मैं खुद सरदार सिरफोड़सिंह हूं।
नेता, अनुयायी, पक्ष के, विपक्ष के--सभी कारागृहों के योग्य हैं। वही उनकी ठीक जगह है, जहां उन्हें होना चाहिए। क्योंकि पाप की शुरुआत वहां से होती है, जहां मैं दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करने चलता हूं। क्योंकि अहंकार न शुभ जानता, न अशुभ; अहंकार सिर्फ अपने को भरना जानता है। कैसे अपने को भरता है, यह बात गौण है। अहंकार की एक ही आकांक्षा है कि मैं अपने को भरूं और परिपुष्ट हो जाऊं। और चूंकि अहंकार एक सूनापन है, सब उपाय करके भी भर नहीं पाता, खाली ही रह जाता है। तो जैसे-जैसे उम्र हाथ से खोती है, वैसे-वैसे अहंकार पागल होने लगता है; क्योंकि अभी तक भर नहीं पाया, अभी तक यात्रा अधूरी है और समय बीता जा रहा है।
इसलिए बूढ़े आदमी चिड़चिड़े हो जाते हैं। वह चिड़चिड़ापन किसी और के लिए नहीं है; वह चिड़चिड़ापन अपने जीवन की असफलता के लिए है। जो भरना चाहते थे, वे भर नहीं पाए।
और बूढ़े आदमी की चिड़चिड़ाहट और घनी हो जाती है; क्योंकि उसे लगता है कि जैसे-जैसे वह बूढ़ा हुआ है, वैसे-वैसे लोगों ने ध्यान देना बंद कर दिया है; बल्कि लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वह कब समाप्त हो जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया था। मैंने उससे पूछा कि क्या तुम कुछ कारण बता सकते हो नसरुद्दीन कि परमात्मा ने तुम्हें इतनी लंबी उम्र क्यों दी?
उसने बिना कुछ झिझक कर कहा, संबंधियों के धैर्य की परीक्षा के लिए।
सभी बूढ़े संबंधियों के धैर्य की परीक्षा कर रहे हैं। चौबीस घंटे देख रहे हैं कि ध्यान उनकी तरफ से हटता जा रहा है। मौत तो उन्हें बाद में मिटाएगी, लोगों की पीठ उन्हें पहले ही मिटा देती है। उससे चिड़चिड़ापन पैदा होता है।
तुम सोच भी नहीं सकते कि निक्सन का चिड़चिड़ापन अभी कैसा होगा। सब की पीठ हो गई, जिनके चेहरे थे। जो अपने थे, वे पराए हो गए। जो मित्र थे, वे शत्रु हो गए। जिन्होंने सहारे दिए थे, उन्होंने सहारे छीन लिए। सब ध्यान हट गया। निक्सन अस्वस्थ हैं, बेचैन हैं, परेशान हैं। जो भी आदमी जाता है निक्सन के पास, उससे वे पहली बात यही पूछते हैं कि मैंने जो किया वह ठीक किया? लोग मेरे संबंध में क्या कह रहे हैं?
अभी यह आदमी शिखर पर था, अब यह आदमी खाई में पड़ा है! यह शिखर और खाई किस बात की थी? यह आदमी तो वही है जो कल था, पद पर था; वही आदमी अभी भी है। सिर्फ अहंकार शिखर पर था, अब खाई में है; आत्मा तो जहां की तहां है। काश! इस आदमी को उसकी याद आ जाए, जिसका न कोई शिखर होता, न कोई खाई होती; न कोई हार होती, न जीत होती; जिसको लोग देखें तो ठीक, न देखें तो ठीक; जिसमें कोई फर्क नहीं पड़ता, जो एकरस है।
उस एकरसता का अनुभव तुम्हें तभी होगा, जब तुम लोगों का ध्यान मांगना बंद कर दोगे। भिखमंगापन बंद करो। सिद्धियों से क्या होगा? लोग तुम्हें चमत्कारी कहेंगे; लाखों की भीड़ इकट्ठी होगी। लेकिन लाखों मूढ़ों को इकट्ठा करके क्या सिद्ध होता है--कि तुम इन लाखों मूढ़ों के ध्यान के केंद्र हो! तुम महामूढ़ हो! अज्ञानी से प्रशंसा पाकर भी क्या मिलेगा? जिसे खुद ज्ञान नहीं मिल सका, उसकी प्रशंसा मांग कर तुम क्या करोगे? जो खुद भटक रहा है, उसके तुम नेता हो जाओगे? उसके सम्मान का कितना मूल्य है?
सुना है मैंने, सूफी फकीर हुआ, फरीद। वह जब बोलता था, तो कभी लोग ताली बजाते तो वह रोने लगता। एक दिन उसके शिष्यों ने पूछा, हद्द हो गई! लोग ताली बजाते हैं, तुम रोते किसलिए हो? तो फरीद ने कहा कि वे ताली बजाते हैं, तब मैं समझता हूं कि मुझसे कोई गलती हो गई होगी। अन्यथा वे ताली कभी न बजाते। ये गलत लोग! जब वे न ताली बजाते, न उनकी समझ में आता, तभी मैं समझता हूं कि कुछ ठीक बात कह रहा हूं।
आखिर गलत आदमी की ताली का मूल्य क्या है? तुम किसके सामने अपने को "सिद्ध" सिद्ध करना चाह रहे हो? अगर तुम इस संसार के सामने अपने को "सिद्ध"

सिद्ध करना चाह रहे हो, तो तुम नासमझों की प्रशंसा के लिए आतुर हो। तुम अभी नासमझ हो। और अगर तुम सोचते हो कि परमात्मा के सामने तुम अपने को सिद्ध करना चाह रहे हो कि मैं सिद्ध हूं, तो तुम और महा नासमझ हो। क्योंकि उसके सामने तो विनम्रता चाहिए। वहां तो अहंकार काम न करेगा। वहां तो तुम मिट कर जाओगे तो ही स्वीकार पाओगे। वहां तुम अकड़ लेकर गए तो तुम्हारी अकड़ ही बाधा हो जाएगी।
इसलिए तथाकथित सिद्ध परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते। परम सिद्धियां उनकी हो जाती हैं, लेकिन असली सिद्धि चूक जाती है। वह असली सिद्धि है आत्मज्ञान। क्यों आत्मज्ञान चूक जाता है? क्योंकि सिद्धि भी दूसरे की तरफ देख रही है, अपनी तरफ नहीं। अगर कोई भी न हो दुनिया में, तुम अकेले होओ, तो तुम सिद्धियां चाहोगे? तुम चाहोगे कि पानी को छुऊं, औषधि हो जाए? मरीज को छुऊं, स्वस्थ हो जाए? मुर्दे को छुऊं, जिंदा हो जाए? कोई भी न हो पृथ्वी पर, तुम अकेले होओ, तो तुम ये सिद्धियां चाहोगे? तुम कहोगे, क्या करेंगे! देखने वाले ही न रहे। देखने वाले के लिए सिद्धियां हैं।
दूसरे पर तुम्हारा ध्यान है, तब तक तुम्हारा अपने पर ध्यान नहीं आ सकता। और आत्मज्ञान तो उसे फलित होता है, जो दूसरे की तरफ से आंखें अपनी तरफ मोड़ लेता है।
"स्थायी रूप से मोह-जय होने पर सहज विद्या फलित होती है।"
स्थायी रूप से मोह-जय होने पर सहज विद्या फलित होती है! मोह को जय करना है। मोह का क्या अर्थ है? मोह का अर्थ हैः दूसरे के बिना मैं न जी सकूंगा; दूसरा मेरा केंद्र है।
तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी होंगी, जिनमें कोई राजा होता है और जिसके प्राण किसी पक्षी में, तोते में, मैना में बंद होते हैं। तुम उस राजा को मारो, न मार पाओगे। गोली आर-पार निकल जाएगी, राजा जिंदा रहेगा। तीर छिद जाएगा हृदय में, राजा मरेगा नहीं। जहर पिला दो, कोई असर न होगा। राजा जीवित रहेगा। तुम्हें पता लगाना पड़ेगा उस तोते का, मैना का, जिसमें उसके प्राण बंद हैं। उसे तुम मरोड़ दो, उसकी गर्दन तोड़ दो--इधर राजा मर जाएगा।
ये बच्चों की कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं; बूढ़ों के भी समझने योग्य हैं। मोह का अर्थ हैः तुम अपने में नहीं जीते, किसी और चीज में जीते हो। समझो, किसी का मोह तिजोरी में है। तुम उसकी गर्दन मरोड़ दो, वह न मरेगा। तुम तिजोरी लूट लो, वह मर गए। उनके प्राण तिजोरी में थे। उनका बैंक बैलेंस खो जाए, वे मर गए। उन्हें तुम मारो, वे मरने वाले नहीं। जहर पिलाओ, वे जिंदा रहेंगे।
मोह का अर्थ हैः तुमने अपने प्राण अपने से हटा कर कहीं और रख दिए हैं। किसी ने अपने बेटे में रख दिए हैं; किसी ने अपनी पत्नी में रख दिए हैं; किसी ने धन में रख दिए हैं; किसी ने पद में रख दिए हैं--लेकिन प्राण कहीं और रख दिए हैं। जहां होना चाहिए प्राण वहां नहीं हैं। तुम्हारे भीतर प्राण नहीं धड़क रहा है, कहीं और धड़क रहा है। तब तुम मुसीबत में रहोगे।
यही मोह संसार है; क्योंकि जहां-जहां तुमने प्राण रख दिए, उनके तुम गुलाम हो जाओगे। जिस राजा के प्राण तोते में बंद हैं, वह तोते का गुलाम होगा; क्योंकि तोते के ऊपर सब कुछ निर्भर है। तोता मर जाए तो हमारे प्राण गए। तो वह तोते को सम्हालेगा।
मैंने सुना है, एक सम्राट एक बार एक ज्योतिषी पर बहुत नाराज हो गया; क्योंकि ज्योतिषी ने उसके प्रधानमंत्री की भविष्यवाणी की और कहा कि यह कल मर जाएगा। और कल प्रधानमंत्री मर भी गया। राजा बहुत चिंतित हुआ। और उसे यह शक भी पकड़ा कि यह भी हो सकता है कि यह प्रधानमंत्री इसके कहने के कारण मर गया। इस पर भाव इतना गहरा हो गया, इसकी बात का प्रभाव इतना हो गया कि मर गया। और अब यह झंझट का आदमी है। यह अगर मुझसे भी कह दे कि कल तुम मर जाओगे, तो बचना बहुत मुश्किल है; क्योंकि इसका प्रभाव पड़ेगा मुझ पर।
तो उसने ज्योतिषी को कारागृह में डाल दिया। ज्योतिषी ने पूछा कि क्यों? सम्राट ने कहा कि तुम खतरनाक हो! मुझे लगता है कि यह भविष्यवाणी के कारण नहीं मरा, मरने वाला था इसलिए नहीं मरा; तुमने कहा, यह बात उसके मन में बैठ गई, वह सम्मोहित हो गया और मर गया। तुम खतरनाक हो।

उस ज्योतिषी ने कहा, इसके पहले कि तुम मुझे कारागृह में डालो, मैं एक बात तुम्हें बता दूं, तुम्हारा भविष्य भी मैंने निकाला हुआ है। सम्राट ने बहुत चाहा कि वह भविष्य न सुने; लेकिन ज्योतिषी बोल ही गया। सम्राट ने कहा, चुप! लेकिन ज्योतिषी ने कहा, चुप रहने का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन मैं मरूंगा, उसके तीन दिन बाद तुम मरोगे।
बस अब मुसीबत हो गई। उस ज्योतिषी को महल में रखना पड़ा। उसकी बड़ी सेवा, चिंता... । उसके राजा हाथ-पैर दबाता; क्योंकि वह जिस दिन मरा, तीन दिन बाद... ।
जहां तुम अपने प्राण रख दोगे, उसकी तुम सेवा में लग जाओगे। लोगों को देखो, तिजोरी के पास कैसे जाते हैं। बिल्कुल हाथ जोड़े, जैसे मंदिर के पास जाते हैं। तिजोरी पर "लाभ-शुभ", "श्री गणेशाय नमः"। तिजोरी भगवान है! उसकी वे पूजा करते हैं। दीवाली के दिन पागलों को देखो, सब अपनी-अपनी तिजोरी की पूजा कर रहे हैं। वहां उनके प्राण हैं। किस भाव से वे करते हैं, वह भाव देखने जैसा है। दुकानदार हर साल अपने खाता-बही शुरू करता है, तो स्वास्तिक बनाता है, "लाभ-शुभ" लिखता है, "श्री गणेशाय नमः" लिखता है। तुम्हें पता है कि यह गणेश की इतनी स्तुति वह क्यों करता है?
यह गणेश पुराने उपद्रवी हैं। पुरानी कथा है कि गणेश विघ्न के देवता हैं। दिखते भी इस ढंग से हैं कि उपद्रवी होने चाहिए। एक तो खोपड़ी अपनी नहीं। जिसके पास अपनी खोपड़ी नहीं है, वह आदमी पागल है। उससे तुम कुछ भी... कुछ भी असंभव वह कर सकता है। ढंग-डौल उनका देखो, संदिग्ध है। चूहे पर सवार हैं। वह चूहा तर्क है; कतरनी की तरह काटता है। तर्क कभी भी भरोसे योग्य नहीं है। तर्क जहां भी जाएगा, वहां विघ्न उपस्थित करेगा। जिसके जीवन में तर्क घुस जाएगा, उसके जीवन में उपद्रव आ जाएंगे, अराजकता आ जाएगी, सब शांति खो जाएगी।
तो गणेश पुराने देवता हैं विघ्न के। जहां भी कहीं कुछ शुभ हो रहा हो,
वे मौजूद हो जाते थे। लोग उनसे डरने लगे। डरने के कारण पहले ही उनको हाथ जोड़ लेते हैं कि आप--कृपा करके आप कृपा रखना, बाकी हम सब सम्हाल लेंगे। और धीरे-धीरे हालत ऐसी हो गई कि जो देवता विघ्न का था, लोग उसको मंगल का देवता मानने लगे। पर वे भूल गए हैं कहानी। वह उनका हाथ जोड़ना ठीक ही है कि यहां मत आना। इस तरफ कृपा दृष्टि रखना।
देखें, तिजोरी के पास किस भाव से भक्त धन की पूजा करता है!
मोह के आवरण का अर्थ होता हैः तुम्हारी आत्मा कहीं और बंद है। वह पत्नी में हो, धन में हो, पद में हो, वह कहीं भी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; लेकिन तुम्हारी आत्मा तुम्हारे भीतर नहीं है, मोह का यह अर्थ है। और शाश्वत, स्थायी रूप से मोह-जय का अर्थ है कि तुमने सारी परतंत्रता छोड़ दी। अब तुम किसी और पर निर्भर होकर नहीं जीते; तुम्हारा जीवन अपने में निर्भर है। तुम स्वकेंद्रित हुए। तुमने अपने अस्तित्व को ही अपना केंद्र बना लिया। अब पत्नी न रहे, धन न रहे, तो भी कोई फर्क न पड़ेगा--वे ऊपर की लहरें हैं--तो भी तुम उद्विग्न न हो जाओगे। सफलता रहे कि विफलता, सुख आए कि दुख, कोई अंतर न पड़ेगा। क्योंकि अंतर पड़ता था इसलिए कि तुम उन पर निर्भर थे। मोह-जय का अर्थ हैः परम स्वतंत्र हो जाना; मैं किसी पर निर्भर नहीं हूं--ऐसी प्रतीति; मैं अकेला काफी हूं, पर्याप्त हूं--ऐसी तृप्ति। मेरा होना पूरा है, ऐसा भाव मोह-जय है। जब तक दूसरे के होने पर तुम्हारा होना निर्भर है, तब तक मोह पकड़ेगा; तब तक तुम दूसरे को जकड़ोगे, वह कहीं छूट न जाए, कहीं खो न जाए रास्ते में; क्योंकि उसके बिना तुम कैसे रहोगे!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी, तो औपचारिक रूप से रो रहा था। लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र था, वह बहुत ही ज्यादा शोरगुल मचा कर रो रहा था--छाती पीट रहा, आंसू बहा रहा। मुल्ला नसरुद्दीन से भी न रहा गया। उसने कहा कि मेरे भाई, मत इतना शोरगुल कर, मैं फिर शादी करूंगा। तू इतना ज्यादा दुखी मत हो।
वे मित्र जो थे, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी के प्रेमी थे। मुल्ला नसरुद्दीन के प्राण वहां न थे, लेकिन उनके प्राण वहां थे। तो उसने ठीक ही कहा कि तू इतना शोरगुल मत कर, मैं फिर शादी करूंगा।

कौन सी चीज तुम्हें रुलाती है--वहीं तुम्हारा मोह है। कौन सी चीज के
खो जाने से तुम अभाव अनुभव करते हो--वहीं तुम्हारा मोह है। सोचना, कौन सी चीज खो जाए तो तुम एकदम दीन-दीन हो जाओगे--वही तुम्हारे मोह का बिंदु है। और इसके पहले कि वह खोए, तुम उस पर अपनी पकड़ छोड़ना। क्योंकि वह खोएगी ही। इस संसार में कोई भी चीज थिर नहीं है--न मित्रता, न प्रेम--कोई भी चीज थिर नहीं है। यहां सब बदलता हुआ है। संसार का स्वभाव प्रतिक्षण परिवर्तन है। यह एक बहाव है--नदी की तरह बह रहा है। यहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। तुम लाख उपाय करो, तो भी कुछ भी ठहरा हुआ नहीं हो सकता। तुम्हारे उपाय के कारण ही तुम परेशान हो। जो सदा चल रहा है, उसको तुम ठहराना चाहते हो; जो बह रहा है, तुम उसे रोकना चाहते हो, जमाना चाहते हो। वह जमने वाला नहीं। वह उसका स्वभाव नहीं है।
परिवर्तन संसार है, और वहां तुम चाहते हो कुछ स्थायी सहारा मिल जाए।
वह नहीं मिलता। इसलिए तुम प्रतिपल दुखी हो। हर क्षण तुम्हारे सहारे खो जाते हैं।
एक बात खोजने की चेष्टा करना कि कौन सी चीजें हैं जो खो जाएं तो तुम दुखी होओगे? इसके पहले कि वे खोएं, तुम अपनी पकड़ हटाना शुरू कर देना। यह मोह-जय का उपाय है। पीड़ा होगी; लेकिन यह पीड़ा झेलने जैसी है; यह तपश्चर्या है। कुछ छोड़ कर भाग जाने की जरूरत नहीं कि तुम अपनी पत्नी को छोड़ कर हिमालय भाग जाना। तुम जहां हो, वहीं रहना। लेकिन पत्नी पर निर्भरता को धीरे-धीरे काटते जाना। कोई जरूरत नहीं कि पत्नी को इससे दुख दो। पत्नी को पता भी नहीं चलेगा। कोई कारण भी नहीं पता चलाने का किसी को।
जीसस ने कहा है, तुम्हारा बायां हाथ क्या करता है, दाएं को पता न चले,
तो ही तुम ठीक-ठीक साधक हो। क्योंकि दूसरे को पता चलाने की इच्छा भी अहंकार की इच्छा है। तुम पता चलाना चाहते हो दूसरे को कि देखो, पत्नी को छोड़ दिया, हिमालय जा रहे हैं! कितना महान कार्य कर दिया!
कुछ भी महान कार्य नहीं है। कोई भी पति से पूछो, सभी पति हिमालय जाना चाहते हैं। नहीं जा पाते, यह दूसरी बात है। इसमें कुछ... ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन पहुंचा गांव के पागलखाने और उसने द्वार खटखटाया। सुपरिनटेंडेंट ने दरवाजा खोला और कहा, क्या मामला है? उसने कहा कि क्या कोई आदमी पागलखाने से भाग गया? सुपरिनटेंडेंट ने कहा, तुम्हें इससे क्या मतलब? क्या तुमने किसी को भागते देखा? उसने कहा कि नहीं, मेरी पत्नी को लेकर कोई आदमी भाग गया है। तो मैंने सोचा, जरूर कोई पागलखाने से छूट गया। क्योंकि हम खुद ही छूटना चाह रहे थे, वह अपने हाथ से आ फंसा। पतियों से पूछो! संसार में जो खड़ा है, उसके दुख का कोई अंत नहीं है। भाग नहीं सकता; क्योंकि उसे कहीं सुख दूसरी जगह दिखाई भी नहीं पड़ता, कहां जाए? और जहां जाएगा, संसार तो साथ ही होगा। और फिर बड़ी आकांक्षाओं से इस जगह को उसने बनाया है, और अब इतने बनाने के बाद तोड़ना मुश्किल है; पूरी जिंदगी व्यर्थ होती है।
मोह की खोज करना। जिन चीजों के बिना तुम न रह सको, उनके बिना धीरे-धीरे रहने की भीतरी चेष्टा करना। और एक ऐसी स्थिति बना लेना कि अगर वे सब भी खो जाएं तो भी तुम्हारे भीतर कोई कंपन न होगा, तो मोह-जय हुई। और यह हो सकता है; यह हुआ है। एक को हुआ है; सभी को हो सकता है।
सूत्र कहता है शिव काः "स्थायी रूप से मोह-जय होने पर सहज विद्या फलित होती है।"
और जिस दिन भी मोह-जय हो जाती है, उसी दिन तुम पाते हो कि उस विद्या का तुम्हें अनुभव होने लगा, वह ज्ञान स्फुरने लगा, जो सहज है, जो किसी से सीखा नहीं जाता। वही आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान दूसरे से सीखने की कोई सुविधा नहीं है; वह भीतर स्फुरित होता है। जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं, जैसे झरने बहते हैं, ऐसा तुम्हारे भीतर जो बह रहा है सदा, कलकल नाद कर रहा है, वह तुम्हारा ही है, सहज; उसे किसी से लेना नहीं है। कोई गुरु उसे नहीं दे सकता; सभी गुरु उस तरफ इशारा करते हैं। जब तुम पाओगे, तब तुम पाओगे कि यह भीतर ही छिपा था; यह अपनी ही संपदा है। इसलिए सहज विद्या!
दो तरह की विद्याएं हैं। संसार की विद्या सीखनी है, दूसरे से सीखनी पड़ेगी; वह सहज नहीं है। कितना ही बुद्धिमान आदमी हो, संसार की विद्या

दूसरे से सीखनी पड़ेगी। और कितना ही मूढ़ आदमी हो, तो भी आत्मविद्या दूसरे से नहीं सीखनी पड़ेगी। वह तुम्हारे भीतर है। बाधा मोह की है। मोह कट जाता है, बादल छंट जाते हैं, सूर्य निकल आता है!
"ऐसे जाग्रत योगी को, सारा जगत मेरी ही किरणों का प्रस्फुरण है, ऐसा बोध होता है।"
और जिस दिन सहज विद्या का जन्म होता है, जागृति आती है, तो दिखाई पड़ता
है कि सारा जगत मेरी ही किरणों का स्फुरण है। तब तुम केंद्र हो जाते हो। तुम बहुत चाहते थे कि सारे जगत के केंद्र हो जाओ। अहंकार के सहारे वह नहीं हो पाया। हर बार हारे। और अहंकार खोते ही तुम केंद्र हो जाते हो।
तुम जिसे पाना चाहते हो, वह तुम्हें मिल जाएगा; लेकिन तुम गलत दिशा में खोज रहे हो। तुम भ्रांत मार्ग पर चल रहे हो। तुम जो पाना चाहते हो, वह मिल सकता है; लेकिन जिसके सहारे तुम पाना चाहते हो, उसके सहारे नहीं मिल सकता; तुमने गलत सारथी चुना है, तुमने वाहन गलत चुन लिया है। अहंकार से तुम कभी विश्व के केंद्र न बन पाओगे। और निरहंकार व्यक्ति तत्क्षण विश्व का केंद्र बन जाता है। बुद्धत्व प्रकट होता है बोधि-वृक्ष के नीचे, सारी दुनिया परिधि हो जाती है; सारा जगत परिधि हो जाता है; बुद्धत्व केंद्र हो जाता है। सारा जगत फिर मेरा ही फैलाव है। फिर सभी किरणें मेरी हैं। सारा जीवन मेरा है। लेकिन यह "मेरा" तभी फलित होता है, जब "मैं" नहीं बचता। यही जटिलता है। जब तक "मैं" है, तब तक तुम कितना ही बड़ा कर लो "मेरे" के फैलाव को, कितना ही बड़ा साम्राज्य बना लो, तुम धोखा दे रहे हो।
काफी जल चुके हो, अनेक-अनेक जन्मों में भटक चुके हो, फिर भी सजग नहीं! मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन हवाई जहाज में सवार हुआ। अपनी कुर्सी पर बैठते ही उसने परिचारिका को बुलाया और कहा कि सुनो! तेल, पानी, हवा, पेट्रोल, सब ठीक-ठाक है न? उस परिचारिका ने कहा कि तुम अपनी जगह शांति से बैठो। यह तुम्हारा काम नहीं है। यह हमारी चिंता है। नसरुद्दीन ने कहा, फिर बीच में उतर कर धक्का देने के लिए मत कहना।
मुझे किसी ने बताया तो मैंने नसरुद्दीन को पूछा कि ऐसी बात घटी? उसने कहा, घटी। दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है। बस का चला हवाई जहाज में भी चिंता रखता है कि कहीं बीच में उतर कर धक्का न देना पड़े।
तुम बहुत बार जल चुके हो। छाछ को भी फूंक-फूंक कर पीना तो दूर, तुमने अभी दूध को भी फूंक-फूंक कर पीना नहीं सीखा है।
जीवन की बड़ी से बड़ी दुविधा यही है कि हम अनुभव से सीख नहीं पाते। लोग कहते हैं कि अनुभव से हम सीखते हैं; दिखाई नहीं पड़ता। कोई अनुभव से सीखता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। फिर-फिर तुम वही भूलें करते हो। नयी भी करो, तो भी कुछ कुशलता है। नयी भी करो, तो कुछ जीवन में गति हो, प्रौढ़ता आए। वही-वही भूलें बार-बार करते हो, पुनरुक्ति करते हो।
चित्त एक वर्तुल है। तुम उसी-उसी में घूमते रहते हो चाक की तरह। और वह चाक चलता है तुम्हारे मोह से। मोह को तोड़ो, चाक रुक जाएगा। चाक के रुकते ही तुम पाओगे तुम केंद्र हो। तुम्हें केंद्र बनने की जरूरत नहीं है, तुम हो। तुम्हें परमात्मा बनने की आवश्यकता नहीं है, तुम हो ही। इसलिए वह विद्या सहज है।
"ऐसे जाग्रत योगी को, सारा जगत मेरी ही किरणों का स्फुरण है, ऐसा बोध होता है।"
और इस बोध का परम आनंद है। इस बोध में परम अमृत है। इस बोध के आते ही तुम्हारे जीवन से सारा अंधकार खो जाता है--सारा दुख, सारी चिंता। तुम एक हर्षोन्माद से भर जाते हो। एक मस्ती, एक गीत का जन्म होता है तुम्हारे जीवन में। तुम्हारी श्वास-श्वास पुलकित हो जाती है, सुगंधित हो जाती है-- किसी अज्ञात के स्रोत से।
वह सहज विद्या है; कोई शास्त्र उसे सिखा नहीं सकता और कोई गुरु उसे सिखा नहीं सकता। लेकिन गुरु तुम्हें बाधाएं हटाने में सहयोगी हो सकता है। इस बात को ठीक से ख्याल में ले लेना। उस परम विद्या को सीखने का कोई उपाय नहीं, लेकिन उस परम विद्या के मार्ग में जो-जो बाधाएं हैं, उनको दूर करने का उपाय सीखना पड़ता है। ध्यान से वह परम संपदा नहीं मिलेगी; ध्यान से

केवल दरवाजे की चाबी मिलेगी। ध्यान से केवल दरवाजा खुलेगा। वह परम संपदा तुम्हारे भीतर है। तुम ही हो वह! तत्वमसि! वह ब्रह्म तुम ही हो।
सब उपाय बाधाएं हटाने के लिए हैं--मार्ग के पत्थर हट जाएं। मंजिल-- मंजिल तुम अपने साथ लिए चल रहे हो। सहज है ब्रह्म; कठिनाई है तुम्हारे मोह के कारण। कठिनाई यह नहीं है कि ब्रह्म को मिलने में देर है; कठिनाई यह है कि संसार को तुमने इतने जोर से पकड़ा है कि जितनी देर तुम छोड़ने में लगा दोगे, उतनी ही देर उसके मिलने में हो जाएगी। इस क्षण छोड़ सकते हो--इसी क्षण उपलब्धि है। रुकना चाहो--जन्मों-जन्मों से तुम रुके हो, और भी जन्म-जन्म रुक सकते हो।
वैसे काफी हो गया, जरूरत से ज्यादा रुक लिए। अब और रुकना जरा भी अर्थपूर्ण नहीं है। समय पक गया है; और संसार के वृक्ष से तुम्हें गिर जाना चाहिए। और डरो मत कि वृक्ष से गिरेंगे तो खो जाएंगे। खो जाओगे, लेकिन तुम्हारा जो व्यर्थ है वही खोएगा; जो सार्थक है, वह अनंत गुना होकर उपलब्ध हो जाता है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
छठवां प्रवचन

दृष्टि ही सृष्टि है

नर्तकः आत्मा।
रड्गोऽन्तरात्मा।
धीवशात सत्वसिद्धिः।
सिद्धः स्वतंत्र भावः।
विसर्गस्वाभाव्यादबहिःस्थितेस्तत्स्थिति।

आत्मा नर्तक है।
अंतरात्मा रंगमंच है।
बुद्धि के वश में होने से सत्व की सिद्धि होती है।
और सिद्ध होने से स्वातंष्य फलित होता है।
स्वतंत्र स्वभाव के कारण वह अपने से बाहर भी जा सकता है
और वह बाहर स्थित रहते हुए अपने अंदर भी रह सकता है।

सूत्रों में प्रवेश के पहले कुछ बातें समझ लें।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहीं कहा है कि मैं केवल उस परमात्मा में विश्वास कर सकता हूं, जो नाच सकता हो। उदास परमात्मा में विश्वास करना केवल बीमार आदमी का लक्षण है।
बात में सच्चाई है। तुम अपने परमात्मा को अपनी ही प्रतिमा में ढालते हो। तुम उदास हो, तुम्हारा परमात्मा उदास होगा। तुम प्रसन्न हो, तुम्हारा परमात्मा प्रसन्न होगा। तुम नाच सकते हो, तो तुम्हारा परमात्मा भी नाच सकेगा। तुम जैसे हो, वैसा ही तुम्हें अस्तित्व दिखाई पड़ता है। तुम्हारी दृष्टि का फैलाव ही सृष्टि है। और जब तक तुम नाचते हुए परमात्मा में भरोसा न कर सको, तब तक जानना कि तुम स्वस्थ नहीं हुए। उदास, रोते हुए, रुग्ण परमात्मा की धारणा तुम्हारी रुग्ण दशा की सूचक है।
पहला सूत्र है आज काः "आत्मा नर्तक है।"
नर्तन के संबंध में कुछ और बातें समझ लें। नर्तन अकेला ही एक कृत्य है, जिसमें कर्ता और कृत्य बिल्कुल एक हो जाते हैं। कोई आदमी चित्र बनाए, तो बनाने वाला अलग और चित्र अलग हो जाता है। कोई आदमी कविता बनाए, तो कवि और कविता अलग हो जाती है। कोई आदमी मूर्ति गढ़े, तो मूर्तिकार और मूर्ति अलग हो जाती है। सिर्फ नर्तन एक मात्र कृत्य है, जहां नर्तक और नृत्य एक होता है; उन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। अगर नर्तक चला जाएगा, नृत्य चला जाएगा। और अगर नृत्य खो जाएगा, तो उस आदमी को, जिसका नृत्य खो गया, नर्तक कहने का कोई अर्थ नहीं। वे दोनों संयुक्त हैं।
इसलिए परमात्मा को नर्तक कहना सार्थक है। यह सृष्टि उससे भिन्न नहीं है। यह उसका नृत्य है। यह उसकी कृति नहीं है। यह कोई बनाई हुई मूर्ति नहीं है कि परमात्मा ने बनाया और वह अलग हो गया। प्रतिपल परमात्मा इसके भीतर मौजूद है। वह अलग हो जाएगा तो नर्तन बंद हो जाएगा।
और ध्यान रहे कि नर्तन बंद हो जाएगा तो परमात्मा भी खो जाएगा; वह बच नहीं सकता। फूल-फूल में, पत्ते-पत्ते में, कण-कण में वह प्रकट हो रहा है। सृष्टि कभी पीछे अतीत में होकर समाप्त नहीं हो गई; प्रतिपल हो रही है। प्रतिपल सृजन का कृत्य जारी है। इसलिए सब कुछ नया है। परमात्मा नाच रहा है--बाहर भी, भीतर भी।
आत्मा नर्तक है, इसका अर्थ है कि तुमने जो भी किया है, तुम जो भी कर रहे
हो और करोगे, वह तुमसे भिन्न नहीं है। वह तुम्हारा ही खेल है। अगर तुम दुख झेल रहे हो, तो यह तुम्हारा ही चुनाव है। अगर तुम आनंदमग्न हो, यह भी तुम्हारा चुनाव है; कोई और जिम्मेवार नहीं।
मैं एक कालेज में प्रोफेसर था। नया-नया वहां पहुंचा। कालेज बहुत दूर
था गांव से। और सभी प्रोफेसर अपना खाना लेकर साथ ही आते थे और दोपहर को एक टेबल पर इकट्ठे होते। संयोग की ही बात थी, मैं जिनके पास बैठा था, उन्होंने

अपना टिफिन खोला, झांक कर देखा और कहा, फिर वही आलू की सब्जी और रोटी! मुझे लगा कि उन्हें शायद आलू की सब्जी और रोटी पसंद नहीं है। लेकिन नया था तो मैं कुछ बोला नहीं। दूसरे दिन फिर वही हुआ। उन्होंने फिर डब्बा खोला और कहा कि फिर वही आलू की सब्जी और रोटी! तो मैंने उनसे कहा कि अगर आलू की सब्जी और रोटी पसंद नहीं, तो अपनी पत्नी को कहें कि कुछ और बनाए। उन्होंने कहा, पत्नी! पत्नी कहां? मैं खुद ही बनाता हूं।
यही तुम्हारा जीवन है। कोई है नहीं। हंसो तो तुम हंस रहे हो, रोओ तो तुम रो रहे हो; जिम्मेवार कोई भी नहीं। यह हो सकता है कि बहुत दिन रोने से तुम्हारी रोने की आदत बन गई हो और तुम हंसना भूल गए हो। यह भी हो सकता है कि तुम इतने रोए हो कि तुमसे अब कुछ और करते बनता नहीं, अभ्यास हो गया। यह भी हो सकता है कि तुम भूल ही गए, इतने जन्मों से रो रहे हो कि तुम्हें याद ही नहीं कि कभी यह मैंने चुना था रोना। लेकिन तुम्हारे भूलने से सत्य नहीं असत्य होता। तुमने ही चुना है। तुम ही मालिक हो। और इसलिए जिस क्षण तुम तय करोगे, उसी क्षण रोना रुक जाएगा।
इस बोध से भरने का नाम ही कि मैं ही मालिक हूं, मैं ही स्रष्टा हूं, जो
भी मैं कर रहा हूं उसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूं--जीवन में क्रांति हो जाती है। जब तक तुम दूसरे को जिम्मेवार समझोगे, तब तक क्रांति असंभव है; क्योंकि तब तक तुम निर्भर रहोगे। तुम सोचते हो, दूसरे तुम्हें दुखी कर रहे हैं। तो फिर तुम कैसे सुखी हो सकोगे? असंभव है! क्योंकि दूसरों को बदलना तुम्हारे हाथ में नहीं। तुम्हारे हाथ में तो केवल स्वयं को बदलना है। अगर तुम सोचते हो कि भाग्य के कारण तुम दुखी हो रहे हो, तो फिर तुम्हारे हाथ के बाहर हो गई बात। भाग्य को तुम कैसे बदलोगे? भाग्य तुमसे ऊपर है। और तुम अगर सोचते हो कि तुम्हारी विधि में ही विधाता ने लिख दिया है जो हो रहा है, तो तुम एक परतंत्र यंत्र हो जाओगे, तुम आत्मवान न रहोगे। आत्मा का अर्थ ही यह है कि तुम स्वतंत्र हो; और चाहे कितनी ही पीड़ा तुम भोग रहे हो, तुम्हारे ही निर्णय का फल है। और जिस दिन तुम निर्णय बदलोगे, उसी दिन जीवन बदल जाएगा।
फिर जीवन को देखने के ढंग पर सब कुछ निर्भर करता है।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर में मेहमान था। सुबह बगीचे में घूमते वक्त अचानक मेरी आंख पड़ी, देखा कि पत्नी ने एक प्याली नसरुद्दीन के सिर की तरफ फेंकी। लगी नहीं सिर में, दीवार से टकरा कर चकनाचूर हो गई। नसरुद्दीन ने भी देख लिया कि मैंने देख लिया है। तो वह बाहर आया और उसने कहा, क्षमा करें! आप कहीं कुछ और न सोच लें! हम बड़े सुखी हैं। ऐसे कभी-कभार पत्नी चीजें फेंकती है, मगर इससे हमारे सुख में कोई भेद नहीं पड़ता। मैं थोड़ा हैरान हुआ। मैंने पूछा, थोड़ा विस्तार से कहो। तो उसने कहा, अगर उसका निशाना लग जाता है तो वह खुश होती है और अगर चूक जाता है तो मैं खुश होता हूं। वैसे हमारी खुशी में कोई भेद नहीं पड़ता है। और कभी-कभी निशाना लगता है, कभी-कभी चूकता है। हम दोनों खुश हैं।
जिंदगी को देखने के ढंग पर निर्भर करता है। तुम ही बनाते हो; फिर तुम
ही देखते हो; फिर तुम ही व्याख्या करते हो। तुम बिल्कुल अकेले हो। तुम्हारे संसार में कोई दूसरा कभी प्रवेश नहीं करता। प्रवेश कर भी नहीं सकता। कोई प्रवेश भी करता है तो वह तुमने ही आज्ञा दी है।
इससे एक कठिनाई है, इसीलिए तुम इसे भूले हुए हो। कठिनाई यह है कि यह अनुभव करना कि मैं ही जिम्मेवार हूं, तब तुम दुखी न हो सकोगे। और अगर दुखी होना चाहते हो तो शिकायत न कर सकोगे। और उन दोनों में बड़ा रस है। दुखी होने में भी बड़ा रस है; क्योंकि जब तुम दुखी होते हो, तब तुम शहीद होते हो। शहीदगी का बड़ा मजा है। जब तुम दुखी होते हो, तब तुम सहानुभूति मांगते हो। सहानुभूति में बड़ा रस है।
इसीलिए तो लोग अपने दुख की कथा एक-दूसरे को बढ़ा-चढ़ा कर सुनाते रहते हैं। क्या कारण होगा कि लोग दुख की इतनी कथा सुनाते रहते हैं? कोई सुनना भी नहीं चाहता। कौन उत्सुक है तुम्हारे दुख में? और दुख की बातें सुन कर दूसरा भी उदास ही होगा; कोई दूसरे के जीवन में फूल तो नहीं खिल जाएंगे। लेकिन तुम सुनाए जा रहे हो। और दूसरा तभी तक सुनता है, जब तक उसे आशा रहती है कि तुम भी उसकी सुनोगे। अन्यथा वह खिसक जाएगा। तुम उन्हीं आदमियों को

कहते हो कि उबाने वाले हैं, जो तुम्हें बोलने का मौका ही नहीं देते। तो एक समझौता है--तुम हमें उबाओ; हम तुम्हें उबाएं। तुम अपने दुख की कथा कह कर हमें परेशान करो; हम अपने दुख की कथा कह कर तुम्हें परेशान करें और बराबर हो जाएं।
क्यों आदमी दुख की इतनी चर्चा करता है? क्या कारण है?
सहानुभूति की अपेक्षा रखता है। दुख की बात करेगा, तो कोई पुचकारेगा, सहलाएगा; कोई कहेगा कि बड़े दुखी हो। दूसरे का प्रेम मांग रहे हो तुम दुख के द्वारा। इसलिए दुख में तुम्हारा बड़ा इनवेस्टमेंट है। उसमें तुमने बहुत अपनी संपत्ति लगाई है। जब भी तुम दुखी होते हो, तभी तुम्हें थोड़ी सी आशा चारों तरफ से मिलती है। लोग तुम्हें सहारा देते मालूम पड़ते हैं; सहानुभूति दिखलाते हैं। प्रेम तुम्हें जीवन में मिला नहीं है और सहानुभूति कचरा है; लेकिन प्रेम के लिए वही निकटतम परिपूरक है। जिसको असली सोना न मिला हो, वह फिर नकली सोने से काम चलाने लगता है।
सहानुभूति नकली प्रेम है। आकांक्षा तो प्रेम की थी, लेकिन प्रेम को
तो अर्जित करना होता है; क्योंकि प्रेम केवल उसी को मिलता है जो प्रेम दे सकता है। प्रेम दान का प्रतिफल है। तुम देने में असमर्थ हो; तुम सिर्फ मांग रहे हो। तुम भिखमंगे हो, तुम सम्राट नहीं! और मांगते हो, तो जितने ज्यादा दुखी हो, उतनी ही आसानी हो जाती है।
भिखमंगे को रास्ते पर देखो! वह झूठे घाव अपने शरीर पर बनाए हुए है। वे घाव असली नहीं हैं। वह मवाद ऊपर से लगाई गई है। लेकिन जब वह बिल्कुल दुख से भरा होता है, तब तुमको भी न करना मुश्किल हो जाता है; ग्लानि होती है, अहंकार को चोट लगती है कि इतने दुखी आदमी को कैसे न करो।
अगर वह स्वस्थ, तगड़ा हो, तो तुम भी कहोगे कि मुसतंडे हो; कुछ करो, कुछ कमाओ; कमा सकते हो! लेकिन दुखी आदमी को देख कर तुम बोल नहीं पाते। तुम्हें सहानुभूति दिखानी ही पड़ती है, चाहे झूठी ही सही।
इसलिए तुम दुख को पकड़े हो, क्योंकि तुम्हें प्रेम नहीं मिला। जिसको प्रेम मिला है जीवन में, वह आनंदित होगा; वह आनंद को पकड़ेगा, दुख को नहीं। दुख पकड़ने जैसा नहीं है।
फिर, तुम्हें सुविधा है शिकायत करने में। क्योंकि जब भी तुम कहते हो दूसरे तुम्हें दुखी कर रहे हैं, तब जिम्मेवारी का बोझ हट जाता है। और जब मैं तुमसे कहता हूं--और सारे शास्त्र तुमसे कहते हैं, और सारे बुद्ध पुरुषों ने एक ही बात कही है--कि तुम ही जिम्मेवार हो, कोई और नहीं, तब बड़ा बोझ मालूम पड़ता है। सबसे बड़ा बोझ तो यह मालूम पड़ता है कि अब शिकायत तुम किसी पर फेंक नहीं सकते। और उससे भी बड़ा बोझ इस बात का पड़ता है कि अब तुम सहानुभूति किससे मांगोगे, अगर तुम ही जिम्मेवार हो!
और भी गहरे में यह कठिनाई खड़ी होती है कि अगर तुम ही जिम्मेवार हो, तो बदलाहट की जा सकती है। और बदलाहट करना एक क्रांति है, एक रूपांतरण से गुजरना है। तुम्हारी पुरानी आदतें हैं, वे सभी तोड़नी होंगी। तुम्हारा एक पुराना ढांचा है, वह सभी गलत है। अब तक तुमने जो मकान बनाया है, वह पूरा का पूरा नरक है। लेकिन तुमने ही बनाया है, चाहे कितना ही बड़ा बना लिया हो। उसे पूरा गिराना पड़ेगा। अतीत का सारा का सारा श्रम व्यर्थ जाता मालूम पड़ता है। इसलिए तुम इस सत्य से बचने की कोशिश करते हो। लेकिन जितने तुम बचोगे, उतने ही तुम भटकोगे।
तो पहली बात समझ लो कि तुम ही केंद्र हो अपने अस्तित्व के; कोई जिम्मेवार नहीं। और कितना ही बोझ मालूम पड़े, लेकिन तुम ही जिम्मेवार हो, इस सत्य को अगर स्वीकार कर लोगे तो जल्दी ही सारे दुख खो जाएंगे। क्योंकि एक बार यह साफ हो जाए कि मैं ही बना रहा हूं अपना खेल, तो मिटाने में कितनी देर लगती है? तब कोई दूसरा नहीं है। और फिर अगर तुम दुख में ही रस लेना चाहते हो, तुम्हारी मर्जी! लेकिन फिर शिकायत करने का कोई कारण नहीं। अगर तुम संसार में ही भटकना चाहते हो, तुम्हारी मौज! अगर तुम नरक ही जाना चाहते हो, तो तुम्हारा चुनाव! लेकिन फिर शिकायत का कोई कारण नहीं है। तब तुम प्रसन्नता से दुख में जीओ।
ये सूत्र इसी अर्थ में बड़े कीमती हैं। पहला सूत्र हैः "आत्मा नर्तक है।"

तुम्हारे कृत्य और तुम्हारा अस्तित्व अलग-अलग नहीं हैं। तुम्हारे कृत्य तुम्हारे ही अस्तित्व से निकलते हैं; जैसे नृत्य निकलता है नर्तक से। और नर्तक अगर चिल्लाने लगे कि मैं इस नृत्य से परेशान हूं, मैं इसे नहीं करना चाहता। तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, रुक जाओ! ठहर जाओ! कौन तुमसे कहता है कि नाचो? तुम ही नाच रहे हो। रुक जाओ, अगर यह सब व्यर्थ है और तुम्हें रसकर और प्रीतिकर नहीं है। और अगर तुम्हें दुख मिलता है, तो रुको, ठहरो! नृत्य खो जाएगा!
आत्मा नर्तक है, इसका अर्थ यह है कि तुमने जो भी किया है, तुमने ही किया है, तुमसे ही निकला है। जैसे वृक्षों से पत्ते निकलते हैं, ऐसे तुम्हारे अस्तित्व से तुम्हारे कृत्य निकलते हैं। रुक जाओ, और कृत्य खो जाएंगे।
और दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है--आत्मा नर्तक है--अगर तुम्हारे दुख के नृत्य को, इस विषाद और संताप से भरे जीवन को तुम रोक दोगे, तो नर्तन तो नहीं रुकेगा, नर्तन का रूप बदलेगा। क्योंकि नर्तन तो रुक ही नहीं सकता; वह तुम्हारे जीवन का अंग है, वह तुम्हारा स्वभाव है। नाचते तो तुम रहोगे ही, लेकिन तब आंसू नहीं होंगे, मुस्कुराहट होगी। तब तुम्हारे नृत्य में एक गीत होगा, एक पुलक होगी, एक आनंद होगा, एक हर्षोन्माद होगा, एक मस्ती होगी। अभी तुम्हारा नृत्य नारकीय है, तब स्वर्गीय होगा।
एक मुसलमान फकीर हुआ--इब्राहीम। कभी सम्राट था, फिर फकीर हुआ। वह भारत यात्रा पर आया था। और उसने एक साधु को पूछा; क्योंकि साधु उदास दिखा। अक्सर साधु उदास होते हैं; क्योंकि उनकी जिंदगी का रस उनकी गृहस्थी में था। कोई दूसरा रस वे जानते नहीं। और गृहस्थी छोड़ बैठते हैं, सब रस खो जाता है। दुखी भला न हों, लेकिन उदास होते हैं।
दुख और उदास में थोड़ा फर्क है। दुख का अर्थ है कि उदासी में एक तीव्रता है; उदासी में भी एक जोशखरोश है; उदासी में एक बाढ़ है। दो तरह की बाढ़ होती हैं। एक दुख की बाढ़ होती है, एक सुख की बाढ़ होती है। एक जब तुम उदासी से इतने भर जाते हो कि आंसू बहने लगते हैं; एक जब तुम खुशी से इतने भर जाते हो कि आंसू बहने लगते हैं--दोनों बाढ़ हैं।
जब कोई आदमी संसार को छोड़ कर भाग जाता है, क्योंकि उसे लगता है यहां दुख है, तो यहां सुख है, वह भी छूट जाता है। तब वह उदास हो जाता है; कोई बाढ़ नहीं आती--न सुख की, न दुख की।
तुम अपने साधुओं को, संन्यासियों को जाकर देखो। वे मुर्दा हैं; जैसे जीते जी मर गए हों; नर्तन जैसे बंद हो गया है। दुख को तो छोड़ भागे हैं, साथ में सुख भी छूट गया है; क्योंकि वहीं सुख भी दिखाई पड़ता था। उनकी आशा यह थी कि जब वे दुख को छोड़ कर भाग जाएंगे, तो सुख ही सुख बचेगा। यहीं भूल है। संसार में दुख है; वहां सुख भी है। तुम सुख को तो बचाना चाहते हो, दुख को छोड़ना चाहते हो। दुख को छोड़ कर भागते हो, सुख भी छूट जाता है।
वह साधु उदास था। साधारण साधु रहा होगा। क्योंकि सच में जो साधु है,
वह सुख-दुख दोनों को छोड़ता है। सुख को बचाना नहीं चाहता; सुख-दुख दोनों को छोड़ता है। जैसे ही सुख-दुख दोनों को छोड़ता है, उदासी खो जाती है; क्योंकि उदासी उन दोनों का मध्य बिंदु है। जब तुमने दोनों ही छोड़ दिए, तो मध्य बिंदु भी खो जाता है। और तब एक नयी आयाम की यात्रा शुरू होती है, जो आनंद, शांति, निर्वाण--जो भी नाम हम देना चाहें दें।
आनंद में बाढ़ नहीं है; आनंद ठंडी किरण है, ठंडा प्रकाश है; वहां बाढ़ नहीं है। आनंद उदासी जैसा है एक अर्थ में। उदासी सुख और दुख के मध्य में है। आनंद सुख और दुख के पार है। उदासी एक स्थिति है अंधकार की, जहां सब शिथिल हो गया; मृत्यु की, जहां सब आलस्य में पड़ गया। आनंद एक सतेज अवस्था है जागृति की; लेकिन न वहां सुख है, न दुख है। इस संबंध में आनंद भी उदासी जैसा है--वहां न सुख है, न दुख है। वहां प्रकाश तो है, लेकिन प्रकाश सुख जैसा नहीं है; क्योंकि सुख के प्रकाश में भी तीव्रता होती है और पसीना आ जाता है।
सुख से भी लोग इसीलिए थक जाते हैं। तुम ज्यादा देर सुखी नहीं रह सकते। क्योंकि सुख थकाएगा; उसमें त्वरा है, तीव्रता है, बुखार है। अगर तुम्हें रोज-रोज लाटरी मिलने लगे, तुम मरोगे, तुम जिंदा न बचोगे। बस वह एकाध बार

मिले तो ठीक है। क्योंकि रोज-रोज मिलने लगे तो इतना ज्यादा हो जाएगा तनाव कि तुम सो न सकोगे। छाती इतनी धड़केगी कि तुम विश्राम न कर सकोगे। एक्साइटमेंट, उत्तेजना इतनी होगी कि वह तुम्हारी हत्या बन जाएगी। इसलिए सुख हमेशा होमियोपैथी की मात्रा में झेला जा सकता है। एलोपैथी की मात्रा तुम न झेल सकोगे। बस जरा-जरा सी पुड़िया में मिलता है--काफी दुख, थोड़ा सा सुख--बस उतना ही झेला जा सकता है। क्योंकि वह भी तनाव है। उसमें भी गरमी है, उत्ताप है।
दुख भी तनाव है, सुख भी तनाव है। दोनों में उत्तेजना है। आनंद अनुत्तेजित चित्त की दशा है। वहां प्रकाश तो है, लेकिन ताप नहीं है। वहां नृत्य तो है, लेकिन उत्तेजना नहीं है। वहां एक शांत-मौन नृत्य है, जहां कोई आवाज नहीं होती। वहां शून्य में नर्तन है, जिससे कोई थकान नहीं आती। वह शरीर का नहीं है। सुख और दुख दोनों शरीर के हैं; आत्मा का है आनंद। वह एक दूसरा ही नर्तन है।
वह साधु साधारण साधु था, जैसे तुम्हें सब जगह मिल जाएंगे। इब्राहीम
ने उस साधु को उदास देखा तो हैरान हुआ। क्योंकि इब्राहीम की धारणा थी कि साधु आनंदित हो जाना चाहिए। तो उसने पूछा कि साधु का लक्षण क्या है? इब्राहीम ने साधु को पूछा, साधु का लक्षण क्या है?
उस साधु ने कहा, रोटी मिल जाए तो स्वीकार कर ले और न मिले तो संतोष करे।
तो इब्राहीम ने कहा, यह तो कुत्ते का लक्षण है। इसमें साधु का क्या? कुत्ता भी यही करता है--मिल जाए तो ठीक, न मिले तो संतुष्ट है।
साधु हैरान हुआ, तो उसने कहा कि आप साधु की क्या परिभाषा करते हैं?
तो इब्राहीम ने कहा, मिल जाए तो बांट कर खाए और न मिले तो नाच कर धन्यवाद दे परमात्मा को कि तूने तपश्चर्या का एक अवसर दिया।
साधु की परिभाषाः मिल जाए तो बांट कर खाए। जो भी मिले, उसे बांटे, वही साधु है। उसे पकड़े और रोके तो गृहस्थ है। बचाए तो गृहस्थ है, बांटे तो साधु है। वह चाहे आनंद हो, चाहे ज्ञान हो--कुछ भी हो--चाहे ध्यान हो। जो भी मिल जाए, उसे बांट दे। क्योंकि एक बड़े मजे की बात है, इस संसार में जो चीजें हैं, अगर तुम उन्हें बांटो, तो वे कम हो जाएंगी। इसलिए आदमी पकड़ते हैं। तुम तिजोरी को बांटोगे, तो ज्यादा दिन तिजोरी बचेगी नहीं। क्योंकि इस संसार में सभी सीमित है, बांटा कि गया। इसलिए संसार में सीमित को पकड़ना पड़ता है। पर इस आदत को आत्मा में ले जाने की कोई जरूरत नहीं; वहां सब संपदा असीम है। वहां जितना बांटो, उतना बढ़ता है; जितना उलीचो, उतना नया आता है। सागर है अनंत!
इब्राहीम ठीक कहता हैः मिले तो बांट कर खा ले; अकेला न खाए, बांटे; न मिले तो नाच कर धन्यवाद दे। संतोष काफी नहीं है, क्योंकि संतोष में तो उदासी है।
लोग अक्सर कहते हैं कि संतोषी सदा सुखी। गलती में हैं। संतोषी सुखी नहीं होता, संतोषी सिर्फ सुख मानता है; भीतर गहरे में दुखी होता है। लेकिन कुछ भी नहीं कर पाता। अवश है, इसलिए संतोष को धार लेता है। न, संतोषी नहीं। संतोष तो उदासी का हिस्सा है। सह लिया, ज्यादा शोरगुल न मचाया, शिकायत न की, यह मरे हुए चित्त का लक्षण हुआ।
इब्राहीम ने कहा कि न मिले तो नाच कर धन्यवाद दे कि तूने एक अवसर दिया तपश्चर्या का। आज उपवास होगा। मिले तो धन्यवाद, क्योंकि बांटा, फैलाया। न मिला तो धन्यवाद।
साधु के आनंद को नष्ट नहीं किया जा सकता। और तुम्हारे दुख को नष्ट भी किया जाए तो ज्यादा से ज्यादा उदासी फलित होती है। तुम किसी तरह दुख को छोड़ भी दो तो बस उदास हो जाते हो। तुम्हें दुख भी संलग्न रखता है, काम में लगाए रखता है। तुमने ख्याल नहीं किया, अगर तुम्हारे सब दुख छिन जाएं तो तुम आत्महत्या कर लोगे! क्योंकि तुम करोगे क्या फिर? कुछ बचेगा नहीं करने को।
बाप काम में लगा है; क्योंकि बेटों को पढ़ाना है, शादी करनी है। सबकी शादी हो जाए, सबका काम निपट जाए इसी वक्त, तो बाप क्या करेगा? जिंदगी बेकार मालूम होगी। बेकार की चीजों में तुम्हें कारोबार मिला हुआ है। उससे

तुम्हें लगता है कि तुम कुछ कर रहे हो, महत्वपूर्ण हो, जरूरी हो; तुम्हारे बिना दुनिया न चलेगी; बेटे का क्या होगा, पत्नी का क्या होगा! इससे तुम्हारे अहंकार को सहारा मिलता है कि तुम आवश्यक हो; तुमसे ही सब चल रहा है। हालांकि सब तुम्हारे बिना भी चलता रहेगा। तुम नहीं थे, तब भी चल रहा था; तुम नहीं होओगे, तब भी चलेगा। लेकिन बीच में थोड़ी देर को तुम सपना देख लेते हो अपने जरूरी होने का।
तो ज्यादा से ज्यादा तुम अगर दुख को छोड़ो भी तो तुम संतोष कर सकते हो। संतोष में दुख छिपा हुआ है। संतोष ऊपर-ऊपर है; भीतर दुख का घाव है। वह मलहम-पट्टी है; वह उपचार नहीं है।
न, साधु संतोषी नहीं होता; साधु आनंदित होता है। परिस्थिति कोई भी हो, मिलेगा तो बांट कर आनंदित होगा; नहीं मिलेगा तो न मिलने में भी नाचेगा और आनंदित होगा।
आत्मा का स्वभाव नर्तन है, और आत्मा दो तरह से नाच सकती है। इस तरह से नाच सकती है कि चारों तरफ दुख का जाल पैदा हो जाए, चारों तरफ उदासी भर जाए, चारों तरफ अंधकार पैदा हो। और आत्मा ऐसे भी नाच सकती है कि चारों तरफ किरणें नाचने लगें, और चारों तरफ फूल खिल जाएं।
संन्यास आनंद का नृत्य है और गृहस्थ दुख का नृत्य! नरक कहीं और नहीं है। तुम इस आशा में मत बैठे रहना कि नरक कहीं और है। नरक तुम्हारे गलत नाचने का ढंग है, जिससे दुख पैदा होता है। स्वर्ग भी कहीं और नहीं है। स्वर्ग तुम्हारे ठीक नाचने का ढंग है, जिससे तुम जहां भी हो, वहां स्वर्ग पैदा हो जाता है। स्वर्ग तुम्हारे नृत्य का गुण है। नरक भी तुम्हारे नृत्य का गुण है।
तुम नाचना नहीं जानते; लेकिन सदा तुम सोचते हो कि आंगन टेढ़ा है, इसलिए नाच ठीक नहीं हो रहा। आंगन टेढ़ा जरा भी नहीं है। और जिसे नाचना आता है, टेढ़ा आंगन भी ठीक है, कोई फर्क नहीं पड़ता है। और जिसे नाचना नहीं आता, उसके लिए बिल्कुल ठीक ज्यामिति से बनाया गया नब्बे कोणों का आंगन भी... नाचना नहीं आ जाएगा इससे।
मैंने सुना है, एक आदमी आंख के आपरेशन के लिए गया। आपरेशन के पहले डाक्टर से उसने पूछा कि मुझे बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता; मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा? डाक्टर ने चिकित्सा के पहले परीक्षा की और कहा कि बिल्कुल! उस आदमी ने कहा, क्या मैं पढ़ भी सकूंगा? डाक्टर ने कहा, बिल्कुल!
फिर उस आदमी की आंखें ठीक हो गईं, फिर दिखाई भी पड़ने लगा। वह बड़ा नाराज
एक दिन डाक्टर के घर पहुंचा और उसने कहा कि तुम झूठ बोले! पढ़ तो मैं अब भी नहीं सकता। उस डाक्टर ने कहा, तुम्हें सब दिखाई पड़ने लगा, पढ़ क्यों नहीं सकते? उसने कहा, पढ़ना तो मुझे आता ही नहीं।
आंख भी ठीक हो जाए और पढ़ना न आता हो, तो पढ़ना नहीं आ जाएगा। आंगन कितना
ही सीधा हो जाए, नाचना न आता हो, तो नाचना आंगन के सीधे होने पर निर्भर नहीं है, वह सीखना पड़ेगा। और ध्यान रहे, कोई और सिखाने वाला नहीं है। तुम बिल्कुल अकेले हो। इशारे बुद्ध पुरुष दे सकते हैं, लेकिन सीखना तुम्हीं को पड़ेगा। कोई तुम्हें हाथ पकड़ा कर सिखा नहीं सकता। वह जीवन का नृत्य इतना भीतर है, इतना गहरा है कि वहां बाहर के हाथ पहुंच नहीं सकते। वहां तुम्हारे सिवाय किसी का प्रवेश नहीं है। वहां तुम निपट अकेले हो। बाकी सब बाहर है।
"आत्मा नर्तक है।"
सुख और दुख--दो ढंग से आत्मा नाच सकती है। अगर तुम दुखी हो, तो तुमने गलत ढंग सीख लिए हैं नाचने के। ढंग को बदलो। किसी के ऊपर दोष मत डालो। कोई शिकायत मत करो। जब तक शिकायत करोगे, तुम गलत ही नाचते रहोगे; क्योंकि तुम्हें यह ख्याल ही न आएगा कि भूल मेरी है; सदा भूल दूसरे की है। शिकायत बंद करो। अपनी तरफ देखो। और जहां-जहां तुम्हें दुख पैदा होता है, खोजो गौर से, तुम्हारे भीतर ही उसके कारण मिलेंगे। उन कारणों को छोड़ दो। क्योंकि जिनसे दुख पैदा होता है, उन कारणों को किए जाने का प्रयोजन क्या है? जिनसे सिर्फ जहर के फल लगते हों, उन बीजों को तुम क्यों बोए चले जाते हो? हर वर्ष क्यों फसल काट लेते हो उनकी? बेहतर तो यह होगा कि तुम फसल ही न बोओ, तो भी ठीक रहेगा। खाली पड़ा रहे खेत तो भी बुरा नहीं है। और अच्छा यह होगा कि कुछ

दिन खाली ही पड़ा रहे। ताकि पुराने सब बीज दग्ध हो जाएं; ताकि तुम नये बीज बो सको।
खाली पड़े रहने से तुम डरते क्यों हो? ध्यान बीच की खाली अवस्था है। ध्यान, जैसे कोई किसान साल, दो साल के लिए खेत को खाली छोड़ दे, कुछ भी न बोए, ऐसा ध्यान बीच की अवस्था है; नरक के बीज और स्वर्ग के बीज के बीच खाली स्थान है। कुछ दिन के लिए छोड़ दो, कुछ मत बोओ। एक बात ध्यान रखो, गलत करने से न करना बेहतर है। कुछ देर के लिए रुक ही जाओ, कुछ मत करो। जब तक कि ठीक करना न आ जाए, तब तक न करना ही बेहतर है। क्योंकि हर कृत्य, गलत कृत्य, गलत कृत्यों कीशृंखला पैदा करता है। उसको ही हम कर्मों का जाल कहते हैं।
तुम कुछ न कुछ किए ही चले जा रहे हो। तुम बस खाली नहीं बैठ सकते, कुछ न कुछ करोगे। तुम खाली बैठ जाओ--वही ध्यान है--ताकि पुरानी आदत छूट जाए और उस खाली बैठने में तुम्हें साफ-साफ दिखाई पड़ने लगे। क्योंकि तुम इतने व्यस्त हो कि देखने की फुर्सत और सुविधा नहीं है, समय नहीं है। ध्यान का इतना ही अर्थ है कि तुम चुप एक घंटा, दो घंटा, तीन घंटा--जितनी देर तुम्हें मिल जाए--खाली बैठ जाओ, कुछ मत करो, सिर्फ देखते रहो। ताकि धीरे-धीरे तुम्हारी आंख पैनी और गहरी हो जाए और तुम्हें यह दिखाई पड़ने लगे कि सभी जो हुआ मेरे जीवन में, मैं ही उसका कारण था। यह प्रतीति आते ही व्यर्थ का बोना बंद हो जाएगा। तब एक सार्थक नृत्य पैदा होता है।
धर्म परम आनंद है। वह त्याग की उदासी नहीं, वह अस्तित्व का भोग है। वह महाभोग में सम्मिलित होना है। वह अस्तित्व के नृत्य के साथ एक हो जाना है। धर्म को तुम त्याग और उदासी की भाषा में सोचना ही मत। वह गलत धर्म है, जो त्याग और उदासी की भाषा में सोचता है। सही धर्म हमेशा नृत्य है। वह आनंद का है। सही धर्म हमेशा बजती हुई बांसुरी है।
"आत्मा नर्तक है। अंतरात्मा रंगमंच है।"
और यह जो नृत्य हो रहा है, यह कहीं बाहर नहीं हो रहा है; यह तुम्हारे भीतर ही चल रहा है। यह संसार रंगमंच नहीं है; तुम्हारी अंतरात्मा ही रंगमंच है। तुम कितना ही सोचो कि तुम बाहर चले गए हो, कोई बाहर जा नहीं सकता। जाओगे कैसे बाहर? तुम रहोगे अपने भीतर ही। वहीं सब खेल चल रहा है। सब खेल वहां चलता है, फिर बाहर उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं। ऐसे जैसे तुम कभी सिनेमागृह में जाते हो, तो परदे पर सब खेल दिखाई पड़ता है; लेकिन खेल असली में तुम्हारी पीठ के पीछे प्रोजेक्टर में चलता होता है, परदे पर सिर्फ दिखाई पड़ता है। परदा असली रंगमंच नहीं है। लेकिन आंखें तुम्हारी परदे पर लगी रहती हैं और तुम भूल ही जाओगे--भूल ही जाते हो--कि असली चीज पीछे चल रही है। सारा फिल्म का जाल पीछे है, परदे पर तो केवल उसका प्रतिफलन है।
"अंतरात्मा रंगमंच है।"
प्रोजेक्टर भीतर है। सब खेल के बीज भीतर से शुरू होते हैं, बाहर तो सिर्फ खबरें सुनाई पड़ती हैं, प्रतिध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। और अगर बाहर दुख है, तो जानना कि भीतर तुम गलत फिल्म लिए बैठे हो। और बाहर तुम जो भी करते हो, गलत हो जाता है, तो उसका अर्थ है कि भीतर से तुम जो भी निकालते हो, वह सब गलत है। परदे को बदलने से कुछ भी न होगा। परदे को तुम कितना ही लीपो- पोतो, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारी फिल्म अगर गलत भीतर से आ रही है, तो परदा उसी कहानी को दोहराता रहेगा।
और न केवल तुम फिल्म हो, बल्कि तुम एक टूटे हुए रिकार्ड की भांति हो, जिसमें एक ही लाइन दोहरती जाती है, पुनरुक्ति होती जाती है।
तुमने कभी भीतर अपनी खोपड़ी की जांच-पड़ताल की? तो तुम पाओगे, वहां वही- वही चीजें दोहरती रहती हैं--टूटा हुआ रिकार्ड! तुम वही-वही दोहराते रहते हो। कुछ नया वहां नहीं घटता। और वहां तुम जो भी दोहराते हो, उसके प्रतिफलन चारों तरफ सुनाई पड़ते हैं, चारों तरफ जगत के परदे पर उसका प्रतिफलन होता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन फिल्म देखने गया। पत्नी थी, साथ में उसका बच्चा था। और मुल्ला नसरुद्दीन का बच्चा! कोई ढंग का तो हो नहीं सकता; क्योंकि जब भीतर सब बेढंगा हो तो बाहर भी सब बेढंगा ही आता है। तो वह रो रहा है, चिल्ला रहा है, शोरगुल मचा रहा है। मैनेजर को कम से कम सात दफा आना

पड़ा कि भाई, आप अपने पैसे वापस ले लें और जाएं या इस बच्चे को चुप रखें। मगर वह काहे को चुप रहने वाला था! बार-बार मैनेजर को आना पड़ा। नसरुद्दीन सुन लेता और चुप बैठा देखता रहा। जब फिल्म बिल्कुल आखिरी करीब आने लगी तो उसने अपनी पत्नी से पूछा, क्या ख्याल है, फिल्म ठीक कि गलत? पत्नी ने कहा, बिल्कुल बेकार है। तो उसने कहा, अब देर मत कर। जोर से चिउंटी ले दे लड़के को, ताकि पैसे वापस लें और घर जाएं।
तुम बहुत दिन से देख रहे हो! कई जन्मों से देख रहे हो, सब गलत है! कब चिउंटी लोगे? खुद को लेनी पड़ेगी; यहां कोई दूसरा नहीं है। कब तुम जागोगे और वापस लौटोगे? और क्या जरूरत है इस गलत को देखने की जो तुम्हें कष्ट से भर रहा है, जो तुम्हें पीड़ा और बोझ दे रहा है, सिवाय संताप के और दुख-स्वप्नों के जिससे कुछ भी पैदा नहीं होता? इस भवन को तुम छोड़ सकते हो। इस भवन में तुम अपने ही कारण रुके हो। क्यों देर कर रहे हो? अभी मन भरा नहीं? अगर मन न भरा हो, तो फिर बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, जीसस, इनकी बकवास में क्यों पड़ते हो? अगर मन न भरा हो, तो इनकी बातें मत सुनो; इनसे दूर रहो, इनसे बचो। क्योंकि ये केवल उनके लिए ही सार्थक हैं, जिनका मन भर गया हो और जिन्होंने फिल्म काफी देख ली; जो ऊब गए अब वहां से; जो अब नरक से बेचैन हो गए हैं और एक स्वर्गीय नृत्य की आकांक्षा जिनमें जग गई है; जिनकी अभीप्सा अब परमात्मा के लिए है।
लेकिन तुम्हारी मनोदशा ऐसी है कि तुम दो नावों में सवार होना चाहते हो। उसी से तुम्हारा कष्ट और भी बढ़ जाता है। तुम इस संसार को भी भोगना चाहते हो। चाहे कितना ही दुख हो यहां, लेकिन थोड़ी आशा बनी रहती है कि सुख होगा, बस अब होने के ही करीब है। आशा टिकाए रखती है। और तुम्हारा अनुभव तुमसे कहता है कि होने वाला नहीं है; क्योंकि कई दफा तुम यह आशा कर चुके हो, सदा असफल गई। अनुभव तो बुद्धों के पक्ष में है; आशा बुद्धों के खिलाफ है। और तुम दोनों से भरे हो। और दो नावें हैं। तो आशा की नाव पर भी तुम एक पैर रखे रहते हो कि शायद थोड़ी देर और। इस स्त्री से सुख नहीं मिला तो शायद दूसरी स्त्री से मिल जाए! इस बेटे से सुख नहीं मिला तो दूसरे बेटे से मिल जाए! इस धंधे में सफलता नहीं मिली तो दूसरे धंधे में मिल जाए! तुम सदा आस-पास की चीजें बदलते रहते हो। इस मकान में सुख नहीं तो दूसरे मकान में मिल जाए! यह छोटी है तिजोरी, थोड़ी बड़ी हो जाए तो मिलेगा। तुम कुछ न कुछ आस-पास बदलते रहते हो--परदे में फर्क करते रहते हो। लेकिन तुम्हारे भीतर की कथा वही है; वही कथा प्रोजेक्ट होती है परदे पर।
हर जगह तुम्हें दुख मिलता है। अनुभव तो दुख का है, आशा सुख की है--दो नावें हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण को सुनोगे तो वे अनुभव की बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, उतर आओ आशा की नाव से, अनुभव की नाव पर सवार हो जाओ। तुम सुनते भी हो उनकी, क्योंकि उनको भी तुम इनकार नहीं कर सकते। और उन्हें देख कर भी तुम्हें भरोसा आता है कि जो हमें नहीं मिला है, लगता है इन्हें मिला है; क्योंकि उनकी दौड़ समाप्त हो गई। लेकिन भरोसा पूरा भी नहीं आता, क्योंकि पता नहीं धोखा दे रहे हों! कौन जाने, न मिला हो, ऐसे ही कह रहे हों! कौन जाने, इन्हें न मिला हो, हमें मिल जाए! ये कहते हैं, अंगूर खट्टे हैं। हो सकता है न पहुंच पाए हों अंगूरों तक और हम पहुंच जाएं!
तो आशा भी छूटती नहीं। अनुभव भी एकदम गलत है, ऐसा कहना कठिन है। इस तरह तुम द्वंद्व में हो। यह द्वंद्व ही तुम्हारी विक्षिप्तता है। और ये दोनों नावें अलग-अलग यात्रा पर हैं। तुम एक पर सवार हो जाओ। कोई जल्दी नहीं है, तुम संसार की नाव पर ही पूरे सवार हो जाओ। जल्दी ही तुम ऊब जाओगे। लेकिन यह बुद्धों की नाव पर तुम्हारा जो पैर है, यह तुम्हें संसार का भी पूरा अनुभव नहीं होने देता। वहां भी तुम आधे-आधे जाते हो; क्योंकि यह बुद्धों का ख्याल तुम्हारी आधी टांग को पकड़े हुए है। तो तुम मंदिर भी सम्हालते हो, दुकान भी सम्हालते हो; न दुकान सम्हलती है, न मंदिर सम्हलता है।
ये दोनों साथ सम्हल नहीं सकते। तुम पूरी तरह दुकान पर ही चले जाओ। भूल जाओ कि कभी कोई बुद्ध हुआ, कोई महावीर, कोई कृष्ण हुआ, शिव हुए। भूलो! ये कोई शास्त्र हैं, सब भूलो! बस खाता-बही सब कुछ हैं। एक बार तुम पूरे वहां लग जाओ, तो जल्दी ही तुम वहां से बाहर निकल आओगे। तुम्हारा अनुभव ही तुम्हें कहेगा कि सब व्यर्थ है।

वह भी नहीं हो पाता और बुद्धों की नाव में तुम पूरे सवार नहीं हो पाते; क्योंकि तुम्हारा मन कहे चला जाता है कि अभी जल्दी मत करो, अभी बहुत समय है! और अभी तुम्हारी उम्र ही क्या? ये तो बुढ़ापे की बातें हैं। जब बिल्कुल मरने लगो और एक पैर कब्र में चला जाए, तब तुम दूसरा पैर बुद्ध की नाव पर सवार कर लेना! अभी क्या जल्दी है!
तो लोग सोचते हैं कि धर्म बुढ़ापे के लिए है। जब बिल्कुल मरने लगेंगे,
तब उन्हें गंगा-जल की जरूरत पड़ती है। जब बिल्कुल मरने लगेंगे, तब कोई उनके कान में नमोकार मंत्र दोहरा दे। मरते वक्त, जब सब व्यर्थ हो गया और जब कोई ऊर्जा न बची, कोई शक्ति न बची यात्रा की, तब तुम यात्रा को तैयार होते हो। नहीं, तुम फिर गिरोगे वापस संसार में! फिर तुम उसी नाव पर सवार होओगे! ऐसा तुम अनंत बार कर चुके हो!
"आत्मा नर्तक है। अंतरात्मा रंगमंच है।"
ध्यान रखो, जो भी तुम्हें बाहर दिखाई पड़ता है, वह तुमने भीतर से बाहर डाला है। तुम जीवन में वही देखते हो, जो तुम डालते हो। और तुम्हारे जीवन में भी कई मौके आते हैं।
मैंने सुना है, एक मुसाफिरखाने में तीन यात्री मिले। एक बूढ़ा था साठ साल का, एक कोई पैंतालीस साल का अधेड़ आदमी था और एक कोई तीस साल का जवान था। तीनों बातचीत में लग गए। उस जवान आदमी ने कहा, कल रात एक ऐसी स्त्री के साथ मैंने बिताई कि इससे सुंदर स्त्री संसार में दूसरी नहीं हो सकती। और जो सुख मैंने पाया, अवर्णनीय है।
पैंतालीस साल के आदमी ने कहा, छोड़ो बकवास! बहुत स्त्रियां मैंने देखीं। वे सब अवर्णनीय जो सुख मालूम पड़ते हैं, कुछ अवर्णनीय नहीं हैं, सुख भी नहीं हैं। सुख मैंने जाना कल रात। राज-भोज में आमंत्रित था। ऐसा सुस्वादु भोजन कभी जीवन में जाना नहीं।
बूढ़े आदमी ने कहा, यह भी बकवास है। असली बात मुझसे पूछो। आज सुबह ऐसा दस्त हुआ, पेट इतना साफ हुआ, ऐसा आनंद मैंने कभी जाना नहीं; अवर्णनीय!
बस संसार के सब सुख ऐसे ही हैं। उम्र के साथ बदल जाते हैं; लेकिन तुम
ही भूल जाते हो।
तीस साल की उम्र में कामवासना बड़ा सुख देती मालूम पड़ती है। पैंतालीस साल की उम्र में भोजन ज्यादा सुखद हो जाता है। इसलिए अक्सर चालीस-पैंतालीस के पास लोग मोटे होने लगते हैं। साठ साल के करीब भोजन में कोई रस नहीं रह जाता, सिर्फ पेट ठीक से साफ हो जाए तो जो समाधि सुख मिलता है, वह किसी और चीज में नहीं। तीनों ही ठीक कह रहे हैं, क्योंकि संसार के सुख बस ऐसे ही हैं। और इन सुखों के लिए हम कितने जीवन गंवाए हैं! और ये मिल भी जाएं तो भी कुछ नहीं मिलता। क्या मिलेगा?
"अंतरात्मा रंगमंच है।"
बाहर तुम वही देखते हो जो तुम भीतर से डालते हो। जवान आदमी की आंखों
से वासना बाहर जाती है। उसका सारा शरीर वासना के तत्वों से भरा है। वह जहां भी देखता है, वहां स्त्री दिखाई पड़ती है। सब तरफ कामवासना ही उसे पकड़ लेती है।
मुल्ला नसरुद्दीन जवान था। पत्नी के साथ, एक चित्रों की प्रदर्शनी थी, वहां गया। नयी-नयी शादी थी और जगह-जगह घूमने का ख्याल था। प्रदर्शनी में बड़े कीमती चित्र थे। एक चित्र के पास नसरुद्दीन रुक गया और देर तक ठहरा रहा। भूल ही गया कि पत्नी भी साथ है। चित्र एक नग्न स्त्री का था--अति सुंदर! और नग्नता बस थोड़े से दो-चार पत्तों से ढंकी थी। चित्र का नाम थाः वसंत। वह ठगा सा खड़ा था। आखिर पत्नी ने उसका हाथ झकझोरा और कहा, क्या पतझड़ की प्रतीक्षा कर रहे हो?
बस ऐसा ही आदमी का मन है। पत्नी ठीक ही पहचानी। पत्नियां अक्सर ठीक पहचान लेती हैं।
तुम्हारे भीतर जो जोर मार रहा हो, वही चारों तरफ का संसार हो जाता है; तुम उसे रंगते हो। हमारे पास एक शब्द है बड़ा बहुमूल्य, दुनिया की किसी भाषा में वैसा शब्द खोजना कठिन है, वह है राग। राग का मतलब आसक्ति भी होता है, राग का मतलब रंग भी होता है। तुम्हारी सब आसक्ति, तुम्हारी आंखों से

फेंके गए रंग का परिणाम है। तुम रंगते हो चीजों को। जिन-जिन को तुम रंग लेते हो, वहीं राग पकड़ जाता है। राग का अर्थ हैः तुमने रंग लिया।
स्त्री सुंदर नहीं होती; तुम्हारे भीतर कामवासना का रंग होता है, तो स्त्री सुंदर दिखाई पड़ती है। छोटे बच्चे को कोई फिक्र नहीं है; अभी कामवासना का रंग पका नहीं। बूढ़े का रंग जा चुका। वह तुम्हारी मूढ़ता पर हंसता है; हालांकि यही मूढ़ता उसने भी की है। तुम भी हंसोगे। लेकिन मूढ़ता करते वक्त जो पहचान ले और समझ ले, वह जाग जाता है। मूढ़ता का रंग जब चला जाए, तब हंसने में कोई बहुत अर्थ नहीं है। तब तो कोई भी हंसता है। लेकिन जब मूढ़ता पकड़े हुए है और रंग जोर में है, तब भी तुम जाग जाओ और पहचान लो कि सब भीतर का ही खेल बाहर दिखाई पड़ रहा है; बाहर कुछ भी नहीं है, कोरा परदा है। अंतरात्मा ही रंगमंच है, और वहीं प्रोजेक्टर है, और वहीं से हम सारा फैलाव कर रहे हैं।
"बुद्धि के वश में होने से सत्व की सिद्धि होती है।"
और यह जो खेल चल रहा है, तब तक चलता रहेगा और तुम इसमें भटके रहोगे, जब
तक बुद्धि वश में न हो। बुद्धि के वश में होने से सत्व की सिद्धि हो जाती है। जैसे ही तुम्हें यह स्मरण आ जाए कि सारा खेल भीतर से चल रहा है, तो फिर संसार को वश में करने की तुम फिक्र छोड़ दोगे; वह कभी किसी के वश में नहीं हुआ। वहां कुछ है भी नहीं। वहां केवल परदा है। तुम अपनी बुद्धि को वश में कर लो, और सारा संसार तुम्हारे वश में हो जाता है। जैसे ही तुम्हें यह स्मरण आ जाता है कि जिस खेल को मैं देख रहा हूं, उसका निर्माता मैं हूं, अभिनेता मैं हूं, कथा लेखक मैं हूं, सभी कुछ मैं हूं, मंच भी मैं हूं--वैसे ही तुम बाहर की बदलाहट में उत्सुक नहीं रह जाते। तब तुम भीतर, मेरी जो मालकियत है, उसको पाने में लग जाते हो। वह है बुद्धि की मालकियत।
तुम अपनी बुद्धि के मालिक नहीं हो। तुम्हारे विचार तुम्हारे गुलाम नहीं हैं। तुम अपने विचारों के गुलाम हो। वे तुम्हें जहां ले जाते हैं, वहां तुम जाते हो; तुम उन्हें जहां ले जाना चाहते हो, वे जाते नहीं। एक छोटे से विचार को भी मोड़ने की कोशिश करो, वह इनकार कर देता है। एक छोटे से विचार को कहो कि शांत हो जाओ, वह बगावत कर देता है। तुम कभी इस तरफ ध्यान ही नहीं देते; क्योंकि इतना पीड़ादायी है इस तरफ ध्यान देना कि मैं अपना भी मालिक नहीं! और दुनिया के मालिक होने की तुम कोशिश में लगे रहते हो। और जो अपना ही मालिक नहीं है, वह कैसे किसी और का मालिक हो पाएगा?
अपने मन को गौर से पहचानो; उसका निरीक्षण करो। तो पहली तो बात यह समझ में आएगी कि मालिक मन हो गया है, आत्मा नहीं, तुम नहीं। मन कहता है यह करो, तो तुम्हें करना पड़ता है। न करो तो मन झंझट खड़ी करता है। न करो तो मन उदास होता है; उसकी उदासी तुम्हारी उदासी बन जाती है। करो तो कहीं पहुंचते नहीं; क्योंकि मन अंधा है। उसका आदेश मान कर तुम पहुंचोगे भी कहां! मन तो मूर्च्छा है; वह तो बेहोशी है। उसकी सुन कर तुम कहीं पहुंचने वाले नहीं हो।
तुमने सुना है कि अंधे अगर अंधों का अनुगमन करें तो खड्डों में गिरते हैं। लेकिन यही प्रत्येक कर रहा है। तुम्हारा मन बिल्कुल अंधा है, उसे कुछ भी पता नहीं है। और तुम उसका अनुगमन करते हो! जैसे छाया तुम्हारे शरीर का अनुगमन करती है, तुम मन का अनुगमन करते हो। तुम भूल ही गए हो कि मालिक तुम हो! गुलामों के साथ बहुत दिन तक जुड़े रहने पर ऐसा अक्सर हो जाता है। धीरे- धीरे गुलाम मालिक हो जाते हैं! क्योंकि जितना तुम उन पर निर्भर होने लगते हो, उतनी ही उनकी मालकियत सिद्ध होती चली जाती है। सारी साधना एक ही बात की है कि मन की मालकियत तोड़ दो।
क्या करोगे मन की मालकियत तोड़ने के लिए?
पहली बात कि मन की मालकियत तोड़नी हो, तो मन के साथ तादात्म्य तोड़ दो।
मन में एक विचार उठता है; तुम उस विचार के साथ मत जुड़ो, एक मत हो जाओ। तुम्हारे एक होने से ही उसको ताकत मिलती है। तुम दूर खड़े रहो। तुम ऐसे देखते रहो जैसे रास्ते पर लोग चल रहे हैं, तुम किनारे पर खड़े देख रहे हो। तुम ऐसे देखते रहो जैसे आकाश में बादल भटक रहे हैं और तुम दूर जमीन पर खड़े देख रहे हो। अपने को जोड़ो मत विचार से। यह मत कहो यह मेरा विचार है। जैसे ही तुमने कहा मेरा, कि तुम जुड़ गए; जुड़े कि तुम्हारी शक्ति विचार में चली

गई। और वही शक्ति तुम्हें गुलाम बनाती है। वह शक्ति भी तुम्हारी है। तुम जुड़ो मत। जैसे-जैसे तुम दूर हटोगे, टूटोगे, अलग होओगे, वैसे-वैसे विचार निर्जीव हो जाता है, निर्वीर्य हो जाता है। उसको ऊर्जा नहीं मिलती। तुम्हारी तकलीफ यह है कि तुम दीये की ज्योति तो बुझाना चाहते हो, लेकिन तेल तुम खुद ही डालते हो। इधर तुम फूंकते हो, उधर तुम तेल डालते हो। तेल डालना बंद करो--पहली बात। पुराना तेल ज्यादा देर नहीं चलेगा; पहले तेल डालना बंद करो।
क्या है तेल? जब भी कोई विचार तुम्हें पकड़ता है--क्रोध ने पकड़ा, तुम तत्क्षण क्रोध के साथ एक हो जाते हो। तुम कहते हो, मैं क्रोधित हो गया। अब सच्चाई यह है कि तुम क्रोध के साथ इतने एक हो गए कि तुम्हारी पूरी शक्ति क्रोध को मिल रही है। तुम छाया हो गए, वह मालिक हो गया! जब क्रोध आए, तब तुम दूर खड़े होकर देखो। उठने दो क्रोध को, फैलने दो शरीर में, धुएं की तरह तुम्हें चारों तरफ से घेरेगा, घेरने दो। तुम एक बात स्मरण रखो कि मैं क्रोध नहीं हूं। और जल्दी मत करो कृत्य में उतारने की। क्योंकि कृत्य में उतार लेने पर लौटना मुश्किल है। तुम क्रोध को देखो। और एक बात पक्की कर लो कि जिसने क्रोध पैदा करवाया है, गाली दी है, अपमान किया है, उसे अगर उत्तर भी देना है तो तभी देंगे जब क्रोध जा चुका होगा, उसके पहले उत्तर न देंगे। कठिन होगा शुरू-शुरू में, क्योंकि बड़ी सजगता साधनी पड़ेगी, लेकिन धीरे- धीरे सरल हो जाता है। मुंह बंद कर लो--तभी देंगे उत्तर, जब क्रोध शांत हो जाएगा। और यह ठीक भी है; क्योंकि शांत क्षण में ही उत्तर समुचित होगा। क्रोध के क्षण में उत्तर समुचित कैसे होगा? यह तो ऐसा है, जैसे कोई नशे में उत्तर देने चला गया।
कामवासना मन को पकड़े, दूर से खड़े होकर देखो। फासला बनाओ। तुम्हारे और तुम्हारे विचार के बीच में फासला जितना ज्यादा होता जाए, जितना डिस्टेंस, जितनी दूरी हो जाए, उतनी ही तुम्हारी मालकियत सिद्ध होने लगेगी। तुम इतने सट कर खड़े हो गए हो कि तुम भूल ही गए हो कि दोनों के बीच कुछ जगह है।
इसे आज से ही शुरू करो। जल्दी नहीं परिणाम आएंगे; क्योंकि जन्मों- जन्मों की निकटता है। एक दिन में तोड़ी भी नहीं जा सकती। बड़े पुराने संबंध हैं, तोड़ने में वक्त लगेगा। लेकिन अगर तुमने थोड़ी सी चेष्टा की तो टूट जाएगा; क्योंकि संबंध झूठा है। असली होता तो टूटता नहीं। झूठा है; बस ख्याल है। ख्याल ही भर है कि मैं इसके साथ एक हूं। एक हो जाने का ख्याल ही झंझट खड़ी कर देता है।
भूख लगे तो ऐसा मत कहो कि मुझे भूख लगी है; इतना ही कहो कि मैं देखता हूं, शरीर को भूख लगी है। और सच्चाई भी यही है। तुम देखने वाले हो। भूख शरीर को लगती है। चेतना को कभी कोई भूख लग भी नहीं सकती। शरीर में ही भोजन जाता है। शरीर में ही रक्त-मांस की जरूरत पड़ती है। शरीर ही थकता है, चेतना कभी थकती नहीं। चेतना तो ऐसा दीया है, जो बिना बाती और बिना तेल के जलता है। वहां कोई भोजन, कोई ईंधन, न जरूरी है, न कभी चाहा गया है।
शरीर के लिए ईंधन चाहिए--भोजन चाहिए, पानी चाहिए। शरीर यंत्र है; आत्मा कोई यंत्र नहीं है। भूख लगे, शरीर को भोजन दो। बस इतना स्मरण रखो कि शरीर को भूख लगी है, मैं देख रहा हूं। प्यास लगे, पानी दो। जरूरी है देना, यंत्र को देना ही पड़ेगा। पागल होगा जो आदमी कहे कि यह शरीर मैं नहीं हूं, इसलिए पानी नहीं दूंगा।
कार में बैठे हो और पेट्रोल न भरोगे तो क्या करोगे? फिर उतर जाओ कार से। फिर यह चलने वाली नहीं है। अब तुम बैठे रहो, और चलाने की कोशिश करो और कहो कि पेट्रोल न दूंगा! बस इतना ही काफी है कि कार के साथ एक मत हो जाओ। मालिक रहो। कार की जरूरत को पूरा करो।
शरीर की जरूरत पूरी करनी है; वह यंत्र है। उसका उपयोग लेना है। और उपयोग बड़ा है; क्योंकि दुख में भी ले जाने में वह सीढ़ी है और आनंद में ले जाने में भी वही सीढ़ी है। शरीर तो एक सीढ़ी है। और सीढ़ी की खूबी होती है कि उसका एक छोर जमीन पर लगा होता है, दूसरा छोर आकाश में लगा होता है। तुम उसी से नीचे उतर सकते हो; तुम उसी से ऊपर चढ़ सकते हो। शरीर के ही माध्यम से तुम नरक तक आए हो; शरीर के माध्यम से ही तुम स्वर्ग तक पहुंचोगे। शरीर के माध्यम से ही तुम मोक्ष तक भी जा सकोगे। वह माध्यम है। उसे सम्हाल कर रखना

है। उसकी जरूरतें पूरी करनी हैं। लेकिन माध्यम के साथ एक हो जाने का कोई कारण नहीं है। यंत्र को यंत्र ही रहने दो। फाउंटेन पेन से तुम लिखते हो, लेकिन तुम फाउंटेन पेन नहीं हो। पैर से तुम चलते हो, लेकिन तुम पैर नहीं हो।
शरीर यंत्र है; उसको सम्हालो। कीमती यंत्र है; उसको खराब मत कर डालना।
दो तरह के खराब करने वाले लोग हैं। एक तो भोग में उसे खराब कर डालते हैं और दूसरे त्याग में उसे खराब कर डालते हैं। दोनों दुश्मन हैं और दोनों नासमझ हैं। कोई वेश्या के घर जाकर उसको खराब कर डालता है, कोई ज्यादा खा-खा कर खराब कर डालता है। दूसरे छोर पर पागल हैं; वे उपवास कर-कर के खराब कर डालते हैं। या तो तुम इतना पेट्रोल भर देते हो कि भीतर बैठने की जगह न रह जाए और या पेट्रोल भरते ही नहीं। बस दो अतियों पर तुम चलते हो। जितनी जरूरत है, उतना दे दो। नौकर की भी चिंता तो करनी ही होगी। उसकी फिक्र रखनी होगी। लेकिन फिक्र से कोई नौकर मालिक नहीं हो जाता।
"बुद्धि के वश में होने से सत्व की सिद्धि होती है।"
और जैसे-जैसे तुम्हारी बुद्धि वश में आती जाएगी, जैसे-जैसे तुम साक्षी होते जाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि भीतर का जो सत्व है, तुम्हारी जो आत्मा है, तुम्हारा जो वास्तविक अस्तित्व है, वह सिद्ध होने लगा। बुद्धि के भ्रष्ट होने से संसार; बुद्धि के वश होने से आत्मा। बुद्धि मालिक हो तो संसार; बुद्धि गुलाम हो जाए तो परमात्मा।
बुद्धि सीढ़ी है। उससे नीचे उतरना अनिवार्य नहीं है; उससे तुम ऊपर भी
जा सकते हो। लेकिन ऊपर तो केवल मालिक ही जा सकता है। गुलाम नीचे, और नीचे, और नीचे उतरता जाता है। और बुद्धि की गुलामी बड़ी खतरनाक है; क्योंकि वह एक की गुलामी नहीं है। बुद्धि तो भीड़ है। अभी कहती है, क्रोध करो; क्षण भर बाद कहती है, पश्चात्ताप करो। एक विचार कहता है, भोगो संसार; दूसरा विचार कहता है, जाओ, खोजो मोक्ष। एक विचार कहता है, धन इकट्ठा कर लो, चोरी भी करनी पड़े तो कोई हर्ज नहीं। दूसरा विचार कहता है, यह पाप है। ऐसे अनंत विचार हैं। और उन अनंत विचारों का जोड़ बुद्धि है।
बुद्धि अगर एक विचार होती तो भी जीवन में शांति हो सकती थी; लेकिन वह
एक विचार भी नहीं; वह तो भीड़ है, वह तो बाजार है। बुद्धि की हालत ऐसी है जैसे कि स्कूल हो, क्लास लगी हो, शिक्षक मौजूद हो, तो बच्चे बैठे पढ़ रहे हैं, सब शांत है।
शिक्षक बाहर चला गया, और उपद्रव। मार-पीट शुरू हो गई! किताबें फेंकी
जा रही हैं। सलेटें फोड़ी जा रही हैं। टेबल उलटा दी गई है। तख्ते पर कुछ-कुछ लिखा जा रहा है। गाली-गलौज बकी जा रही है। ये सब बच्चे, अब इनका कोई मालिक नहीं है, इनका कोई देखने वाला नहीं है।
शिक्षक भीतर कमरे में वापस आ जाता है--एकदम सन्नाटा! सब किताबें अपनी जगह पर आ गईं। लड़कों की नजरें नीचे झुक गईं। वे अपने काम में लग गए हैं। जैसे ही तुम्हारी मालकियत भीतर आती है, बुद्धि एकदम काम में लग जाती है। जैसे ही तुम्हारी मालकियत खो जाती है, बुद्धि एक उपद्रव है, एक अराजकता है। और इस अराजकता को मान कर चलना बड़ा कठिन है; क्योंकि यह कहीं भी नहीं ले जा सकती। यहां कोई एक स्वर थोड़े ही है, अनंत स्वर हैं।
महावीर का वचन है कि मनुष्य बहुचित्तवान है। वहां एक चित्त नहीं है; बहुत चित्त हैं। और महावीर के इस वचन को आधुनिक मनोविज्ञान समर्थन देता है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है, मनुष्य पोली साइकिक है, बहुचित्तवान है। एक मन नहीं है तुम्हारे भीतर; अनंत मन हैं। जैसे एक नौकर हो और अनंत मालिक हों, और सब आज्ञाएं दे रहे हों, और नौकर पगला जाएगा--किसकी माने, किसकी न माने! ऐसे ही तुम पगला गए हो।
एक को खोजो, ताकि शिक्षक क्लास में वापस आ जाए। एक को खोजो, ताकि गुलाम, जो बहुत हैं, अपनी-अपनी जगह बैठ जाएं। एक मालिक हो, तो तुम्हारे जीवन में दिशा आएगी, सत्व की सिद्धि होगी। तुम अपने को जान सकोगे।
"और इससे--इस सत्व की सिद्धि से--सहज स्वातंष्य फलित होता है।"
अभी जब तक तुम बुद्धि को मालिक बनाए हुए हो, तुम गुलाम रहोगे। जैसे ही सत्व की सिद्धि होगी, सहज स्वातंष्य फलित होगा।

यह समझ लेना जरूरी है कि सहज स्वातंष्य क्या है। सिर्फ स्वातंष्य क्यों न कहा? सहज क्यों?
थोड़ा सूक्ष्म है। दो तरह की स्वतंत्रताएं होती हैं। एक स्वतंत्रता तो होती है, जो किसी के खिलाफ होती है। जब स्वतंत्रता किसी के खिलाफ होती है तो वह स्वच्छंदता हो जाती है। वह वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। तब तुम विपरीत चलने लगते हो। जैसे बुद्धि कहती है, क्रोध करो, तो अगर तुम उलटा चलने लगो--कि यह बुद्धि कहती है क्रोध करो, हम क्रोध तो नहीं करेंगे, हम क्षमा करेंगे। बुद्धि कहती है, मार डालो इसको; तुम कहते हो, हम मारेंगे तो नहीं, अपनी गर्दन इसके सामने रख देंगे कि तू मुझे मार डाल। बुद्धि जो कहे, उससे विपरीत हम करेंगे। जैसा कि आमतौर से साधु करते हैं। बुद्धि कहती है, चलो स्त्री को खोजो; साधु जंगल की तरफ भागते हैं। बुद्धि कहती है, चलो धन को खोजो; साधु धन को छूते नहीं; धन छू जाए तो सांप-बिच्छू मालूम पड़ता है। बुद्धि कहती है, आराम करो, विश्राम करो; साधु धूप में खड़ा हो जाता है, कांटे की शय्या बना लेता है। यह सच्ची स्वतंत्रता नहीं है; क्योंकि जिसके तुम विपरीत जा रहे हो, तुम अभी भी उसी की सुन रहे हो। मालिक वह अभी भी है।
इसे थोड़ा समझो; यह थोड़ा जटिल है। क्योंकि तुम्हारी लड़ाई जारी है। अगर तुम मालिक हो गए तो लड़ाई खत्म हो जाती है। गुलाम गुलाम है, उससे क्या लड़ना! तुम्हारे घर में कोई गुलाम है और वह मालिक हो गया है। वह तुमसे कहता
है कि नीचे बैठो, तो तुम नीचे बैठते हो। तुमसे कहता है खड़े हो जाओ, तो तुम खड़े हो जाते हो। तुमने तय किया कि अब हम इस गुलाम के विपरीत चलेंगे, तब भी वह तुम्हारा मालिक रहेगा। अब वह कहता है बैठो, तो तुम खड़े हो जाते हो। मानते तुम उसकी नहीं हो, लेकिन फिर भी तुम उसी की मान रहे हो; क्योंकि वही तुम्हें गतिमान कर रहा है। और गुलाम जरा होशियार हुआ तो जब उसे तुम्हें बिठाना हो, तब वह कहेगा खड़े हो जाओ! तो तुम बैठ गए। तुम बच नहीं सकते। मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा बहुत उपद्रव कर रहा था। नसरुद्दीन ने उससे बहुत कहा, चुप बैठ! तो वह और शोरगुल मचाए। बाहर जा! तो वह भीतर आए। आखिर नसरुद्दीन परेशान हो गया। और घर में मेहमान थे। और मेहमानों के सामने बच्चे ज्यादा उपद्रव करते हैं; क्योंकि मेहमानों के सामने सिद्ध करने का सवाल होता है कि कौन असली मालिक है--बाप कि बेटा, तुम कि हम। इसलिए बच्चे साधारणतः शोरगुल न करेंगे, अपने काम में लगे रहेंगे। घर में मेहमान आया कि परेशानी शुरू हुई; क्योंकि सवाल है संघर्ष का, अहंकार का--कौन मालिक है! तो मेहमानों को देख कर बच्चा और उपद्रव कर रहा था।
आखिर मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, देख! जो तेरी मर्जी में हो वह कर। अब मैं देखूं कि तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता है! जो तेरी मर्जी में हो वह कर। अब मैं देखूं कि तू मेरी आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता है!
बच्चा जरूर मुश्किल में पड़ गया होगा।
तुम अगर मन के विपरीत गए तो सहज स्वतंत्रता फलित न होगी। एक स्वतंत्रता फलित होगी, जो स्वतंत्रता नहीं है, बगावत है, विद्रोह है। लेकिन जिससे हम विद्रोह करते हैं, उससे हम बंधे रहते हैं। जिससे हम लड़ते हैं, उससे हमारा संबंध जुड़ा रहता है। मालिक हम अभी भी नहीं हैं। अभी भी इशारा वहीं से आता है। अब हम विपरीत करते हैं; लेकिन इशारा वहीं से आता है। तो तुम ब्रह्मचर्य साधो, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम्हारा ब्रह्मचर्य सिर्फ बगावत है, वह सहज नहीं है। कामवासना मन कह रहा था; तुमने कहा हम लड़ेंगे। यह लड़ाई है। लड़ाई गुलाम से कोई करता है? और जो लड़ाई गुलाम से करता है, वह गुलाम को अभी भी मालिक मान रहा है। लड़ाई मालिक से होती है। गुलाम से क्या लड़ाई का सवाल है! इसलिए तुम्हारे साधु चाहे तुमसे विपरीत हों, तुमसे भिन्न नहीं हैं। तुम्हारे साधु तुमसे उलटे जा रहे हों, लेकिन जहां तक मन की मालकियत का सवाल है, रत्ती भर फर्क नहीं है।
सहज स्वतंत्रता बिल्कुल और बात है। सहज स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है
कि मैं मालिक हूं, इसलिए अब मन की मानना या न मानना दोनों सवाल नहीं हैं। मन के पक्ष में जाना या विपक्ष में जाना, दोनों सवाल नहीं हैं। अब मैं मन को आज्ञा देता हूं, अब मैं आज्ञा मानता नहीं। आज्ञा मानने के दो ढंग हैं-- मानूं या विपरीत जाऊं; लेकिन दोनों ढंग मानने के ही हैं।

बुद्धि जब मालिक हो जाती है, तो उसकी मालकियत दो तरह की हो सकती है-- नकारात्मक और विधायक। तुम चाहो, गृहस्थ हो सकते हो; तुम चाहो, साधु हो सकते हो। लेकिन फर्क न पड़ेगा। इसलिए तुम्हारे साधु गृहस्थ के उलटे रूप हैं-- शीर्षासन करते हुए। कोई फर्क नहीं है। और गृहस्थ से ज्यादा तकलीफ में हैं; क्योंकि पैर पर खड़े होना ज्यादा आसान है, सिर पर खड़े होना निश्चित ही ज्यादा कठिन है। नहीं तो प्रकृति तुम्हें सिर पर ही खड़ा हुआ बनाती। तुम जो कर रहे हो, वे उससे विपरीत कर रहे हैं। तुम इकट्ठा कर रहे हो, वे त्याग कर रहे हैं। तुम शरीर की सुरक्षा कर रहे हो, वे शरीर को असुरक्षित छोड़ रहे हैं। तुम शरीर के लिए अच्छी शय्या बना रहे हो, वे कांटे-कंकड़ बीन रहे हैं। लेकिन तुमसे ठीक विपरीत! तुम भोजन का स्वाद ले रहे हो, वे उपवास कर रहे हैं, अनशन कर रहे हैं। तुम अच्छे वस्त्रों में ढंके बैठे हो, वे नग्न हो गए हैं। यह सहज स्वातंष्य नहीं है। यह स्थिति तनाव की है। इसमें सहजता नहीं है। इसलिए यह सूत्र कहता है, "बुद्धि के वश में होने से सत्व की सिद्धि होती है। धीवशात सत्वसिद्धिः। और इससे सहज स्वातंष्य फलित होता है।"
तब तुम स्वतंत्र हो। तब तुम मन की तरफ नहीं देखते कि वह क्या कह रहा है; अब मैं क्या करूं, और क्या न करूं। तब तुम मन की तरफ देखते ही नहीं। तब तुम्हारा कर्तृत्व सहज होता है। तब तुम मन से सचमुच मुक्त हो गए। तब तुम ही निर्णायक होते हो, मन तुम्हारे पीछे चलता है। लेकिन यह तभी घटित होगा, जब तुम मालिक हो जाओ। मालकियत घटित होगी, जब तुम साक्षी हो जाओ।
मन से लड़ना मत, अन्यथा सहज स्वातंष्य कभी फलित न होगा। तुम लड़े कि तुमने मन को अपने बराबर मान लिया। तुम जिससे लड़ोगे, उसको तुमने समान अधिकार दे दिया। कभी मित्र था, अब शत्रु हो गया; लेकिन तुम खड़े समान हो। मालिक समान नहीं होता। मालिक आकाश में होता है, नौकर जमीन पर होता है। मालकियत आ जाए तो स्वतंत्रता आती है, वह सहज है। और सहज स्वतंत्रता बड़ी अनूठी है!
सुना है मैंने, एक मुसलमान फकीर--बायजीद--हज की यात्रा को गया। तो उन्होंने तय किया था कि हम चालीस दिन का उपवास करेंगे। पांच दिन उपवास के बीत गए थे और वे एक गांव में पहुंचे। कोई सौ शिष्य बायजीद के साथ थे। वह बड़ा प्रतिष्ठित ज्ञानी था। दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। जब वे गांव में पहुंचे तो गांव के बाहर लोगों ने आकर खबर दी कि बायजीद, तुम्हारा एक भक्त है, उसने हद कर दी। गरीब आदमी है। एकदम गरीब आदमी है। सिवाय झोपड़े के उसके पास कुछ न था। उसने झोपड़ा बेच दिया। गाय-भैंस थीं, वे बेच दीं। उसके पास जो था, उसने सब बेच दिया; और आज पूरे गांव को भोजन पर बुलाया है तुम्हारे स्वागत में।
बायजीद तो उपवासा था और चालीस दिन उपवास रखना था। शिष्य भी उपवासे थे
और चालीस दिन उपवास रखना था। बायजीद पर तो कोई तनाव न हुआ, शिष्य बड़े तनाव से भर गए। लेकिन शिष्य जानते थे कि भोजन तो करना नहीं है। पहुंचे, बायजीद तो बैठ गया थाली पर। शिष्यों को बड़ी बेचैनी हुई। अब जब गुरु बैठ गया तो वे भी बैठे, लेकिन बड़ी ग्लानि से। और उन्होंने कहा, क्या बायजीद भूल गया? क्या इतनी जल्दी स्मरण खो गया? या कि बायजीद भोजन के रस में आ गया? मना करना था। हम चालीस दिन का उपवास किए हुए हैं। जब तक हम हज की यात्रा पर पूरे न पहुंच जाएं! वहीं जाकर भोजन लेना है। और यह क्या बात हुई, व्रत लिया और पांच दिन में टूट गया?
लेकिन अब भीड़ के सामने कुछ कह भी न सकते थे। भोजन कर लिया, लेकिन बड़ी ग्लानि से किया, बड़ी तकलीफ से किया। और बायजीद की तरफ देखें तो बड़े हैरान हों। वह बड़े मजे से भोजन कर रहा है--कोई बेचैनी नहीं है, कोई तकलीफ नहीं है। रात जब सब लोग चले गए तो शिष्य गुरु पर टूट पड़े। उन्होंने कहा, यह हद
हो गई! हम भोजन नहीं कर सकते थे; और आपने किया, इसलिए आपके पीछे हमको भी करना पड़ा।
बायजीद ने कहा, इतने परेशान क्यों होते हो? उसने इतने प्रेम से बनाया
था कि उपवास तोड़ने जैसा था। और उसके प्रेम को तोड़ने से नुकसान ज्यादा होता; उपवास को तोड़ने से कोई नुकसान नहीं हुआ। हम पांच दिन और उपवास कर लेंगे। चालीस दिन पूरे करने हैं, चालीस दिन नहीं, पैंतालीस दिन कर लेंगे। उसका प्रेम टूटता, उसे हम कभी न जोड़ पाते। उसके हृदय को चोट लगती, उसको

जोड़ने का कोई उपाय न था। उपवास ही करना है न? ये पांच दिन भूल जाओ; आगे चालीस दिन फिर कर लेंगे।
फर्क! शिष्यों की स्वतंत्रता सहज नहीं है। उनको तकलीफ जो हो रही है,
वह यह कि अरे, मन की सुन ली! मन तो कह ही रहा था कि करो भोजन। हम लड़ रहे थे कि न करेंगे। और मन की सुन ली! गुलामी आ गई! बायजीद मालिक है। यह अपने हाथ में है कि उपवास रखना कि तोड़ना। इसमें मन की कोई बगावत नहीं है, मन से कोई विरोध नहीं है, मन का कोई मानना नहीं है। हम मालिक हैं। उपवास रखना है तो उपवास रखेंगे; नहीं रखना तो नहीं रखेंगे। निर्णय हमारा होगा।
दोनों उपवासी थे, लेकिन दोनों के उपवास में बड़ा क्रांतिकारी फर्क है, मौलिक फर्क है। बायजीद की स्वतंत्रता सहज है। वह महल में ठहर सकता है निश्चिंत भाव से। वह झोपड़े में रुक सकता है निश्चिंत भाव से। लेकिन बायजीद के शिष्य, अगर महल में रुकना पड़े, तो कठिनाई में पड़ जाएंगे कि यह तो भोग हो गया। यह बड़े मजे की बात है। कभी तुमको महल पकड़े रखता है, कभी झोपड़ा पकड़ लेता है; लेकिन पकड़ नहीं जाती। बायजीद दोनों तरफ जा सकता है। स्वतंत्रता उसकी सहज है। उसे कोई रोकने वाला नहीं है। निर्णय उसकी अपनी आत्मा का होगा। निर्णायक आत्मा है।
सहज स्वतंत्रता तभी फलित होती है, जब सत्व की सिद्धि होती है। उसके पहले सब स्वतंत्रताएं झूठी होंगी।
"स्वतंत्र स्वभाव के कारण वह अपने से बाहर भी जा सकता है और वह बाहर स्थित रहते हुए अपने अंदर भी रह सकता है।"
यह बड़ा कीमती सूत्र हैः "स्वतंत्र स्वभाव के कारण वह अपने से बाहर भी
जा सकता है।"
कबीर कपड़ा बुनते रहे; जुलाहे थे, जुलाहे बने रहे। शिष्यों ने बहुत बार कहा कि अब यह शोभा नहीं देता कि आप कपड़ा बुनो, कि आप बाजार में बेचने जाओ; आप गृहस्थ नहीं हो। कबीर हंसते। वे कहते, सभी उसी का खेल है। बाहर और भीतर एक है।
यह हमारी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि हमें बाहर पकड़े हुए है। इतने जोर से पकड़े हुए है कि बाहर और भीतर एक कैसे हो सकता है?
झेन फकीरों ने कहा है, संसार और मोक्ष एक है।
हम एकदम घबड़ा जाएंगे--ऐसा कैसे हो सकता है? संसार हमें पकड़े है। संसार
से हम पीड़ित हैं। मोक्ष इसके विपरीत है--जहां हम मुक्त होंगे, शांत होंगे, आनंदित होंगे, सुखी होंगे; जहां कोई दुख न होगा। हमारा मोक्ष हमारे संसार के विपरीत होने वाला है।
लेकिन जब कोई व्यक्ति मुक्त होता है तो इस जगत में कोई चीज विपरीत नहीं रह जाती; सब विपरीत समाप्त हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति मुक्त होता है तो बाहर और भीतर का फासला खो जाता है; क्योंकि सारा फासला अहंकार की दीवार का है। क्या बाहर और क्या भीतर! बीच में अहंकार खड़ा है, उससे दीवार बनी है। जैसे कि हम एक मिट्टी के मटके को लेकर पानी में चले जाएं नदी में, पानी भर लें। तो हम कहेंगे, यह मटके के भीतर पानी, यह मटके के बाहर नदी। लेकिन फासला क्या है? सिर्फ एक मिट्टी की दीवार! वह मिट्टी की दीवार टूट गई, तो बाहर क्या होगा, भीतर क्या होगा? जो बाहर है, वही भीतर है; जो भीतर है, वही बाहर है।
इसलिए कबीर कहते हैंः उठना-बैठना मेरी पूजा। चलना-फिरना मेरी उपासना। अब कबीर मंदिर नहीं जाते; क्योंकि अब दुकान और मंदिर में कोई फासला नहीं है। अब कबीर बाजार से नहीं भागते हिमालय; अब बाजार और हिमालय में कोई फासला नहीं है। अब कबीर अपने घर को भी छोड़ कर नहीं भागते; क्योंकि अब अपना और पराए में भी कोई फासला नहीं है। भाग कर भी कहां जाओगे?
अहंकार के गिरते ही सारे फासले गिर जाते हैं। न कुछ बाहर है तब, न कुछ भीतर है। तब न तो पदार्थ है और न परमात्मा है; तब दोनों एक हैं। वह है अद्वैत--जहां सब एक हो जाता है और सब सीमाएं विलीन हो जाती हैं।
लेकिन वह तभी होता है जब जीवन में सहज स्वतंत्रता फलित हो। तो ऐसा व्यक्ति स्वतंत्र स्वभाव के कारण वह अपने से बाहर भी जा सकता है और वह अपने बाहर स्थित रहते हुए अंदर भी रह सकता है। उसे कोई बाधा नहीं है। वह महल में रहे तो भी संन्यासी है; वह संन्यासी होकर सड़क पर खड़ा रहे तो भी महल

में है। उसके पास करोड़ों रुपयों का ढेर लगा हो तो भी वह अपरिग्रही; और उसके पास कुछ भी न हो तो भी उससे बड़ा परिग्रही नहीं, क्योंकि सारा संसार उसका है।
पर कठिन है हमें पहचानना, क्योंकि हम एक हिस्से से परिचित हैं। वह जो घड़े के भीतर जल है। और घड़े के बाहर, वह अलग मालूम होता है। तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वही तुम्हारे बाहर भी है। तुम्हारे भीतर जो आकाश है, वही आकाश बाहर भी है। और तुम्हारा शरीर मिट्टी के घड़े से ज्यादा नहीं है, जिसमें थोड़ा सा फासला किया हुआ मालूम पड़ता है।
संसार और संन्यास दो नहीं हैं। दो दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि तुम एक को
ही जानते हो--संसार को, और संन्यास को नहीं जानते। इसलिए तुम संसार के आधार पर ही संन्यास की कल्पना भी करते हो। तुम्हारे संन्यास की धारणा भी तुम्हारे संसार से ही फलित होती है। तो तुम उसको संन्यासी कहते हो जो तुमसे बिल्कुल विपरीत है। तुम कहते हो, देखो, कैसे महान संन्यासी! बिना जूते पैदल चलते हैं, नग्न रहते हैं, धूप में खड़े हैं, वर्षा झेलते हैं, घास-पात में सोते हैं--कैसे संन्यासी!
तुम्हारे संन्यास की धारणा भी तुम्हारे संसार से फलित होती है। तुम्हारे लिए जनक संन्यासी नहीं हो सकते। कैसे होंगे? महल में हैं। तुम्हारे लिए कृष्ण संन्यासी नहीं हो सकते। कैसे होंगे? मोर-मुकुट बांधे खड़े हैं; बांसुरी बजा रहे हैं। नहीं, तुम्हारे लिए वे संन्यासी नहीं हो सकते।
लेकिन जब तुम्हारी बुद्धि की गुलामी समाप्त होगी और तुम्हारे भीतर का सत्व मुक्त होगा, तब तुम जानोगे कि मोक्ष सब जगह है, दुकान उसके लिए बाधा नहीं; मोक्ष सब जगह है, साम्राज्य उसके लिए बाधा नहीं। क्योंकि मुक्ति तुम्हारी अपने अनुभव की दशा है। तुम मुक्त हुए कि सब तरफ से संसार खो जाता है। बाहर-भीतर सब एक है। पूजा और दुकान बराबर है। तब व्यक्ति जीवन को स्वीकार कर लेता है जैसा है, उसमें फिर रत्ती भर भेद करने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए ऐसा भी हुआ कि कसाई भी ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हो गए; ऐसा हुआ कि परम गृहस्थ भी ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हो गए। और ऐसा भी होता है कि सब छोड़ कर भागा हुआ संन्यासी भी भटकता रहता है और ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो पाता।
यह सूत्र आत्यंतिक हैः "स्वतंत्र स्वभाव के कारण वह अपने से बाहर भी
जा सकता है और बाहर स्थित रहते हुए अपने अंदर भी रह सकता है।"
अब वह मुक्त है। अब उसकी कोई परिभाषा नहीं है। अब तुमने अगर परिभाषा
की तो तुम उसे न पहचान पाओगे। अब वह अपरिभाष्य है। अब उसका कोई लक्षण नहीं है। अब बहुत कठिन है कहना कि तुम उसे कहां पाओगे। अब वह कहीं भी हो सकता है।
ऐसा हुआ कि एक वर्षाकाल के पूर्व बुद्ध का एक भिक्षु गांव में गया और
एक वेश्या उस पर मोहित हो गई। भिक्षु था भी सुंदर। और फिर भिक्षु का एक अलग ही सौंदर्य है, जो साधारण आदमी का नहीं हो सकता। जिसने सब छोड़ा है, उसके भीतर एक आभा प्रकट होनी शुरू हो जाती है। जिसने व्यर्थ को अलग कर दिया है, उसके भीतर सार्थक के फूल खिल जाते हैं; उसके जीवन में एक महिमा प्रकट होती है, जो साधारणतः नहीं प्रकट होती।
उस नाचते हुए आनंदित भिक्षु को देख कर वह वेश्या अगर मोहित हो गई, तो स्वाभाविक है। वेश्या बड़ी सुंदर थी। सम्राट उसके द्वार पर दस्तक देते थे। सभी को उससे मिलने का मौका भी नहीं मिल पाता था। बहुमूल्य, उसके साथ एक क्षण का पाना था। वह भागी हुई स्वयं भिक्षु के पास आई सड़क पर और उसने कहा कि इस वर्षाकाल का मेरा निमंत्रण स्वीकार करें और इस वर्षाकाल मेरे घर रुक जाएं।
भिक्षु ने कहा, पूछ लूंगा अपने गुरु को--जैसी उनकी आज्ञा! भिक्षु ने न
तो कहा हां, न कहा न। भिक्षु ने कहा, पूछ लूंगा अपने गुरु को।
दूसरे दिन सुबह उसने बुद्ध को पूछा, निमंत्रण एक वेश्या का मिला है।
मैं क्या करूं?

बुद्ध ने कहा, जब वेश्या तुमसे नहीं डरी तो तुम वेश्या से क्यों डरोगे? मेरा संन्यासी इतना कमजोर कि वेश्या से डर जाए! तुम जाओ। वर्षाकाल का निमंत्रण मिला, रहो।
बाकी भिक्षुओं में बड़ी बेचैनी हो गई; क्योंकि अनेक भिक्षुओं ने राह
से गुजरते उस वेश्या को देखा ही था। सुंदर थी; अनेक के मन में वासना भी उठी थी। अनेक ने चाहा होता कि उन्हें निमंत्रण मिलता।
एक भिक्षु खड़ा हो गया और उसने कहा कि यह उचित नहीं हो रहा है। संन्यासी और वेश्या के घर ठहरे, यह बात ठीक नहीं है। इससे भ्रष्ट होने का डर है।
बुद्ध ने कहा, अगर तुम्हें निमंत्रण मिला होता तो मेरी आज्ञा न मिलती। तुम्हारे भ्रष्ट होने का डर है, क्योंकि तुम्हें अभी बाहर-भीतर का फर्क है। पर जिसे मैं भेज रहा हूं, जान कर भेज रहा हूं। वह बाहर रहे कि भीतर रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता है।
फिर भी भिक्षुओं का मन न माना। और उन्होंने कहा, आप गलती कर रहे हैं। इससे एक गलत नियम का सिलसिला शुरू होगा; मर्यादा टूटेगी।
बुद्ध ने कहा, तुम रुको। वर्षाकाल बीतने दो, फिर हम देखेंगे।
रोज-रोज भिक्षु खबरें लाने लगे कि वह भ्रष्ट हो चुका है। क्योंकि कोई खबर लाता कि हमने देखा है उसे कि वह नृत्य देख रहा था; नाच चल रहा था वहां रात और वह भी बैठा था। कोई कहता कि वह गद्दी पर बैठा था मखमल की। कोई कहता कि उसने कपड़े बदल लिए हैं। कोई कुछ खबरें लाता, कोई कुछ खबरें लाता। कोई कहता कि हमने आलिंगन में उन्हें देखा है।
बुद्ध कहते कि वर्षाकाल बीत जाने दो। जल्दी क्या है? तुम अफवाहें क्यों लाते हो? तुम्हें प्रयोजन क्या है? तुम भ्रष्ट नहीं हो रहे हो। जो भ्रष्ट हो रहा है, वह वर्षाकाल के बाद वापस लौटेगा।
वर्षाकाल के बाद भिक्षु वापस लौटा और उसके पीछे वेश्या साथ आई। और उस वेश्या ने बुद्ध से कहा कि मुझे भिक्षुणी बना लें। भिक्षु जीत गया, मैं हार गई। मैंने सब उपाय किए और उसने किसी भी उपाय में बाधा न डाली। अगर मैंने उसका आलिंगन भी किया, तो वह दूर न हटा। अगर मैंने उसे मखमल की गद्दी पर बिठाया, तो उसने यह न कहा कि मैं भिक्षु हूं, मखमल की गद्दी पर कैसे बैठ सकता हूं! मैंने उसे सुस्वादु से सुस्वादु भोजन दिए, तो भी उसने यह न कहा कि यह भोजन मैं न कर सकूंगा, इससे वासना जगेगी। मैंने सब निमंत्रण दिए, उसने न न कहा। जो हुआ, वह चुपचाप बैठा रहा, जैसे कुछ भी न हो रहा हो। मैं उससे आंदोलित हो गई हूं। जैसा आनंद उसे मिला, जिसमें बाहर-भीतर खो गया; जैसा आनंद उसे मिला, जिसमें कोई भी बाधा नहीं डाल सकता; वैसे ही आनंद की आकांक्षा मेरी भी है।
बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, देखो! जिसका बाहर-भीतर मिट गया हो, वह वेश्या के पास भी रहे तो वेश्या ही संन्यासिनी बन जाती है। तुम अगर वेश्या के पास जाते तो तुम वेश्या की छाया बन जाते।
एक तो शुभ है जो अशुभ से डरा होता है, वह कुछ बहुत मूल्य का नहीं। साधु असाधु से डरा होता है। संत असाधु से डरा नहीं होता; संत दोनों के पार चला गया। संत वही है, जिसे अब कोई भी स्थिति बदल न सके। वह बाहर रह कर भी भीतर ही बना रहता है। वह संसार में भी रहे तो भी संसार उसके भीतर प्रवेश नहीं करता।
बुद्ध ने कहा हैः संन्यास की परम दशा वही है, जब तुम नदी से गुजर जाओ, लेकिन पानी तुम्हारे पैरों को न छुए। तुम नदी से गुजरने से डरो, यह कोई परम अवस्था नहीं है; यह तो भय की अवस्था है।
तीन सूत्र याद रखें। मन की मालकियत तोड़नी है। साक्षी-भाव से टूटेगी, फासला बनेगा। स्वयं की मालकियत सिद्ध करनी है। लेकिन विरोध में जाने से नहीं, ऊपर उठने से। स्वतंत्रता आएगी; अगर विरोध में जाने से आई तो झूठी होगी। स्वतंत्रता में तनाव और परेशानी होगी। वह शांत नहीं होगी। वह सहज नहीं होगी। ऊपर जाने से, साक्षी बनने से; लड़ने से नहीं। धर्म में योद्धा की जगह ही नहीं है। धर्म में सिर्फ ऊपर उठना है। लड़ना नहीं; क्योंकि जिससे तुम लड़े, तुम वहीं रुक जाओगे, उसी के तल पर। मन को शत्रु नहीं बनाना है; मन के पार जाना है, अतिक्रमण करना है।

और मन के पार जाने का सूत्र हैः साक्षी-भाव। जैसे तुम ऊपर गए, सहज स्वतंत्रता, स्पांटेनियस फ्रीडम घटित होगी, मुक्तता घटित होगी। और उस मुक्तता का कोई विरोध नहीं है किसी से। ऐसी मुक्ति में तुम उस दशा में पहुंच जाओगे, जहां अपने से बाहर भी रहो, भीतर भी रहो, कोई फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि बाहर-भीतर का फासला ही गिर गया। संसार और मोक्ष एक है। सब द्वैत समाप्त हो गया, सब द्वंद्व खो गया; अद्वंद्व और अद्वैत की स्थिति है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
सातवां प्रवचन

ध्यान अर्थात चिदात्म सरोवर में स्नान

बीजावधानम्।
आस्नस्थः सुखं हृदे निमज्जति।
स्वमात्रा निर्माणमापादयति।
विद्याऽविनाशे जन्मविनाशः।

ध्यान बीज है।
आसनस्थ अर्थात स्व-स्थित व्यक्ति
सहज ही चिदात्म सरोवर में निमज्जित हो जाता है
और आत्म-निर्माण अर्थात द्विजत्व को प्राप्त करता है।
विद्या का अविनाश, जन्म का विनाश है।

जीसस से उनके शिष्यों ने पूछा, प्रभु का राज्य कैसा है? क्या है उसका रूप नाम? तो जीसस ने कहा, प्रभु का राज्य एक बीज की भांति है? जीसस उसी बीज की बात कर रहे हैं, जिसकी हम आज चर्चा करेंगे।
ध्यान है वह बीज। बीज अपने आप में सार्थक नहीं होता। बीज तो एक साधन है। बीज तो वृक्ष होने की संभावना है। बीज कोई स्थिति नहीं; बीज तो यात्रा है। जैसे बीज वृक्ष तक पहुंच कर सफल हो जाता है; क्योंकि फिर फल लग आते हैं, फूल लग आते हैं--वही सफलता है; ऐसे ही ध्यान का बीज जब वृक्ष बन जाता है और फल-फूल लग जाते हैं--वही परमात्मा है।
तो बीज की स्थिति को ठीक से समझ लेना जरूरी है। तुम परमात्मा के संबंध में तो निरंतर पूछते हो। वह पूछताछ बेकार है; क्योंकि वृक्ष की क्या पूछताछ करना जब बीज ही न सम्हाला हो! और बिना बीज को बोए तुम वृक्ष को देख भी कैसे सकोगे? परमात्मा कोई बाह्य घटना नहीं है कि तुम उसे देख लो; वह तुम्हारी परिष्कृत स्थिति है; वह तुम्हारा ही विकास है। तुम दूसरे के परमात्मा को न देख सकोगे। तुम्हारे भीतर छिपा हुआ जब बीज टूटेगा और वृक्ष बनेगा, तभी तुम उसे देख सकोगे।
बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, वे लाख उपाय करें, तो भी तुम्हें परमात्मा
को दिखा नहीं सकते। क्योंकि तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। और अभी बीज है, वृक्ष नहीं बना; बीज में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। जब बीज फूटेगा, विकसित होगा, तुम प्रकट होओगे, खिलोगे, तुम्हारा दीया जलेगा, तभी तुम जानोगे कि परमात्मा है।
इसलिए नास्तिक को हराना बहुत मुश्किल है। वस्तुतः नास्तिक को कोई कभी नहीं हरा पाया। इसका कारण यह नहीं कि नास्तिक सही है। इसका कारण यह है कि वह गलत ही प्रश्न पूछ रहा है। जो भी जवाब दिए जाएंगे, वे व्यर्थ होंगे। वह पूछता है, ईश्वर को दिखाओ! कहां है ईश्वर?
ईश्वर तुम में छिपा है। ईश्वर पूछने वाले में छिपा है। और दूसरे का ईश्वर नहीं दिखाया जा सकता; वह आंतरिक घटना है। जब तुम्हारा बीज टूटेगा, तभी तुम जान पाओगे।
अभी तुम बीज की भांति हो। लेकिन तुमने इसे समझा नहीं; तुम बाहर खोज रहे हो। और जब तक तुम बाहर खोजते रहोगे, तुम्हारा बीज भीतर ही पड़ा रहेगा, अंकुरित न होगा। क्योंकि बीज के लिए वैसे ही पानी चाहिए, भूमि चाहिए, प्रकाश चाहिए, प्रेम चाहिए, जैसे कि छोटे बच्चे को। जब तुम भीतर आंख मोड़ोगे, जब तुम्हारा ध्यान भीतर बरसेगा, और तुम्हारी जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ मुड़ेगी, तभी बीज को प्राण मिलेंगे; तभी बीज जीवंत होगा, अंकुरित होगा। "ध्यान बीज है।"
मेरे पास लोग आते हैं। वे पूछते हैं, अशांति है; कैसे शांत हो जाएं?
एक दिन सुबह-सुबह मुल्ला नसरुद्दीन आया। उसे देख कर ही मैं कुछ कहने
को था, लेकिन मैं कुछ कहूं, उसके पहले ही उसने सवाल किया। उसने कहा, अब मेरी सहायता आपको करनी ही पड़ेगी। मैंने पूछा, क्या है समस्या? उसने कहा, बड़ी

जटिल समस्या है। दिन में कोई दस-बीस-पच्चीस बार, कभी और भी ज्यादा, स्नान करने की बड़ी तीव्र आकांक्षा पैदा होती है। मैं पागल हुआ जा रहा हूं। बस यही धुन सवार रहती है। कुछ मेरी सहायता करो। तो मैंने पूछा कि स्नान तुमने किया कब से नहीं? उसने कहा, जहां तक मुझे याद आता है, मैं स्नान की झंझट में कभी पड़ा ही नहीं।
स्नान न करोगे और स्नान करने की आकांक्षा पकड़ेगी, तो समस्या स्नान नहीं है, समस्या तुम हो। तुम अशांत हो; तुम्हें पता नहीं कि तुमने ध्यान कभी नहीं किया। तुम उस झंझट में कभी पड़े ही नहीं। और अशांति तुम मिटाना चाहते हो; और ध्यान के स्नान के बिना वह कभी न मिटेगी; वह तलफ है।
ध्यान भीतर का स्नान है। जैसे शरीर ताजा हो जाता है स्नान के बाद, धूल, कूड़ा-कर्कट शरीर से बह जाता है, स्वच्छता आ जाती है; ऐसे ही ध्यान भीतर का, अंतरात्मा का स्नान है। और भीतर जब सब ताजा हो जाता है, तब कैसी अशांति! तब कैसा दुख, कैसी चिंता! तब तुम पुलकित होते हो, प्रफुल्लित होते हो! तुम्हारे पैरों में घूंघर बंध जाते हैं! तुम्हारा जीवन एक नृत्य हो जाता है! उसके पहले तुम उदास हो, थके हो, परेशान हो। और तुम सोचते हो कि तुम्हारी अशांति के कारण बाहर हैं, तो तुम भ्रांति में हो।
तुम्हारी अशांति का एक ही कारण है कि ध्यान के बीज को तुमने वृक्ष नहीं बनाया। तुम हजार उपाय करोगे--धन मिल जाए तो अशांति ठीक हो जाएगी; पुत्र हो जाए, यश मिल जाए, कीर्ति मिल जाए, अच्छा स्वास्थ्य हो, शरीर हो, लंबी उम्र हो--सब कुछ हो जाएगा, लेकिन अशांति न मिटेगी। वस्तुतः तो जितनी ये चीजें तुम्हें मिल जाएंगी, उतनी ही तुम पाओगे कि अशांति और भी सघन होकर दिखाई पड़ने लगी।
गरीब आदमी कम अशांत होता है। अमीर ज्यादा अशांत हो जाता है। अमीरी से अशांति क्यों बढ़ जाती है? बढ़ती नहीं; होता तो गरीब भी अशांत है; लेकिन शरीर की ही भूख, शरीर की ही क्षुधा को निपटाने में इतनी ऊर्जा चली जाती है कि अपने भीतर की अशांति को देखने योग्य शक्ति भी नहीं बचती। अमीर की बाहर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तो सारी शक्ति बचती है और भीतर की जरूरत ख्याल में आती है। गरीब भी उतना ही अशांत है, लेकिन अशांति को जानने की सुविधा नहीं है। अमीर को अशांति कांटे की तरह चुभने लगती है, वही-वही दिखाई पड़ती है।
तुम जिस दिन सब जरूरतें पूरी कर लोगे, उस दिन तुम अचानक पाओगे, असली जरूरत एक थी, वह ध्यान है; बाकी सब जरूरतें शरीर की थीं, तुम्हारी नहीं। यह सूत्र कहता हैः "ध्यान बीज है।"
तुम्हारी महत यात्रा में, जीवन की खोज में, सत्य के मंदिर तक पहुंचने में--ध्यान बीज है। और ध्यान क्या है? जिसका इतना मूल्य है! जो कि खिल जाएगा तो तुम परमात्मा हो जाओगे! जो सड़ जाएगा तो तुम नारकीय जीवन व्यतीत करोगे! ध्यान क्या है?
ध्यान है निर्विचार चैतन्य की अवस्था, जहां होश तो पूरा हो और विचार बिल्कुल न हों; तुम तो रहो, लेकिन मन न बचे। मन की मृत्यु ध्यान है। अभी तुम तो हो ही नहीं, मन ही मन है। इससे उलटा हो जाए, तुम ही तुम बचो और मन बिल्कुल न बचे। अभी सारी ऊर्जा मन पीए जा रहा है। अभी जितनी भी तुम्हारी जीवन की शक्ति है, वह मन चूस लेता है।
तुमने अमरबेल देखी है? वृक्षों को पकड़ लेती है। फिर वृक्ष सूखने लगता है, और बेल जीने लगती है, और बेल फैलने लगती है। और बेल बड़ी मजेदार है! वह ठीक मन जैसी है। उसमें कोई जड़ें भी नहीं हैं। उसकी कोई जड़ नहीं है; क्योंकि उसे जड़ की जरूरत ही नहीं है; वह दूसरे के शोषण से जीती है। वृक्ष को सुखाने लगती है, खुद जीने लगती है। और ठीक, हिंदुओं ने उसे अच्छा नाम दिया-- अमरबेल! वह मरती नहीं। जब तक भी उसे शोषण मिलता रहेगा, वह अनंत काल तक जी सकती है।
ऐसा ही तुम्हारा मन है, वह अमरबेल है। वह मरता नहीं; वह अनंत काल तक जी सकता है; जन्मों-जन्मों तक तुम्हारा पीछा करेगा। और मजा यह है कि उसकी कोई जड़ नहीं, कोई बीज नहीं। उसका अस्तित्व बेजड़ है। मर जाना चाहिए उसे इसी वक्त, लेकिन मरता नहीं; वह शोषण से जीता है।

और तुम्हारा मन तुम्हें चारों तरफ से घेरे हुए है। तुम तो बिल्कुल दब
ही गए हो अमरबेल में। सारी जीवन-ऊर्जा मन ले लेता है, कुछ बचता नहीं। तुम दीन-दरिद्र, तुम सूखे-सूखे जीते हो। मन तुम्हें उतना ही जीने देता है, जितना जरूरी है मन के लिए। बेल भी वृक्ष को पूरा नहीं मारती; क्योंकि पूरा मारेगी तो खुद मर जाएगी। उतना बचा कर चलती है जितना जरूरी है। मालिक भी गुलाम को पूरा नहीं मार डालता; उतना भोजन देता है, जितना गुलाम के जिंदा रहने के लिए जरूरी है।
तुम्हारा मन तुम्हें बस उतना ही देता है, जितना तुम बने रहो; अन्यथा निन्यानबे प्रतिशत पी लेता है। एक प्रतिशत तुम हो, निन्यानबे प्रतिशत मन है--यह गैर-ध्यान की अवस्था है। निन्यानबे प्रतिशत तुम हो जाओगे, एक प्रतिशत मन होगा--यह ध्यान की अवस्था है। और अगर सौ प्रतिशत तुम हो गए और मन शून्य हो गया--यह समाधि की अवस्था है। तुम मुक्त हो गए; बीज पूरा वृक्ष हो गया; अब कुछ पाने को न बचा; जो भी पाया जा सकता था, पा लिया। सब संभावनाएं सत्य हो गईं। जो भी छिपा था, वह प्रकट हो गया। तब तुम्हारी सुगंध से अस्तित्व भर जाता है। तब तुम्हारा नर्तन दूर-दूर कोनों तक, चांद-तारों तक सुना जाता है। तब तुम ही पुलकित नहीं होते, तुम्हारे साथ पूरी विश्व की प्राण-धारा पुलकित होती है। तब अस्तित्व में एक उत्सव आ जाता है। जब भी कोई एक बुद्ध पैदा होता है, सारा अस्तित्व उत्सव से भर जाता है; क्योंकि सारा अस्तित्व तुम्हारे बीज को वृक्ष बनाने के लिए आतुर है।
ध्यान का अर्थ हैः जहां मन न के बराबर रह जाए। समाधि का अर्थ हैः जहां
मन बिल्कुल शून्य हो जाए, तुम ही तुम बचो।
और शिव का यह सूत्र कहता हैः "ध्यान बीज है।"
इसलिए ध्यान से शुरू करना पड़ेगा।
अभी तो होश-बेहोश, जागते-सोते, मन ही तुम्हें पकड़े हुए है। रात सपने चलते हैं, दिन विचार चलते हैं। उठते-बैठते मन का ऊहापोह चलता रहता है। और बड़े आश्चर्य की तो बात यह है कि सार उसमें कुछ भी नहीं। कितना ही यह ऊहापोह चले, मन से कुछ मिलता नहीं। क्या तुमने पाया है? इतने दिन सोच कर कहां तुम पहुंचे हो? इसे भी तो सोचो! इस तरफ भी ध्यान दो कि इतनी यात्रा करने के बाद कौन सी मंजिल मिली है? सोच-सोच कर क्या पाया?
एक दार्शनिक था--बड़ा दार्शनिक--इमैनुअल कांट। सांझ घर की तरफ आ रहा था। एक छोटे से लड़के ने उसे रास्ते पर रोका और कहा, अंकल, मैं आपके घर गया था। कल पिकनिक पर जा रहे हैं। और आपके कैमरे को मांगने गया था। आप तो घूमने गए थे, नौकर मिला। उसने बिल्कुल मना कर दिया। क्या यह उचित है कि नौकर मना कर दे?
बच्चा क्रोध में था। कांट ने कहा कि बिल्कुल अनुचित है। मेरे रहते नौकर मना करने वाला कौन होता है? आओ मेरे साथ!
बच्चा बहुत प्रसन्न हुआ। पहुंचे घर। कांट ने बड़ी डांट-डपट की नौकर की। और बच्चा पुलकित होता रहा। कहा कि मेरे रहते तू मना करने वाला कौन होता है? उस बच्चे से भी कहा, तू बोल, मेरे रहते नौकर मना करने वाला कौन होता है? उस बच्चे ने कहा, बिल्कुल नहीं अंकल। और इस आदमी ने बड़ी बेहूदगी से इनकार किया। और तब इमैनुअल कांट ने उस बच्चे से कहा कि अब तुझे मैं बताता हूं कि कैमरा मेरे पास नहीं है।
यह सारी खुशी बच्चे की, यह सारी पुलक, यह मिलने की आशा, सब शोरगुल, और आखिर में पता चलता है कि कैमरा उसके पास नहीं है!
यह तुम्हारे मन की दशा है! जीवन भर दौड़ोगे, चिल्लाओगे, आशा बांधोगे, श्रम करोगे, और आखिर में मन कहेगा, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, वह मेरे पास नहीं है। मन ने सदा यही कहा है। उसके पास है भी नहीं। इसलिए मन सदा आशा बंधाता है। और मन सदा कहता है--आज तो नहीं, कल; कल निश्चित। मन से ज्यादा आश्वासन देने वाला और कोई भी नहीं। और तुम हो मूढ़! कि अगर मन के पास होता तो वह आज ही दे देता। वह कल की कह रहा है और तुम मान लेते हो। और तुम कितनी बार मान चुके हो! और हर बार कल आता है और मन फिर कल पर टाल देता है।
लेकिन यह तुम्हारी बेहोश आदत हो गई है। तुम कल की बात सुनने के आदी हो
गए हो। यह आदत इतनी गहरी हो गई है कि तुम इस पर पुनः विचार नहीं करते।
बेहोशी में भी, रात के सपने में भी, मन तुम्हें कल पर टालता रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था। पत्नी ने खबर की तो मैं उसके घर गया। भारी बेहोशी में, बुखार तेज था। लगता था एक सौ पांच, एक सौ छह डिग्री बुखार होगा। बिल्कुल बेहोश पड़ा है। आग से जल रहा है। मैंने पूछा, कब से यह दशा है? पत्नी ने कहा, अभी-अभी कोई घड़ी भर से। मुल्ला नसरुद्दीन के मुंह में, मैंने कहा, थर्मामीटर लगा कर देखो। मुंह में थर्मामीटर लगाया। और उस बेहोश अवस्था में भी उसने क्या कहा! उसने कहा, माचिस प्लीज!
चेन स्मोकर! एक सिगरेट से दूसरी जला कर सदा पीता रहा। एक सौ पांच डिग्री बुखार में भी और सब तो याद नहीं है, कोई सुध नहीं है, लेकिन मुंह में थर्मामीटर डालते ही से उसे याद सिगरेट की आती है--माचिस प्लीज!
तुम मर भी रहे होओगे, तो भी तुम्हारी दशा यही होगी--माचिस प्लीज! तुम्हारा मन पुरानी आदत के अनुसार अपनी बेहोशी में भी ताने-बाने बुनता रहता है। मरते क्षण भी तुम मन से ही भरे रहोगे। तुम पूजा करो, प्रार्थना करो, तुम मंदिर जाओ, तीर्थयात्रा करो--मन तुम्हारे साथ है। और जहां भी मन तुम्हारे साथ है, वहां धर्म से तुम्हारा संबंध न जुड़ेगा।
एक मुसलमान फकीर हुआ--हाजी मोहम्मद। साधु पुरुष था। एक रात उसने सपना देखा कि वह मर गया है और एक चौराहे पर खड़ा है, जहां से एक रास्ता स्वर्ग को जाता है, एक नरक को; एक रास्ता पृथ्वी को आता है, एक मोक्ष को। चौराहे पर एक देवदूत खड़ा है, एक फरिश्ता, और वह हर आदमी को उसके कर्मों के अनुसार रास्ते पर भेज रहा है।
हाजी मोहम्मद तो जरा भी घबड़ाया नहीं; जीवन भर साधु था। हर दिन की नमाज पांच बार पूरी पढ़ी। साठ बार हज की, इसीलिए हाजी मोहम्मद उसका नाम हो गया था। अकड़ कर जाकर द्वार पर खड़ा हो गया देवदूत के सामने। देवदूत ने कहा, तुम्हारा नाम? उसने कहा, हाजी मोहम्मद! देवदूत ने इशारा किया नरक की तरफ, यह रास्ता! हाजी मोहम्मद ने कहा, आप समझे नहीं शायद। कुछ भूल-चूक हो रही है। साठ बार हज की है!
देवदूत ने कहा, वह व्यर्थ गई; क्योंकि जब भी कोई तुमसे पूछता तो तुम कहते, हाजी मोहम्मद! तुमने उसका काफी फायदा जमीन पर ले लिया। तुम बड़े अकड़ गए उसके कारण। कुछ और किया है?
हाजी मोहम्मद के पैर थोड़े डगमगा गए। जब साठ बार की हज व्यर्थ हो गई, तो
अब आशा टूटने लगी। उसने कहा, हां, रोज पांच बार की नमाज पूरी-पूरी पढ़ता था। उस देवदूत ने कहा, वह भी व्यर्थ गई; क्योंकि जब कोई देखने वाला होता था, तुम जरा थोड़ी देर तक नमाज पढ़ते थे। जब कोई भी न होता था, तुम जल्दी खत्म कर देते थे। तुम्हारी नजर परमात्मा पर नहीं थी, देखने वालों पर थी। एक बार तुम्हारे घर कुछ लोग बाहर से आए हुए थे, तो तुम बड़ी देर तक नमाज पढ़ते रहे। वह नमाज झूठी थी। ध्यान में परमात्मा न था, वे लोग थे--कि लोग देख रहे हैं, तो जरा ज्यादा नमाज, ताकि पता चल जाए कि मैं धार्मिक आदमी हूं, हाजी मोहम्मद! तो वह बेकार गई। कुछ और किया है?
अब तो हाजी मोहम्मद घबड़ा गया और घबड़ाहट में उसकी नींद टूट गई। सपने के साथ जिंदगी बदल गई। उस दिन से उसने अपने नाम के साथ हाजी बोलना बंद कर दिया। नमाज छिप कर पढ़ने लगा; किसी को पता भी न हो। गांव में खबर भी पहुंच गई कि हाजी मोहम्मद अब धार्मिक नहीं रहा। कहते हैं नमाज तक बंद कर दी! बुढ़ापे में सठिया गया। लेकिन उसने इसका कोई खंडन न किया। वह चोरी-छिपे नमाज पढ़ता। वह नमाज सार्थक होने लगी। कहते हैं, मर कर हाजी मोहम्मद स्वर्ग गया। तुम्हारा मन प्रार्थना भी करेगा, तो भी प्रार्थना न होने देगा। तुम्हारा मन प्रार्थना से भी अहंकार को भरने लगेगा। अपने ध्यान की चर्चा मत करना, उसे छिपाना। उसे सम्हालना, जैसे कोई बहुमूल्य हीरा मिल गया हो और उसे तुम छिपाते हो, उछालते नहीं फिरते। संपदा को तुम गड़ा देते हो। ऐसे ही तुम ध्यान को गड़ा देना। उसकी तुम चर्चा मत करना। उससे अहंकार मत भरने लगना। अन्यथा मन की बेल वहां भी पहुंच गई और वह चूस लेगी। और जहां मन पहुंच जाता है, वहां धर्म नहीं। और जहां मन नहीं पहुंचता, वहां धर्म है। मन बहिर्मुखी है। उसका ध्यान दूसरे पर होता है, अपने पर नहीं होता। ध्यान अंतर्मुखता है।
ध्यान का अर्थ है--अपने पर ध्यान, दूसरे पर नहीं। मन का अर्थ है--दूसरे
पर ध्यान।

ध्यान करो, तुम अगर दो पैसे गरीब को देते भी हो, तो तुम देखते हो कि लोग देखते या नहीं। तुम मंदिर बनाते हो, तो बड़ा पत्थर लगाते हो अपने नाम का; तुम दान करते हो तो अखबार में खबर छपवाते हो। सब व्यर्थ हो जाता है। हाजी मोहम्मद होकर तुम पहुंच न पाओगे। तुमने कितने उपवास किए, कितने व्रत किए, इस सब की फेहरिस्त सम्हाल कर मत रखना। परमात्मा की दुनिया कोई दुकानदार की दुनिया नहीं है; वहां हिसाब नहीं काम आता। वहां तुम हिसाब लेकर गए कि वहां तुम हारोगे। हिसाब संसार में काम आता है।
लेकिन तुम देखो, जैन मुनि हर वर्ष छपवाते हैं कि इस बार उन्होंने कितने उपवास किए; इस वर्षाकाल में कितने दिन भूखे रहे; कितने व्रत-नियम लिए। वे हिसाब रख रहे हैं। ये दुकानदार ही हैं जो मंदिरों में बैठ गए हैं। इनकी बुद्धि से गणित का छुटकारा नहीं हुआ। और इनका ध्यान, इनका उपवास, सब व्यर्थ जा रहा है। ये हाजी मोहम्मद हुए जा रहे हैं।
नहीं, तुम बाहर की चिंता मत करना कि दूसरे लोग तुम्हें धार्मिक समझते हैं या नहीं। दूसरे लोग क्या कहते हैं, यह बात विचारणीय ही नहीं है; क्योंकि दूसरे लोगों से तुम्हारे मन का संबंध है, तुम्हारा जरा भी नहीं। जिस दिन मन समाप्त हो जाएगा, उस दिन तुम असंग हो जाओगे। मन ही दूसरों से तुम्हें जोड़े हुए है। और जब तक मन तुम्हें संसार से जोड़े हुए है, तब तक तुम परमात्मा से टूटे रहोगे। जिस दिन तुम संसार से टूट जाओगे, मन खो जाएगा, उसी दिन तुम परमात्मा से जुड़ जाओगे। इधर हुए असंग, वहां हुआ संग। यहां टूटा नाता, वहां जुड़ा नाता। यहां से हुई आंख बंद, वहां खुली।
"ध्यान बीज है।"
और ध्यान का अर्थ हैः निर्विचार चैतन्य।
दूसरा सूत्र हैः "आसनस्थ व्यक्ति सहज ही चिदात्म सरोवर में निमज्जित
हो जाता है।"
यह सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है; सरल भी, कठिन भी। आसनस्थ हुआ व्यक्ति चिदात्म सरोवर में निमज्जित हो जाता है, डूब जाता है।
जापान में झेन फकीरों की परंपरा है। उनसे तुम पूछो कि ध्यान के लिए क्या करें? तो वे कहते हैं, कुछ न करो, बस बैठ जाओ। ध्यान रखना, जब वे कहते हैं कुछ न करो, तो उनका मतलब हैः कुछ भी न करना, बस बैठ जाना। बस इतना ही करना कि बैठ गए और कुछ भी मत करना; क्योंकि तुमने कुछ किया कि मन आया। बात सरल लगती है, पर बड़ी कठिन है। यही तो मुसीबत है कि बैठना मुश्किल है। आंख बंद की, काम शुरू हुआ, दौड़ शुरू हुई। शरीर बैठा हुआ दिखाई पड़ता है; मन भाग रहा है।
अगर तुम सिर्फ बैठ जाओ और कुछ भी न करो, तो ध्यान। अगर तुम आसनस्थ हो जाओ, जस्ट सिटिंग, बस बैठे हैं, न राम नाम का जप चल रहा है, न कृष्ण की स्तुति चल रही है, कुछ भी नहीं कर रहे हैं, न कोई विचार की तरंग है, क्योंकि वह भी कृत्य है। अगर तुम कुछ भी न करो, विचार को रोकने की भी कोशिश नहीं चल रही है, क्योंकि वह भी कृत्य है, वह भी दूसरा विचार है। न तुम परमात्मा का स्मरण कर रहे हो, न संसार का; क्योंकि वे सभी विचार हैं। न तुम भीतर दोहरा रहे हो कि मैं आत्मा हूं, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। यह सब बकवास है। इसके दोहराने से कुछ भी न होगा, ये सब विचार हैं। तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो, बस तुम बैठ गए, जैसे तुम एक चट्टान हो, जिसके भीतर कुछ भी नहीं हो रहा, बाहर कुछ भी नहीं हो रहा। इस दशा का नाम आसनस्थ है।
जापान में इस अवस्था को वे झाझेन कहते हैं--बस सिर्फ बैठ जाना। और झेन फकीर इस विधि का उपयोग करते हैं। कभी-कभी बीस साल लग जाते हैं, तीस साल लग जाते हैं, तब कहीं आदमी इस अवस्था में पहुंच पाता है कि सिर्फ बैठा हुआ है। सरल दिखता है, सूत्र बड़ा कठिन है। इस दुनिया में सरलतम चीजें ही सर्वाधिक कठिन होती हैं। तुमसे कोई करने को कहे तो तुम हिमालय चढ़ जाओ। उसमें इतनी अड़चन नहीं है। पसीना आएगा, थकान होगी, मगर चढ़ जाओगे। तुमसे कोई कहे, न करो; तो बस मुसीबत आ गई। हालांकि वह तुमसे सिर्फ इतना ही कह रहा है कि तुम बैठो, कुछ मत करो।
अगर तुम चुपचाप बैठे रहो, क्या होगा? पहले तो जैसे ही तुम बैठोगे, तुम पाओगे, शरीर में अनेक स्थानों पर गति शुरू होती है। कहीं पैर में लगता है कि सुइयां चुभ रही हैं। कहीं शरीर के किसी कोने में लगता है खुजलाहट आ रही

है। कहीं लगता है कमर में दर्द हो रहा है। कहीं लगता है गर्दन में पीड़ा हो रही है। और एक क्षण पहले तक यह कुछ भी नहीं हो रहा था, तुम बिल्कुल ठीक थे। अचानक सब तरफ शरीर बगावत कर रहा है। वह कह रहा है, कुछ करो; न कुछ बने तो खुजलाओ, लेकिन कुछ करो। कुछ नहीं तो शरीर की करवट बदल लो। पैर ऐसे रखे हैं, ऐसे रख लो। लेट जाओ। कुछ करो। क्योंकि जीवन इस संसार में कृत्य के बल से टिका है। जैसे ही तुम कृत्य से शून्य हुए कि यह संसार खोया। जैसे ही तुम शांत बैठना चाहते हो, शरीर कहता है, कुछ करो।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, वैसे हमें कभी पता नहीं चलता कि कहां दर्द है, कहां क्या है; लेकिन जब भी ध्यान करने बैठते हैं, बस तभी मुसीबत शुरू होती है। खांसी आएगी। ऐसे बिल्कुल तुम ठीक बैठे हो, कभी खांसी न आई थी। बस बैठे तुम खाली कि शरीर कृत्य शुरू करता है।
इस पर ध्यान रखना। शरीर की बात को मत सुनना। मालिक तुम हो! और अगर तुमने न सुना, शरीर थोड़े दिनों में चुप हो जाएगा। क्योंकि यह कितनी देर तक चिल्लाएगा? तुम ध्यान देते हो, तुम पोषण देते हो। तुम कह देना कि कुछ भी हो, इस एक घंटे में मैं कुछ करने वाला नहीं। खुजलाहट ही चलेगी न, क्या बिगड़ जाएगा?
कभी तुमने ख्याल किया कि अगर तुम दो-चार मिनट हिम्मत जुटा लो तो खुजलाहट अपने आप चली जाती है। और खुजलाने से कभी कोई खुजलाहट गई है? बढ़ती है!
अगर तुमने पक्का ही ख्याल कर लिया कि यह शरीर गुलाम है और मेरी आज्ञा मानेगा, मैं नहीं मानता, तुम अचानक पाओगे कि गला ठीक हो गया, खांसी खो गई। तुम्हें थोड़े दिन मालकियत घोषणा करनी पड़ेगी। क्योंकि इस गुलाम को तुमने बहुत दिन तक मालिक बनाया है, इसलिए उसकी मालकियत छिनती है तो वह बाधा डालता है। वह तुम्हें बुलाता है कि यह नहीं चलने देंगे; सिंहासन पर मैं हूं!
एक घंटे अगर तुमने खाली बैठने का तय किया है तो क्या हर्जा हो जाएगा? पैर खुजलाता रहेगा, खुजलाने दो। कोई प्राण नहीं निकले जाते हैं, खुजलाहट ही चल रही है। और तुम थोड़ी देर में ही पाओगे कि जैसे ही तुमने संयम रखा, वैसे ही पैर जिद्द छोड़ देगा। वह जिद्द तो सिर्फ तरकीब थी, वह तो तुम्हें झुकाने के लिए थी। तुम सुनते तो दूसरी जगह खुजलाहट चलती; तुम नहीं सुनोगे, जहां खुजलाहट चलती थी, वह शांत हो जाएगी। खाली घर हो तो भिखमंगा थोड़ी देर चिल्ला कर चला जाता है। लेकिन तुमने अगर इतना भी कहा कि दूसरे घर जा, यहां कोई नहीं है, तो फिर वह खड़ा रहता है। तुमने प्रतिक्रिया की, तुमने प्रत्युत्तर दिया, फिर वह कुछ न कुछ कहेगा।
एक भिखमंगा मांग रहा था एक मारवाड़ी के द्वार पर--गलत जगह पहुंच गया। उसने कहा, दो रोटी मिल जाएं। मारवाड़ी ने कहा, रोटी! यहां कोई रोटी-वोटी नहीं है। आगे जा! तो उसने कहा, दो पैसे मिल जाएं। मारवाड़ी ने कहा, यहां कोई पैसे वगैरह नहीं हैं। यहां हम कुछ देते-लेते नहीं। तो उसने कहा, कुछ भी मिल जाए, कपड़े का टुकड़ा ही मिल जाए। मारवाड़ी ने कहा कि कहा नहीं कि यहां कुछ नहीं है! तो उसने कहा, फिर तुम हमारे साथ क्यों नहीं आ जाते? क्या बैठे- बैठे कर रहे हो? न कपड़ा है, न रोटी है, न पैसे हैं, तो हम साथ ही साथ मांगेंगे।
तुमने उत्तर दिया कि तुम फंसे। तुमने उत्तर दिया, उसका मतलब है तुम हो
और तुम राजी हो। कम से कम प्रतिक्रिया कर रहे हो, यह पर्याप्त है।
शरीर में खुजलाहट उठे, तुम देखते रहना, कोई उत्तर मत देना। तुम थोड़ी देर में हैरान होओगे, खुजलाहट गई। दर्द उठे, देखते रहना; दर्द भी चला जाएगा। कोई छह महीने लगते हैं शरीर को आसनस्थ करने में। कोई भी आसन चुन लेना, जो सुखासन हो, जिसमें तुम देर तक बैठ सको। कोई उलटा-सीधा आसन मत चुन लेना, जिसकी वजह से अकारण अड़चन हो। इसलिए सुखासन! आराम से बैठ सको। कोई शरीर को कष्ट नहीं देना है जान कर; कि कंकड़-पत्थर रख कर उस पर बैठ जाना; कि कांटे बिछा लेना। शरीर वैसे ही काफी तकलीफ देगा, और नयी तकलीफ जुटाने की कोई जरूरत नहीं है।
सुखासन से बैठ जाना। लेकिन बैठ गए और एक घंटा बैठने का तय किया, तो फिर
एक घंटा शरीर की मत सुनना। तुम चकित होओगे थोड़े ही दिन में--तीन सप्ताह के

भीतर तुम चकित होओगे--अगर तुमने हिम्मत रखी और तुम न झुके, शरीर आवाज देना बंद कर देगा। और जब शरीर आवाज देना बंद कर दे, तब तुम मन की तरफ ध्यान देना। मन की तरफ ध्यान ही मत देना। अभी मन के साथ उलझना ठीक नहीं है। पहले शरीर को शांत हो जाने देना। जिस दिन तुम पाओ कि अब शरीर कोई उपद्रव खड़ा नहीं करता, वह बैठने को राजी हो गया है--आधी यात्रा पूरी हो गई; आधी से भी ज्यादा पूरी हो गई। क्योंकि मन भी शरीर का ही हिस्सा है। अगर पूरा शरीर बैठने को राजी हो गया तो अब यह हिस्सा ज्यादा देर बगावत नहीं कर सकता। यह सबसे ज्यादा बगावती है; लेकिन फिर भी शरीर का ही हिस्सा है। और जब पूरा शरीर आसन में आ गया तो यह ज्यादा देर यहां-वहां नहीं भटक पाएगा। यह भी बैठ जाएगा। शरीर को आसनस्थ कर लेने का अर्थ हैः शरीर का सब उपद्रव शांत हो गया।
अब तुम ऐसे बैठते हो जैसे अशरीरी हो, जैसे शरीर है ही नहीं, शरीर का पता ही नहीं चलता; बस तुम बैठे हो। अब तुम मन पर ध्यान देना। और मन की भी प्रक्रिया वही है कि मन कुछ भी कहे, सुनना मत। कोई प्रतिक्रिया मत करना। मन में विचार चलें, तुम ऐसे देखना जैसे तुम तटस्थ हो; जैसे तुम्हारा कोई लेना-देना नहीं है; जैसे ये विचार किसी और के मन में चल रहे हैं, बहुत दूर हैं तुमसे; जैसे रास्ते पर शोरगुल चल रहा है या जैसे आकाश में बादल चल रहे हैं, कुछ तुम्हारा लेना-देना नहीं। उपेक्षा से तुम देखते रहना।
पहले शरीर को शांत हो जाने देना, फिर धीरे-धीरे, शरीर कोई तीन सप्ताह लेगा, मन कोई अंदाजन तीन महीने लेगा। कम-ज्यादा हो सकता है। कैसी प्रगाढ़ता तुम्हारी है, उस पर निर्भर होगा। लेकिन करीब छह महीने के भीतर तुम पाओगे कि आसनस्थ दशा आ गई। न शरीर कुछ क्रिया करता है, न मन कोई क्रिया करता है। मन से लड़ना मत। दबाने की कोशिश मत करना कि नहीं, विचार मत करो! क्योंकि ध्यान रखना, यह भी विचार है! इतना विचार भी तुमने अगर सहारा दिया तो मन जारी रहेगा। मन न मालूम कितने उपद्रव खड़े करेगा। तुम लड़ना भी मत; क्योंकि लड़ने का मतलब है तुम राजी हो गए प्रतिक्रिया करने को, तुम उपेक्षा न कर पाए। उपेक्षा सूत्र है। तुम देखते रहना। तुम कुछ कहना ही मत।
मुश्किल होगी, क्योंकि पुरानी आदतें हैं, सदा की आदतें हैं--उसके साथ प्रतिक्रिया करने की, बातचीत करने की, उत्तर देने की। धीरे-धीरे, तुम सिर्फ देखते, देखते, देखते एक दिन उस घड़ी में आ जाओगे, जब तुम सिर्फ बैठे हो, कुछ भी नहीं हो रहा। न शरीर में कोई गति है, न मन में कोई गति है। जिस दिन शरीर और मन की दोनों गति शांत हो जाएं, उस अवस्था का नाम आसनस्थ।
तो आसन का अर्थ कोई बड़े योगासन साधने का नहीं है। लेकिन अगर तुम योगासन करते हो तो तुम्हें सहायता मिलेगी; क्योंकि बैठने में, उतनी देर तक बैठने की क्षमता बढ़ेगी। लेकिन कोई जरूरत नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है। तुम अगर सिर्फ बैठना ही शुरू कर दो और सिर्फ बैठना ही सीख जाओ तो परम आसन वही है। कोई जरूरत नहीं कि तुम जमीन पर ही बैठो; तुम कुर्सी पर बैठ सकते हो। एक ही बात ध्यान रखना है कि जिस अवस्था में बैठो, बस फिर उसी अवस्था में बैठे रहना है।
सुख से बैठ जाओ, ताकि शरीर को यह भी कहने को न बचे कि तुम नाहक मुझे दुख
दे रहे हो। सुख से बैठ जाओ। सब तरफ से व्यवस्था कर लो सुख की। ठंड है तो कंबल डाल लो। गरमी है तो पंखा लगा लो। सब सुख की व्यवस्था कर लो। शरीर को अकारण कष्ट देने में रस मत लेना; क्योंकि वह दुष्टता है। और वह चाहे तुम अपने शरीर को सताओ, चाहे दूसरे के शरीर को सताओ, दोनों हिंसा है। और हिंसा से कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। यह शरीर भी उसी का है। इसे भी कष्ट देने की कोई जरूरत नहीं है। सब तरह से सुख की व्यवस्था कर लेना। फिर लेकिन एक बार बैठ गए, फिर शरीर कुछ भी कहे तो मत सुनना; फिर बैठे रहना। और मन के साथ उपेक्षा करना।
पहले मन बड़ा ऊहापोह मचाएगा, बड़ा शोरगुल मचाएगा, जैसा उसने कभी नहीं मचाया।
इसलिए लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि जब ध्यान नहीं करते थे तब ऐसी मन में अशांति न थी, अब और बढ़ गई; अब तो बड़ा तुमुल नाद चलता है।
तुमुल नाद पहले भी चलता था, तुम्हें पता नहीं था, क्योंकि तुमने कभी ध्यान नहीं दिया था। तुम उलझे थे बाहर, भीतर अराजकता यही थी; क्योंकि

तुम्हारे शांत बैठने से अराजकता के बढ़ने का कोई भी संबंध नहीं। घट सकती है; बढ़ेगी कैसे?
लेकिन तुम इतने उलझे थे बाहर, सारा ध्यान बहिर्मुखी था--बाजार, दुकान,
धन वहां चल रहा था--तुम्हें मौका नहीं मिला भीतर देखने के लिए कि भीतर क्या उपद्रव चल रहा है। अब तुमने बाहर से आंख बंद की तो सारा ध्यान, सारा फोकस, सारा प्रकाश भीतर पड़ रहा है। इस भीतर प्रकाश पड़ने की वजह से तुम्हें पहली दफा पता चलता है कि कैसी अराजकता मची हुई है।
मगर उपेक्षा! एक ही ध्यान रखना कि मन से सब अपेक्षा छोड़ दो। अपेक्षा रखी तो उपेक्षा न कर सकोगे। अपेक्षा छोड़ दो, कोई आशा मत रखो। और उपेक्षा में बैठ जाओ, तटस्थ हो जाओ। कितना ही कठिन हो, सरल हो जाएगा, अगर तुम बैठते ही रहे। आज न होगा, कल होगा; कल न होगा, परसों होगा। तुम इसकी चिंता मत करना कि कब होगा; क्योंकि तुम जितनी जल्दी करोगे, उतनी देर हो जाएगी। जल्दी मन का स्वभाव है। अगर तुमने जल्दी की तो मन तुम्हें हरा देगा। अगर तुम धैर्य रखे और प्रतीक्षा करने को राजी रहे कि कोई जल्दी नहीं, कभी होगा, इसकी हमें फिक्र नहीं, हम बैठते रहेंगे--तुम पाओगे कि छह महीने के करीब मन भी शांत हो गया।
आसनस्थ दशा का अर्थ है, शरीर में कोई क्रिया नहीं, मन में कोई विचार नहीं। और यह शिव का सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है। यह कहता है, तुम आसनस्थ हुए कि सहज ही चिदात्म सरोवर में निमज्जित हो जाते हो। वह सरोवर भीतर है। जब शरीर पर सब गति बंद होती है, तो ऊर्जा बाहर नहीं जा सकती। जब मन की सारी गति बंद हो जाती है, तो ऊर्जा के जाने के सब छिद्र बंद हो गए; तुम्हारी बालटी पहली दफा अछिद्र हुई, सब छिद्र बंद हो गए; अब बाहर जाने वाला कोई भी न बचा। अब सारी जीवन-ऊर्जा भीतर जाती है। और भीतर महा सरोवर है। इस भीतर गिरती ऊर्जा का उस महा सरोवर से मिलन हो जाता है। तुम, तुम्हारी बूंद, भीतर के सागर में डूबने लगती है। चिदात्म सरोवर में सहज ही निमज्जन हो जाता है। वही परमात्मा है।
बाहर जाते हुए तुम भटके हो; भीतर जाते हुए मंजिल उपलब्ध हो जाएगी। तुम उसे बाहर खोज रहे हो जो तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम उसी को खोज रहे हो जो तुम हो; इसीलिए खोज नहीं पा रहे हो। तुम जिसकी तलाश कर रहे हो, वह सदा से तुम्हारे भीतर मौजूद है। यही कठिनाई है। यही जटिलता है। और वहां तुम देखते नहीं; और जहां तुम देखते हो, वहां वह है नहीं। इसलिए तुम भटकते जाते हो, भटकते जाते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने घर के बाहर, सांझ दीया जला कर कुछ खोज रहा है। दूसरे लोग भी आ गए। उन्होंने कहा, क्या खोजते हैं? उसने कहा, मेरी सुई खो गई। वे भी साथ देने लगे। फिर थोड़ी देर बाद उनमें से एक ने पूछा कि रास्ता बहुत बड़ा है; सुई खोई कहां? और सुई छोटी चीज है। नसरुद्दीन ने कहा, वह पूछो ही मत। वह घाव छुओ मत। वे सब चौंक गए। उन्होंने कहा, तुम्हारा मतलब? नसरुद्दीन ने कहा, सुई तो घर के भीतर खोई है; लेकिन वहां प्रकाश नहीं है। अंधेरा है, भयंकर अंधेरा है और वहां जाने से मैं डरता भी हूं। रात तो मैं बाहर ही गुजारता हूं। दिन में कभी-कभी चला भी जाऊं, रात तो भीतर कभी नहीं जाता। अब रात हो गई, तो मैं बाहर खोज रहा हूं। लोगों ने कहा, तू पागल है नसरुद्दीन! जो चीज भीतर खोई है, वह बाहर तू कैसे खोजेगा? नसरुद्दीन खिलखिला कर हंसने लगा और उसने कहा कि सभी यही कर रहे हैं, जो मैं कर रहा हूं। जो चीज भीतर खोई है, उसे लोग बाहर खोज रहे हैं। और उनमें से कोई भी पागल नहीं, बस मैं ही पागल हूं?
क्या खोज रहे हो तुम? खोज तो जरूर रहे हो। क्या खोज रहे हो? अगर तुम्हारी सारी खोज का सार-निचोड़ निकाला जाए तो तुम आनंद खोज रहे हो। कोई धन खोज रहा होगा; लेकिन उससे भी आनंद खोज रहा है। कोई प्रेम खोज रहा होगा; लेकिन उससे आनंद खोज रहा है। कोई यश-कीर्ति खोज रहा होगा; लेकिन उससे आनंद खोज रहा है। तुम्हारी खोज के नाम कितने ही अलग-अलग हों, भीतर छिपा हुआ एक ही सूत्र है, वह आनंद है। तुम आनंद खोज रहे हो। शराबघर जाता हुआ आदमी भी और मंदिर जाता हुआ आदमी भी, दोनों की खोज एक है--दोनों आनंद खोज रहे हैं। पुण्य करता हुआ आदमी और पाप करता हुआ आदमी, दोनों की खोज एक है--दोनों आनंद खोज रहे हैं। बुरा और भला, दोनों एक ही चीज की खोज में लगे हैं।

पर तुमने कभी पूछा कि आनंद को तुमने खोया कहां? जहां खोया है, वहीं खोजो। खोज रहे हो वहां, जहां तुमने खोया नहीं है। बाहर तो तुमने निश्चित ही नहीं खोया है। कहीं भीतर ही कोई स्वाद था। और वह स्वाद भी तुम्हें पता है।
मनोवैज्ञानिक एक बहुत महत्वपूर्ण बात कहते हैं और वह यह है कि बच्चा अपनी मां के गर्भ में परम आनंद की अवस्था में होता है। होना भी चाहिए, क्योंकि न कोई चिंता, न कोई दायित्व, न भोजन की फिक्र, न सर्दी-गरमी की फिक्र, एक सा टेंपरेचर मां के पेट में बना रहता है। बाहर वर्षा हो कि ठंड हो कि गरमी हो, बच्चे के लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। मां के पेट में बच्चे के लिए एक सी गरमी बनी रहती है, रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता। कोई मौसम की बदलाहट से कोई तकलीफ नहीं आती। मां पसीने से तरबतर हो रही हो, लेकिन बच्चे के लिए कोई गरमी नहीं है, कोई ठंड नहीं है, कोई वर्षा नहीं है। मां भूखी हो तो भी बच्चा कभी भूखा नहीं होता। मां पर क्या गुजर रही है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, बच्चा पूरा सुरक्षित होता है। और बच्चा तैरता रहता है।
तुमने क्षीर सागर में विष्णु को तैरते हुए देखा है? वह बच्चे की दशा है--हर बच्चे की दशा है मां के पेट में। क्षीर सागर पर जैसे विष्णु सुख में लेटे हैं, ऐसा हर बच्चा लेटा हुआ है। वह विष्णु का चित्र वस्तुतः गर्भ में बच्चे का चित्र है। जैसे नाभि से फूल खिला हुआ है, ऐसे ही बच्चे की नाभि से मां से जुड़ा हुआ है बच्चा। वहीं से जीवन का सारा स्रोत है। और सागर में जैसा जल है, ठीक वैसा ही जल मां के पेट में होता है। ठीक उसी अनुपात में नमक होता है मां के पेट में जिस अनुपात में सागर में होता है। इसलिए मां को जब बच्चा होता है, तब वह नमकीन चीजें खाने को बहुत उत्सुक हो जाती है, क्योंकि शरीर का सारा नमक पेट खींच लेता है। इसलिए मिट्टी तक खाने लगती है, अगर उसमें जरा भी नमक का स्वाद आ रहा हो। उसके सारे शरीर का नमक गर्भ में चला गया है।
ठीक वही अनुपात होता है, वैज्ञानिक कहते हैं, जो सागर में नमक का है, वही अनुपात मां के पेट में जल का होता है। और उस जल में बच्चा तैरता रहता है--ताप एक, सुख से तैरता हुआ। कोई चिंता नहीं, कोई दायित्व नहीं, रोने की भी जरूरत नहीं। भूख लगी है, इसके पहले भोजन मिल जाता है। श्वास भी बच्चा खुद नहीं लेता, वह भी मां की श्वास से ही धड़कता है। बच्चा जुड़ा है, अभी अलग नहीं है। अभी बच्चे को अहंकार भी नहीं है कि मैं हूं। अभी इतना भी पता नहीं है उसे। अभी है, लेकिन अस्तित्व में निमज्जित है। इन क्षणों में वह जो आनंद जानता है, उसी की खोज जीवन भर चलती है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जीवन की खोज वस्तुतः पुनः गर्भ की खोज है। फिर हम लाख उपाय करते हैं। अगर तुम गौर करो तो वे उपाय वही हैं। अच्छा बिस्तर चाहते हो तुम सोने के लिए। वह तभी अच्छा होता है, जब करीब-करीब उसका तापमान वही होता है जो मां के गर्भ का। तुम जब बिस्तर पर सोते हो तो तुम करीब-करीब वैसे ही सिकुड़ कर सो जाते हो, जैसे मां के पेट में बच्चा। जो भी अच्छे सोने वाले हैं, वे करीब-करीब बच्चे की तरह सिकुड़ कर सोते हैं। फिर से वे पुनः बच्चे हो गए।
तुम्हारी सारी चेष्टा यही है कि कोई दायित्व न रह जाए, कोई चिंता न रहे। इसीलिए तुम धन को खोजते हो कि धन होगा पास में तो कोई चिंता न होगी, कल की फिक्र न होगी। तुम मित्र खोजते हो चारों तरफ, प्रेम खोजते हो, ताकि उन सब का गर्भ बन जाए और तुम उनके बीच में सुरक्षित हो जाओ। अकेले में तुम्हें डर लगता है, क्योंकि चारों तरफ अनजान, अपरिचित, शत्रु। मित्रों के बीच तुम्हें अच्छा लगता है। अपना एक तुम घर बना लेते हो। घर में एक दुनिया बना लेते हो। अगर उसको बहुत गौर से देखो तो वह तुमने फिर से गर्भ निर्मित कर लिया, जिसमें अपने चारों तरफ दीवार बना रहे हो। तुम उसके भीतर सुरक्षित हो।
बच्चा आनंद की कोई अनुभूति बचपन में ले लेता है मां के पेट में--हर बच्चा! और फिर जीवन भर उसी को खोजता है। इसलिए जब भी तुम्हें फिर कभी वैसा क्षण मिल जाता है, थोड़ी सी भी झलक मिल जाती है, तब तुम खुश होते हो। तुम्हारी सब खुशियां उसी की झलक हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की खोज वस्तुतः गर्भ की खोज है। जिस दिन यह सारा अस्तित्व तुम्हारे लिए गर्भ

जैसा हो जाएगा; तुम इसमें फिर निमज्जित हो जाओगे; तुम्हारा अहंकार विलीन हो जाएगा; न तुम्हारी कोई चिंता होगी, न कोई फिक्र होगी, तब तुम पुनः आनंद को उपलब्ध होओगे। वह आनंद तुम्हारे भीतर ही है और तुमने उसे खो दिया है। और बाहर तुम खोज रहे हो, इसलिए वह मिल नहीं पाता।
आसनस्थ अवस्था में, ध्यान की अवस्था में, तुम्हारा शरीर ही तुम्हारे लिए गर्भ बन जाता है। आसनस्थ अवस्था में, जब सब क्रिया शांत हो जाती है, सब विचार खो जाते हैं, तो तुम्हारा शरीर और मन दोनों परिधि बन जाते हैं। उनके बीच में तुम पुनः गर्भ में प्रविष्ट हो गए। इसलिए हम ध्यानी व्यक्ति को द्विज कहते हैं, उसका फिर से जन्म हुआ। उसका नया जन्म हुआ। वह अपने गर्भ से गुजरा। एक जन्म है जो मां और पिता से मिलता है; एक जन्म है जो तुम्हें स्वयं अपने को देना होगा। वही जन्म द्विज बनाएगा।
"आसनस्थ अर्थात स्व-स्थित व्यक्ति सहज ही चिदात्म सरोवर में निमज्जित हो जाता है।"
और फिर चेतना का सागर है। जब शरीर के सागर में इतना रस है तो चेतना के सागर में कितना रस होगा! तुम उसका गणित भी नहीं बिठा सकते। वह अनंत-अनंत गुना है। उसकी कोई सीमा नहीं। तुमने मां के शरीर में जो रस थोड़ा सा जाना था गर्भ का, वह तो शरीर में निमज्जित होने का था। जिस दिन तुम आत्मा में निमज्जित होओगे, उस दिन तुम जो रस जानोगे, वही आनंद है। वही परम रस है। उसे हिंदुओं ने ब्रह्म कहा है। उस जैसा कोई स्वाद नहीं। वह सच्चिदानंद है। "और आत्म-निर्माण अर्थात द्विजत्व को प्राप्त करता है।"
जैसे ही निमज्जित हुआ भीतर के सागर में, वैसे ही द्विज हो जाता है और पहली दफा आत्मा का जन्म होता है। अभी तुम्हारी आत्मा बीज में छिपी है-- मौजूद है और मौजूद नहीं, मौजूद भी है और नहीं भी। मौजूद है बीज की तरह, वृक्ष की तरह नहीं। अभी तुम सिर्फ संभावना हो, होने की एक आशा हो। अभी तुम हो नहीं गए हो। यही तुम्हारी तकलीफ है। यही तुम्हारी पीड़ा है। इसी से तुम कंप रहे हो, परेशान हो।
यह सारी पीड़ा, अगर ठीक से समझो, तो जन्म की पीड़ा है। और जब तक तुम्हारा दूसरा जन्म न हो जाए, यह पीड़ा जारी रहेगी। और जिसका दूसरा जन्म हो गया, उसका पहला जन्म बंद हो जाता है; उसकी कोई जरूरत न रही। अन्यथा तुम फिर-फिर जन्मोगे शरीर में, फिर-फिर वापस आओगे। अगर तुम द्विज हो गए तो फिर तुम्हारे आने की कोई जरूरत नहीं।
हम ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। अच्छा हो हम द्विज को ब्राह्मण कहें; क्योंकि सभी ब्राह्मण द्विज नहीं हैं, लेकिन सभी द्विज ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जब तक ब्रह्म से पैदा न हो, तब तक कोई ब्राह्मण नहीं होता; जब तक निमज्जित न हो जाए ब्रह्म में, तब तक कोई ब्राह्मण नहीं होता।
हिंदुओं का एक बहुत अनूठा सिद्धांत है। वे कहते हैं, पैदा तो सभी शूद्र होते हैं, उनमें से कुछ ब्राह्मणत्व को उपलब्ध हो जाते हैं। पैदा सभी शूद्र होते हैं, चाहे कोई ब्राह्मण के घर में पैदा हो और चाहे शूद्र के। जन्म से सभी शूद्र होते हैं। इसलिए ब्राह्मण के बच्चों को हम यज्ञोपवीत करते हैं; वह सिर्फ औपचारिक है। वह इस बात की खबर है कि अब तू शूद्र न रहा, अब ब्राह्मण हुआ। पैदा तो तू शूद्र ही हुआ था, अब तेरे गले में हमने जनेऊ डाल दिया, अब तू ब्राह्मण हुआ।
इतना सस्ता नहीं है ब्राह्मण होना कि गले में आपने एक धागा डाल दिया
और कोई ब्राह्मण हो गया। ब्राह्मण होना इस जगत में सबसे कठिन प्रक्रिया है; वह आत्म-निमज्जन से घटित होती है। स्वयं को जन्म जो दे देता है, वह द्विज, वह ट्वाइस बॉर्न, उसका पुनर्जन्म हुआ। और अब वह स्वयं ही अपना पिता है और स्वयं ही अपनी माता है; अब दूसरे से पैदा नहीं हुआ। अब संसार से उसका संबंध टूट गया। अब ब्रह्म से उसका संबंध जुड़ गया।
यह सूत्र कहता हैः ध्यान बीज। आसनस्थ जो हुआ, ध्यानस्थ जो हुआ, वह आत्म में निमज्जित हो जाता है। इस निमज्जन से आत्मा का जन्म होता है, द्विजत्व को प्राप्त करता है।
सस्ती बातों में मत पड़ना। यज्ञोपवीत को पकड़ कर मत बैठे रहना। काश, इतना सस्ता और आसान होता ब्राह्मण हो जाना! लेकिन हम हमेशा सस्ती तरकीबें

निकाल लेते हैं और मन को समझाने की कोशिश करते हैं। कब तक समझाओगे मन को? समझाने से सत्य नहीं मिलेगा। सब झूठी आशाएं छोड़ो। सब जनेऊ, यज्ञोपवीत तोड़ो। उनसे कुछ भी न होगा। असली जन्म चाहिए। असली जन्म पैदा होगा, जब तुम स्वयं अपने लिए गर्भ बन जाओ। आसनस्थ शरीर और ध्यानस्थ मन गर्भ निर्माण करता है।
जीसस से निकोडेमस ने पूछा कि कब मैं तुम्हारे प्रभु के राज्य को उपलब्ध होऊंगा?
तो जीसस ने कहा, जब तुम मरो और फिर से जन्मो। तुम जैसे हो, ऐसे तो मिट जाओ; और तुम जैसे हो सकते हो, वैसे फिर से पैदा हो जाओ; तभी तुम मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकोगे।
बिल्कुल साफ है--बीज की भांति मिट जाओ और वृक्ष की भांति हो जाओ। जैसे तुम अभी हो--सिर्फ एक सपना और एक आशा, एक संभावना कि कभी परमात्मा तुम में फलित हो सकता है, लेकिन हुआ नहीं--इस संभावना को दबा दो, बीज की तरह जमीन में गड़ा दो।
डर क्या है? डर यही है कि बीज को डर लगता है कि मैं मिट जाऊंगा। और बीज
की तकलीफ समझ में आती है। उसे कोई भी पता नहीं कि वृक्ष होगा कि नहीं होगा। और बीज कभी वृक्ष को देख भी न पाएगा; क्योंकि जब वह मिट जाएगा, तभी वृक्ष होगा। बीज का कभी मिलन भी नहीं होगा वृक्ष से, कभी हुआ भी नहीं। तो बीज कैसे पक्का भरोसा करे कि मैं मिटूंगा तो विराट का जन्म होगा? बीज को तो यही दिखाई पड़ता है कि जो भी मैं हूं, यह भी खो जाएगा। और क्या पक्का कि विराट होगा कि नहीं?
यही तुम्हारी भी पीड़ा है। बुद्धों, महावीरों, शिवों के पास पहुंच कर तुम्हारी भी पीड़ा यही है। तुम भी यही पूछते हो कि जो भी पास में है, यह भी कहीं खो जाए! और जो आप कहते हैं, वह अगर न हो तो फिर!
डर स्वाभाविक है। इसलिए सदगुरु के पास पहुंच कर डर लगता है। और जिस गुरु के पास पहुंच कर डर न लगे, वह दो कौड़ी का है। वहां से तो भाग ही खड़े होना; क्योंकि सदगुरु के पास ही डर लगेगा। वही तुम्हें भयभीत करेगा; क्योंकि वह मृत्यु जैसा मालूम पड़ेगा। वह तुम्हें मिटाएगा। और जैसे ही तुम मिटने लगे कि मन कहेगा, भागो यहां से। जहां से मन कहे, भागो, वहां से भागना मत। और जहां मन कहे कि रुको, कैसा प्यारा सत्संग चल रहा है, वहां से भाग खड़े होना। जहां मन भयभीत हो, वहां समझना कि कुछ घटने वाला है। क्योंकि बीज वहीं डरता है, जहां मिटने की नौबत आती है, उसके पहले वह नहीं डरता।
इसलिए पुरोहित से तुम्हें कोई भय नहीं है। मंदिर से तुम्हें कोई डर नहीं है। काशी में तुम्हें कोई भय नहीं है, मजे से निर्भय घूम सकते हो। बोधगया में तुम्हें मिटाने वाला अब कोई नहीं है, न गिरनार में, न शिखरजी में, न काबा में, न जेरुसलम में--वहां तुम मजे से जा सकते हो। तुम्हारे सब तीर्थ मर गए हैं; मर ही जाते हैं, क्योंकि तीर्थों में थोड़े ही प्राण होते हैं, तीर्थंकरों में प्राण होते हैं। तीर्थंकर खो गया, फिर तुम तीर्थ बना लेते हो। वह मरा हुआ तीर्थ है, वह लाश है। वह तुम्हें मिटा नहीं सकता। कोई मरा गुरु तुम्हें नहीं मिटा सकता। इसलिए मरे गुरुओं की मन खूब पूजा करता है। महावीर की पूजा करने में तुम्हें बहुत रस आता है; क्योंकि तुम भलीभांति जानते हो कि पत्थर की मूर्ति क्या बिगाड़ लेगी! अपन ने ही खरीदी है; अपने बस में है, जिस दिन चाहें उखाड़ कर फेंक दें।
हिंदू बड़े होशियार हैं। वे बना भी लेते हैं। इसलिए वे मिट्टी की बनाते हैं; क्योंकि दो सप्ताह, तीन सप्ताह बाद जाकर नदी में समाप्त भी कर आते हैं। एक बात पक्की है कि हम ही बनाने वाले, हम ही तुम्हें समाप्त करने वाले। तुम हमारा क्या बिगाड़ लोगे? पूजा भी करते हैं तो हमारी मौज। खेल तुम हमारे हो। और गुड्डे-गुड्डी से ज्यादा तुम्हारा मूल्य नहीं है। है भी नहीं।
महावीर, राम, कृष्ण जब नहीं रह जाते, तब उनकी पूजा चलती है। जब कोई व्यक्ति जिंदा होता है, तब तुम उससे डरते हो। तीर्थंकर से भय लगता है; तीर्थ जाने की बड़ी आशा बनी रहती है, बड़ा आनंद आता है। देखो तुम, कुंभ के मेले में करोड़ों लोग इकट्ठे हो जाते हैं! कभी महावीर और बुद्ध और कृष्ण के पास करोड़ों लोग इकट्ठे हुए? कभी नहीं। कुंभ तुम्हारे घर नहीं आता, तुम

कुंभ पहुंच जाते हो। बुद्ध और महावीर तुम्हारे घरों पर भी दस्तक देते हैं, तब भी दरवाजे बंद पाते हैं। उनसे डर लगता है, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है।
यह कहता है, बीज की तरह मिटो, ताकि वृक्ष की तरह हो जाओ।
इसीलिए आस्था और श्रद्धा का मूल्य है। अगर तुम तर्क से चले तो तर्क यही कहेगा कि पहले तुम जो हो सकते हो, उसका पक्का आश्वासन और गारंटी कर लो। ठीक भी कहता है तर्क, पहले उसकी पक्की गारंटी हो जाए कि जो तुम हो सकते हो, तभी तुम उसको छोड़ना जो तुम हो। कहीं ऐसा न हो कि हाथ की असली चीज नकली आशा में छूट जाए। कहीं ऐसा न हो... तर्क सदा कहता है कि हाथ की आधी रोटी भी आशा की पूरी रोटी से बेहतर है। कम से कम आधी है, माना; लेकिन है तो। और तुम इस आधी को तभी छोड़ना जब पूरी तुम्हें मिल जाए। अगर तुम तर्क की मान कर चले... और तर्क बिल्कुल ठीक कहता है।
मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखना चाहता था। उसने गांव के एक गुरु को पकड़ा। उसने कहा, मुझे तैरना सिखा दो। उसने कहा, आओ, अभी मैं नदी ही जा रहा हूं।
लेकिन संयोग की बात, पैर फिसल गया मुल्ला का सीढ़ियों पर। दो-चार गोते
खा गया। बाहर निकल कर भागा। गुरु पीछे भागा कि कहां जा रहे हो, सीखने आए थे? नसरुद्दीन ने कहा, पहले सिखा दो, फिर पानी में पैर रखूंगा। जब तक तैरना न सीख लूं, तब तक पानी में मैं पैर रखने वाला नहीं हूं। गुरु ने कहा, तब बड़ी मुश्किल है, क्योंकि बिना पैर रखे तुम सीखोगे कैसे? नसरुद्दीन ने कहा, अब नहीं। वह भूल एक दफा हो गई, अब इस जीवन में दुबारा नहीं।
तुम भी जब तर्क करते हो, तब तर्क यही कह रहा है, और तर्क बिल्कुल ठीक कह रहा है। नसरुद्दीन भी ठीक कह रहा है कि अब पानी में तभी उतरूंगा, जब तैरना सीख लूं; क्योंकि यह खतरनाक है। गोते खा गए, बच गए संयोग की बात, न बचते! तो अब तैरना ठीक से सीख लें, तब!
मैंने देखा एक दिन नसरुद्दीन रास्ते के किनारे खड़ा है। उसकी पत्नी कार में बैठी है। वह पत्नी को कार चलाना सिखा रहा था। थोड़ी देर मैं देखता रहा। किनारे-किनारे दौड़ता है और कहता है, बाएं! क्लच को दबाना जब गेयर बदलना हो! मैंने कहा, नसरुद्दीन, बहुत लोगों को गाड़ी चलाते और सिखाते देखा, लेकिन बाहर से किसी को भी चलाते नहीं देखा। उसने कहा, गाड़ी का तो इंश्योरेंस है, मेरा नहीं है। मैं भीतर जाने वाला नहीं हूं।
तर्क हमेशा इंश्योरेंस मांगता है। वह मांगता है गारंटी। बीज भी गारंटी मांगता है कि क्या गारंटी है कि वृक्ष होगा? बीज को कैसे भरोसा दिलाया जाए!
इसीलिए श्रद्धा का मूल्य है। भरोसा दिलाने का कोई उपाय नहीं। श्रद्धा अंधेरे में छलांग है। इसलिए श्रद्धालु पहुंच जाते हैं और तर्कनिष्ठ कभी नहीं पहुंच पाते। बुद्धि भटका देती है, हृदय पहुंचा देता है। जब तुम प्रेम करते हो, तब तुम बुद्धि की नहीं सुनते। और जब तुम प्रार्थना करोगे, तब भी बुद्धि की नहीं सुनोगे तो ही कर पाओगे। तुमने बुद्धि की सुनी, तो बात बिल्कुल ठीक लगती है, शत प्रतिशत ठीक लगती है, क्योंकि बुद्धि हमेशा तर्क से चलती है, लेकिन अंतिम परिणाम में सब व्यर्थ हो जाता है। तो बीज बीज ही रहेगा और सड़ता रहेगा।
तुम एक बात पर ध्यान रखना कि जो तुम्हारे पास है, वस्तुतः है कुछ? बीज
के पास है क्या? तुम यह मत पूछो कि वृक्ष होगा या नहीं। तुम यह पूछो कि बीज के पास है क्या जिसे तुम खोने में डर रहे हो? तुम्हारे पास क्या है जिसे तुम खोने से डरते हो, यह पूछो। श्रद्धा हमेशा यही पूछती है। श्रद्धा यह पूछती है कि मेरे पास क्या है जिसको खोने में डर हो? है कुछ तुम्हारे पास जो खो जाएगा तो कुछ खोया हुआ लगेगा? कुछ भी नहीं है। चिंता होगी, दुख होगा, संताप होगा, उदासी होगी। मगर इनके खोने में क्या डर है? कोई आनंद है तुम्हारे पास? कोई ऐसा नृत्य तुमने जाना है, जिसे तुम खोने में वंचित हो जाओगे, दरिद्र हो जाओगे? तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। तुम उस नंगे आदमी की तरह हो जो स्नान नहीं करता था, क्योंकि वह कहता था, कपड़े धो लूंगा तो सुखाऊंगा कहां? कपड़े थे नहीं, धोने का कोई सवाल न था। लेकिन सुखाने की चिंता मन को घेरती थी।

तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है और पाने को सब कुछ है। यह श्रद्धा है। श्रद्धा हमेशा देखती हैः मेरे पास क्या है? और तर्क हमेशा देखता हैः क्या होगा भविष्य में? तर्क भविष्योन्मुख है। श्रद्धा वर्तमान में देखती है कि क्या है मेरे पास?
मेरे पास लोग आते हैं। उनसे मैं कहता हूं, लो छलांग संन्यास में! वे कहते हैं, एक साल और। जैसे कि मैं उनसे कुछ छीन रहा हूं; जैसे कि वे एक साल हिम्मत जुटाएंगे। वे कहते हैं, थोड़ी देर रुकें, अभी कठिन है। जैसे कि मैं उनसे कुछ त्याग करने को कह रहा हूं। उनके पास कुछ भी नहीं है; रत्ती भर भी नहीं है। संपदा के नाम पर कोई संपदा नहीं है; सिवाय दीनता और दरिद्रता के कुछ भी नहीं है। मैं उन्हें संन्यास की महिमा देना चाहता हूं। उनसे कुछ छीन नहीं रहा हूं; उन्हें कुछ दे रहा हूं। क्योंकि संन्यास को मैं त्याग नहीं कहता, परम भोग का द्वार कहता हूं। संन्यासी होकर तुम पहली दफा सम्राट बनोगे।
लेकिन तुम अपने भिखारीपन को संपदा समझ रहे हो। जब भी मैं किसी से कहता हूं, लो छलांग संन्यास में। वह ऐसा देखता है मेरी तरफ कि मैं कुछ छीने ले रहा हूं। मैं चकित होता हूं। काश, तुम्हारे पास कुछ होता तो बात भी ठीक थी! कुछ भी तुम्हारे पास नहीं है। कूड़ा-कर्कट भी तुम्हारे पास नहीं है। जो भी तुम्हारे पास है, सांप-बिच्छू है; कूड़ा-कर्कट भी नहीं। सिवाय दुख, चिंता और पीड़ा के तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। उसे भी तुम छोड़ते नहीं; उसे भी तुम पकड़ते हो। कारण क्या है?
न, तुम उस तरफ देखते ही नहीं। तुम यह देखते होः क्या मिलेगा?
लोग मुझसे पूछते हैं, ध्यान करने से क्या मिलेगा? बस तब भूल हो गई। मैं उनसे चाहता हूं कि वे पूछें कि ध्यान न करने से क्या मिला है? क्या मिलेगा, इसका तो कोई भरोसा नहीं किया जा सकता; क्योंकि भविष्य अज्ञात है और बीज का मिलन वृक्ष से कभी नहीं होता। बीज बीज ही रहेगा। अब बीज को हम उसके भविष्य से कैसे मिला सकते हैं! बीज तो मिटेगा तो वृक्ष होगा। और जब वृक्ष हो जाएगा, तब तक बीज न रहेगा। हम उसको फिर दिखा भी न पाएंगे कि देखो यह मिला। यह बड़ी मुसीबत है। कैसे तुम बीज को दिखा पाओगे कि यह मिला? जब तक तुम बीज हो, तब तक तुम बीज हो; जब तुम वृक्ष होओगे, तो वृक्ष होओगे। इन दो का तो मिलना कभी होगा नहीं। अभी तुम मांगते हो भविष्य की गारंटी। किसको दी जाए? यह बीज तो बचेगा नहीं; तुम तो बचोगे नहीं।
नहीं, श्रद्धालु पुरुष पूछता है, क्या है मेरे पास? देखता है, पाता है, कुछ भी नहीं। नंगा हूं, निचोड़ने से डर रहा हूं। यह बोध ही आ जाए कि मेरे पास कुछ नहीं है, फिर तुम अज्ञात की यात्रा पर निकलने को तत्पर हो गए, खोने का कोई डर न रहा। कुछ मिलेगा तो ठीक, कुछ न मिलेगा तो भी ठीक; खोने का तो कोई भी डर नहीं है। तुम जैसे हो, इससे बदतर तो हो ही नहीं सकते। या तुम सोचते हो कि हो सकते हो? लोग हैं, जो हमेशा इसी डर में रहते हैं कि कहीं इससे भी बदतर हालत न हो जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन का तकियाकलाम था कि इससे बुरा भी हो सकता था। वह जब
भी कोई बात करता, या कोई कुछ कहता, तो वह यही कहता कि इससे बुरा भी हो सकता था। लोग थक गए थे। ऐसी कोई बात ही नहीं थी जिसमें वह यह न कहे कि इससे भी बुरा हो सकता था। आखिर एक दिन एक ऐसी घटना घट गई मोहल्ले में कि लोगों ने कहा कि अब इसको फंसा दो। अब यह न कह पाएगा तकियाकलाम।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन का पड़ोसी बाहर गया था और दो दिन पहले लौट आया। अचानक घर पहुंच गया, पाया कि घर में एक अजनबी आदमी है, पत्नी उसके प्रेम में है। उसने उठाई बंदूक और दोनों की हत्या कर दी। मुल्ला नसरुद्दीन सुबह निकला था घर से, पड़ोस के लोगों ने घेर लिया कि नसरुद्दीन, सुनो, अब तुम्हारे तकियाकलाम का कोई उपाय न रहा। दोनों मर गए! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, इससे भी बुरा हो सकता था। लोग चकित हुए। उन्होंने कहा, इससे भी बुरा क्या हो सकता था? नसरुद्दीन ने कहा, अगर वह एक दिन पहले लौट आया होता तो मैं मरा होता।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, इससे बुरा नहीं हो सकता। तुम यह तकियाकलाम छोड़ो। तुम जैसे हो, यह बुरी से बुरी दशा है; और क्या बुरा हो सकता है?

श्रद्धा सदा सोचती हैः क्या मेरे पास है? बीज के पास क्या है? एक खोल
है बीज। बीज के पास कुछ भी नहीं है। हो सकता है कुछ; लेकिन वह होगा, जब खोल टूट जाएगी। तुम एक खोल हो; खोल को टूट जाने दो। तब सब कुछ संभव हो जाता है। परमात्मा तुम्हारे भीतर संभव हो जाता है।
इसलिए शिव कहते हैंः ध्यान बीज है। और जब बीज मिटता है, तब तुम द्विजत्व को उपलब्ध होओगे।
"विद्या का अविनाश, जन्म का विनाश है।"
और जिस दिन तुम्हारे भीतर द्विजता फलित होगी, नया जन्म होगा, फिर तुम्हारे भीतर विद्या का कभी विनाश न होगा; ज्ञान सतत बहता रहेगा; ज्ञान की धारा हो जाओगे तुम; तुम्हारा सब कुछ ज्ञान बन जाएगा, चैतन्य हो जाएगा। ध्यान का बीज जब टूटेगा, तब तुम्हारे भीतर चेतना ही चेतना रह जाएगी। तुम एक होश, एक साक्षी-भाव में रूपांतरित हो जाओगे। और विद्या का जहां अविनाश है, जहां विद्या नष्ट नहीं होती... ।
अभी तुम्हारी चेतना न के बराबर है, है ही नहीं। तुम ऐसे जीते हो, जैसे सोए हुए हो। अभी तुम जो करते हो, उसमें भी तुम होशपूर्वक नहीं करते हो। बुद्ध के सामने कोई बैठा था। वह बैठ कर अपने पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध ने कहा कि मेरे भाई, यह पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? जैसे ही बुद्ध ने कहा, वह रुक गया। उसने कहा, मुझे खुद ही पता नहीं। आपने पूछ कर मुश्किल में डाल दिया। मैं कोई जान कर तो हिला नहीं रहा था; बस हिल रहा था। बुद्ध ने कहा, पूरी जिंदगी तुम्हारी ऐसी है।
तुमने जान कर क्या किया है? जान कर क्रोध किया? जान कर प्रेम किया? जान कर लोभ किया? जान कर मोह किया? क्या तुमने जान कर किया है? बस पैर का अंगूठा हिल रहा है बेहोशी में, ऐसे ही तुम्हारी पूरी जिंदगी हिल रही है। घर भी बसा लिया, परिवार भी है, बच्चे भी पैदा हो गए; जान कर तुमने क्या किया? सब हो रहा है। तुम एक यंत्रवत उस होने में फंसे हो। होशपूर्वक तुमने क्या किया है जिंदगी में? कोई एक कृत्य है जो तुमने होशपूर्वक किया हो? जो तुम्हारी चेतना से निकला हो?
नहीं, एक भी कृत्य तुम न बता सकोगे, जो तुमने होशपूर्वक किया है।
प्रेम किसी से हो गया, हो गया; तुमने किया नहीं। झगड़ा किसी से हो गया,
हो गया; तुमने किया नहीं। आदमियों को तुम देखते हो, देखते ही से तुम निर्णय कर लेते हो--कोई अच्छा लगता है, कोई बुरा लगता है। लेकिन होशपूर्वक कौन अच्छा है, कौन बुरा है?
तुम जो भी जिंदगी में बन गए हो, यह सांयोगिक दुर्घटना मालूम होती है। तुम होशपूर्वक नहीं चले हो। घटनाएं घट रही हैं, तुम मूर्च्छित बहे जा रहे हो। तुम नदी में बहते एक तिनके की भांति हो; लहरें जहां ले जाती हैं, तुम चले जाते हो। हालांकि तिनका भी सोचता होगा कि मैं यात्रा कर रहा हूं। ऐसे ही तुम भी सोचते हो कि तुम कुछ कर रहे हो। कर्ता हो ही कैसे सकता है जब होश नहीं है?
यह सूत्र कह रहा हैः विद्या का अविनाश तो तभी होता है जब ध्यान का बीज टूट जाता है और तुम्हारे भीतर सतत स्फुरणा चेतना की बनी रहती है। सोते- जागते, तुम कभी नहीं सोते। उठते-बैठते, तुम कभी नहीं सोते। तुम्हारे भीतर होश बना रहता है। तुम प्रेम करो, तो वह भी होशपूर्वक। तुम भोजन करो, तो वह भी होशपूर्वक होगा। तुम उठोगे-हिलोगे, तो भी होशपूर्वक होगा। तुम्हारा सारा जीवन होश का विस्तार हो जाएगा। इसको हम बुद्धत्व कहते हैं। बुद्धत्व का अर्थ हैः जो आदमी जागा हुआ जी रहा है।
विद्या का अविनाश! अब विद्या विनष्ट नहीं होती। अब ज्ञान कभी फीका नहीं पड़ता। अब भीतर की ज्योति कभी मंदी नहीं होती। जलती रहती है सतत, एक सी, अकंप। जब ऐसा घटित हो जाता है--ध्यान का बीज टूट कर जब अविनाशी विद्या बन जाती है, सतत चैतन्य तुम्हारे भीतर चलने लगता है--तब जन्म का विनाश हो जाता है। फिर तुम्हारा कोई जन्म नहीं। फिर तुम शरीर में वापस न आओगे। शरीर में तुम मूर्च्छा की तरह ही वापस आते हो। तुम सोए हो, इसलिए बार-बार शरीर में उतरते हो। शरीर में उतरना तुम्हारी बेहोशी के कारण है। जिस दिन तुम्हारा होश सतत हो जाएगा, शरीर की यात्रा बंद हो जाएगी। तब तुम इस संकीर्ण शरीर में न उतरोगे। क्योंकि यह एक कारागृह है; होशपूर्वक कोई भी

इसमें नहीं उतर सकता। यह एक बंधन है। ये जंजीरें हैं, जो तुमने खुद अपने हाथ के चारों तरफ बांध ली हैं। यह कैद है, यह गुलामी है। इसमें तुम जान कर क्यों उतरना चाहोगे! बे-जान कर तुम उतरे हो। अंधेरे में भटक गए हो। जिस दिन तुम्हारी आंखें ज्योतिपूर्ण हो जाएंगी, शरीर में उतरना बंद हो जाएगा। फिर तुम कहां होओगे? फिर तुम विराट अशरीर के हिस्से हो जाओगे। उसे हम ब्रह्म कहते हैं; कोई परमात्मा कहता है, कोई निर्वाण, कोई मोक्ष। शब्द कोई भी दें, कोई अंतर नहीं पड़ता। धर्मों में शब्दों से ज्यादा और किसी चीज का भेद नहीं है। और सभी शब्द सही हैं, क्योंकि सभी शब्द कोई एक गुण उस परम स्थिति का बताते हैं।
निर्वाण का अर्थ है--निर्वाण शब्द का अर्थ हैः दीये का बुझ जाना। बुद्ध को वह शब्द प्रिय था। वे कहते, जैसे दीया बुझ जाता है, तो तुम पूछो कि उसकी ज्योति कहां गई? क्या कहोगे, कहां गई? अब तुम ज्योति को कहीं भी इशारा करके न बता सकोगे। होगी तो कहीं; क्योंकि इस अस्तित्व में कुछ भी जो है, नष्ट नहीं हो सकता। जो है, वह है; जो नहीं है, वह नहीं है। जो नहीं है, उसके होने का उपाय नहीं है; जो है, उसके मिटने का उपाय नहीं है। वह कहीं न कहीं तो ज्योति होगी। तुमने दीया फूंक कर बुझा दिया, ज्योति खो थोड़े ही जाएगी; जाएगी कहां खोकर? विराट में एक हो गई! अब तक उसका रूप था, अब अरूप हो गई! दीये से छुटकारा हो गया। इसका यह मतलब नहीं है कि खो गई।
मिट्टी का दीया था; ज्योति तो बिल्कुल अलग थी। मिट्टी से ज्योति का क्या लेना-देना! मिट्टी और ज्योति का क्या संबंध! दीये के कारण तो ज्योति न थी; दीया तो ज्योति न बना था। दीया तो केवल शरीर था। तुमने दीये से फूंक दिया, संबंध टूट गया ईंधन से; ज्योति विराट में खो गई, महा प्रकाश का हिस्सा हो गई। इसलिए बुद्ध उस परम स्थिति को निर्वाण कहते हैं--जैसे दीया यहां बुझ गया और परम सूर्य में लीन हो गया। महावीर उसे कैवल्य कहते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि जैसे ही तुम्हारा मोह टूटा, अंधकार गया, अविद्या मिटी, अज्ञान छूटा, वैसे ही बस तुम ही तुम हो, और कोई भी नहीं। बस केवल चेतना ही बची, जिसका कोई पारावार नहीं है।
महावीर परमात्मा की बात नहीं करते। वे कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा
हो जाती है। एक ही बात है। या तो तुम कहो कि बूंद सागर में खो गई, या तुम कहो कि सागर बूंद में खो गया; क्या फर्क पड़ता है! बूंद सागर में गिरी। हिंदू कहते हैं, बूंद सागर में खो गई। महावीर कहते हैं, सागर बूंद में खो गया। एक ही बात है; कहने का ढंग है। महावीर को जो प्रिय है, वे कहते हैं--कैवल्य। बस तुम ही तुम बचे, कोई और न बचा; सिर्फ शुद्ध चैतन्य बचा, केवल चेतना बची। हिंदू इसे मोक्ष कहते हैं। क्योंकि शरीर कारागृह है; तुम मुक्त हो गए। जीसस ने इसे प्रभु का राज्य कहा है। क्योंकि तुम दीन-दरिद्र न रहे; तुम सम्राट हो गए। शब्दों का भेद है, लेकिन मूल बात एक है--बीज टूटे, तो तुम वृक्ष हो जाओगे।
हिम्मत जुटाओ! बड़ी हिम्मत की जरूरत है! इससे बड़ी दुनिया में कोई हिम्मत नहीं है। धर्म से बड़ा कोई दुस्साहस नहीं है। इसलिए तुम ऐसा मत सोचना कि कमजोर धार्मिक होते हैं। कमजोर धार्मिक हो ही नहीं सकता; सिर्फ महाशक्तिशाली धार्मिक होते हैं। और जहां तुम्हें कमजोर दिखते हैं धार्मिक होते हुए, वहां धर्म नहीं है। मंदिरों में, मस्जिदों में घुटने टेके जिन्हें तुम देख रहे हो, वे धार्मिक नहीं हैं। वे कमजोरी में घुटने टिके हैं। वे सांसारिक ही हैं। बड़े से बड़ा दुस्साहस धर्म है।
क्या है दुस्साहस? बीज की छलांग, खुद को मिटाने की तैयारी, सिर्फ इस आशा में, बिना किसी गारंटी के कि वृक्ष होगा; ज्ञात का विसर्जन, अज्ञात के लिए; जो जाना-माना है उसका छोड़ना, उसके लिए जो अनजान और अपरिचित है; जो रास्ता पहचाना हुआ था सदा का, उसे छोड़ कर विराट वन में भटक जाना, पगडंडी को चुन लेना, जिसकी कोई पहचान नहीं, जिसका कोई नक्शा नहीं; संसार को छोड़ कर ब्रह्म की खोज पर जाना, नक्शे की दुनिया को छोड़ कर नक्शारहित दुनिया में प्रवेश है। वहां कोई नक्शा नहीं, जिसे तुम ले जा सको; कोई गाइड नहीं। कोई छपी हुई किताब काम न देगी। सब किताबें इसी संसार में छूट जाएंगी; क्योंकि सभी किताबें इसी संसार के हिस्से हैं। गुरु भी वहां साथ न जाएगा। गुरु भी तुम्हें धक्का दे देगा और किनारे पर खड़ा रहेगा।

आखिर जब कोई किसी को तैरना सिखाता है, तो क्या सिखाता है? धक्का दे देता है! तुम समझते हो कि गुरु खड़ा है, इसलिए निर्भय होकर कूद जाते हो। तैरना तुम्हारे भीतर है। पहले दिन तुम हाथ-पैर तड़फड़ाते हो, वह भी तैरना है--अकुशल। दो-चार दिन में तुम समझ जाते हो कि हाथ-पैर कैसे फेंकना है। वह तुम्हारे भीतर ही था। अगर हिम्मत होती तो तुम अकेले भी कूद सकते थे। मगर अकेले में जरा डर रहता है। कोई किनारे पर खड़ा है, भरोसा है कि अगर डूबे, अगर कुछ खतरा हुआ, तो कोई किनारे पर खड़ा है। बस गुरु किनारे पर खड़ा है भरोसे के लिए; कुछ करेगा नहीं; कुछ करने को है नहीं। सब कुछ तुम्हारे भीतर छिपा है और तुम्हारे भीतर प्रकट होना है। पर गुरु की मौजूदगी भरोसा देती है कि कोई खतरा नहीं है। कोई तो मौजूद है, पुकारेंगे, चिल्लाएंगे, तो कोई सुन लेगा। और वह कहता है कि मैं मौजूद हूं, तुम बेफिक्री से कूद जाओ।
एक दफा तुम कूद गए कि तुमने हाथ-पैर फेंके; पहले तो तुम घबड़ाहट में ही हाथ-पैर फेंकोगे, वही तो तैरना बन जाएगा। तैरने में और हाथ-पैर फेंकने में फर्क क्या है? बस जरा से अनुभव का फर्क है। दो-चार दिन फेंकोगे, अनुभव से समझ में आ जाएगा। गलत फेंकना बंद कर दोगे, सम्यक फेंकना शुरू कर दोगे। और जैसे-जैसे हाथ-पैर फेंकने में सफलता मिलेगी, वैसे-वैसे आत्मविश्वास बढ़ जाएगा। दो-चार दिन बाद गुरु कहेगा कि अब मेरे यहां किनारे पर खड़े रहने की कोई जरूरत नहीं। अब तुम चाहो तो दूसरे को भी सिखा सकते हो।
ध्यान में गुरु यही कर रहा हैः तुम्हें धक्का दे रहा है। और अगर तुम्हारी श्रद्धा हो, तो तुम्हारे भीतर बीज टूट जाएगा और वृक्ष का जन्म हो जाएगा। तर्क से तुम भरे रहे, तो तुम व्यर्थ ही भटकते रहोगे। श्रद्धा द्वार है।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
आठवां प्रवचन

जिन जागा तिन मानिक पाइया

त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम्
मग्नः स्वचित्ते प्रविशेत्।
प्राणसमाचारे समदर्शनम्।
शिवतुल्यो जायते।

तीनों अवस्थाओं में चौथी अवस्था का तेल की तरह सिंचन करना चाहिए।
ऐसा मग्न हुआ स्व-चित्त में प्रवेश करे।
प्राण-समाचार से, अर्थात सर्वत्र परमात्म-ऊर्जा का प्रस्फुरण है--ऐसा अनुभव कर
समदर्शन को उपलब्ध होता है।
और वह शिवतुल्य हो जाता है।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति--इन तीनों अवस्थाओं में भी चौथी तुरीय ऐसी
ही पिरोई हुई है जैसे माला के मनकों में धागा। सोए हुए भी तुम्हारे भीतर कोई जागा हुआ है। स्वप्न देखते हुए भी तुम्हारे भीतर कोई देखने वाला स्वप्न के बाहर है। जागते दिन के काम करते समय भी, दैनंदिन जागरण में भी, तुम्हारे भीतर कोई साक्षी मौजूद है। ऐसा होगा भी; क्योंकि जो तुम्हारा स्वभाव है, उसे तुम, कितने ही गहरे सो जाओ, तो भी खो न सकोगे। जो तुम हो, वह तो मौजूद ही रहेगा; दब जाए, छिप जाए, विस्मरण हो जाए, नष्ट नहीं हो सकता। तो चाहे नींद हो, चाहे स्वप्न, चाहे तथाकथित दैनंदिन जागरण, पीछे गहरे में तुरीय सदा मौजूद है; गहरे में तुम सदा ही बुद्ध हो; ऊपर तुम कितने ही भटक जाओ, वह सब भटकाव परिधि का और लहरों का है। गहरे में तुम कभी भी भटके नहीं हो; क्योंकि गहरे में भटकने का कोई उपाय नहीं।
इसलिए तुरीय को पाना नहीं है, केवल आविष्कृत करना है। तुरीय को उपलब्ध नहीं करना है, केवल अनावृत करना है। वह छिपी पड़ी है। जैसे कोई खजाना दबा हो, सिर्फ मिट्टी की थोड़ी सी परतें हटा दें, और तुम सम्राट हो जाओ। कहीं खोजने नहीं जाना है; तुम्हारा खजाना तुम्हारे भीतर है। और इसकी झलक भी तुम्हें निरंतर मिलती रहती है, लेकिन तुम उस झलक पर ध्यान नहीं देते।
सुबह उठ कर तुम कहते हो, रात बड़ी गहरी नींद आई, बड़ा आनंद हुआ, नींद बड़ी सुखद थी। जब तुम यह कहते हो, क्या तुमने कभी ख्याल कियाः कौन है जो जानता है कि नींद बड़ी सुखद थी? अगर तुम पूरे ही सो गए थे, तो सुबह कौन याद करेगा? अगर तुम बिल्कुल ही सो गए थे, तो स्मृति किसको होगी? यह कौन कहता है कि रात नींद बहुत गहरी आई, बड़ी आनंदपूर्ण थी? कोई जरूर नींद की गहराई में भी देखता रहा। नींद की गहराई में भी कोई टिमटिमाता प्रकाश जलता रहा है। अंधकार पूरा नहीं था; अंधकार देखा गया है।
रात तुम सपने देखते हो; सुबह उनकी याद, उनकी झलक कायम रह जाती है। सुबह
उठ कर तुम कहते हो, रात बड़ा दुखद स्वप्न देखा। तो देखने वाला अलग था; सपने में तुम खो नहीं गए थे। तुम सपना ही नहीं हो गए थे। तुम दर्शक थे। सपना चला होगा अंतरात्मा के रंगमंच पर; लेकिन तुम नाटक के बाहर थे। अन्यथा याद न बनती।
दिन में भी क्रोध पकड़ता है, तो ऐसा नहीं कि तुम बिल्कुल ही सोए हुए हो; भीतर झलकें आती हैं। जब क्रोध पकड़ता है, तब भी तुम जानते हो कि क्रोध पकड़ रहा है। पकड़ने के पहले भी, जब धुआं अभी आने के करीब हुआ है, तब भी तुम जानते हो कि अब क्रोध आने को है। जैसे वर्षा आने के पहले आकाश बादल से घिर जाता है, वैसे तुम्हें भी लगने लगता है, अब क्रोध आने के करीब है। जब तुम मोह से भरते हो, तब भी; जब तुम शांत होते हो, तब भी; जब अशांत होते हो, तब भी; तुम्हारे भीतर कोई देख रहा है।

लेकिन इस देखने वाले पर तुमने ध्यान नहीं दिया। तुम्हारा ध्यान दृश्य
की तरफ बह रहा है। जो दिखाई पड़ता है, तुम उसमें ही लीन हो। जो देखता है, उस तरफ मुड़ कर तुमने नहीं देखा। बस इतना ही करने का है, और तुम्हारी बेहोशी टूट जाएगी, तुरीय उपलब्ध हो जाएगा। और जिसे मिल गया तुरीय, उसे सब मिल गया। जिसे नहीं मिला तुरीय--वह चौथी ध्यान की जाग्रत अवस्था न मिली--वह जीवन में सब कुछ कमा ले, सब कुछ इकट्ठा कर ले, मृत्यु के क्षण में पाएगा कि वह सब कमाना, सब इकट्ठा करना, दो कौड़ी का सिद्ध हुआ है।
मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन भागा हुआ नदी के तट पर पहुंचा। यात्रा पर जाना था। जल्दी में था। और डर था कि कहीं नाव छूट न जाए। खुश हो गया। कुछ ही कदम दूर था कि देखा, नाव बस छूटी ही है। छलांग लगा कर नाव पर सवार हो गया। पैर फिसला; गिर पड़ा चारों खाने चित्त। कपड़े फट गए। कुहनियां खून से रक्तरंजित हो गईं। फिर भी खुशी से उठ कर खड़ा हो गया और आनंद भाव से चकित यात्रियों से कहा, आखिर पहुंच ही गया। थोड़ी देर हो गई थी, लेकिन नाव पकड़ ली। यात्री कहने लगे, हम समझ नहीं पाते, नसरुद्दीन! इतनी जल्दी क्या है? यह नाव जा नहीं रही है, आ रही है।
मृत्यु के क्षण में तुम पाओगे कि जिंदगी भर जो दौड़ तुमने की, भागे, पहुंच गए--वह नाव जाने वाली नहीं है; वह किनारे पर ही आ रही है। लेकिन तब बहुत देर हो जाएगी। तब कुछ करते न बनेगा। अभी समय है। अभी कुछ किया जा सकता है। और मौत के पहले जो जाग गया, उसकी फिर कोई मौत नहीं। और जो मौत तक सोया रहा, उसका कोई जीवन नहीं; उसका जीवन एक लंबा स्वप्न है, जो मृत्यु तोड़ देगी। जो जाग गया जीते जी, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं। क्योंकि जो जाग गया, उसने अपने भीतर के स्वभाव को देखा और अनुभव किया कि वह अमृत है।
लेकिन जिंदगी बेहोश-बेहोश चलती है। तुम नशे-नशे में चलते हो। तुम कहां जा रहे हो, यह बहुत साफ नहीं; क्यों जा रहे हो, यह भी बहुत साफ नहीं। दो भिखमंगे राह के किनारे बैठे बात करते थे। मैंने उनकी बात अचानक सुन ली। उनमें एक पूछ रहा था कि जिंदगी का प्रयोजन क्या है? किसलिए है जिंदगी? दूसरे ने कहा, जीने के सिवाय और कुछ कर भी क्या सकते हो!
तुम भी उस दूसरे से राजी हो कि जिंदगी में जीने के सिवाय और कर भी क्या सकते हो। और जीना भी तुम्हारे हाथ में नहीं; अनंत-अनंत स्थितियों पर निर्भर है। वह सब अचेतन है। क्यों तुम्हारे भीतर कामवासना उठी; क्यों तुमने परिवार बनाया; क्यों लोभ जगा; क्यों तुमने धन इकट्ठा किया; क्यों क्रोध उठा; क्यों तुमने शत्रु निर्मित किए; क्यों तुमसे अपराध हुआ; क्यों तुमने बेईमानी की--कुछ भी साफ नहीं है। तुम जैसे एक कठपुतली हो, धागे किसी और के हाथ में हैं। जैसे कोई और तुम्हें नचाता है और तुम नाचते हो। तुम्हें वहम भर है कि मैं नाच रहा हूं।
अपनी जिंदगी को गौर से देखो तो तुम पाओगे, तुम कठपुतली से ज्यादा नहीं हो। और ऐसी कठपुतली की जिंदगी में क्या सत्य की कोई घटना घट सकती है जो अपना मालिक भी न हो?
एक संध्या ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन और उसके दो मित्र भागे ट्रेन पकड़ने को। नसरुद्दीन चूक गया; पैर फिसला, गिर गया। दो चढ़ गए। स्टेशन मास्टर ने आकर उसे उठाया और कहा कि नसरुद्दीन, दुख की बात है कि तुम चूक गए! नसरुद्दीन ने कहा, मेरे लिए दुखी मत हो। वे दो जो चढ़ गए हैं, मुझे पहुंचाने आए थे। मैं तो दूसरी ट्रेन भी पकड़ लूंगा; उनका क्या होगा?
तीनों नशे में धुत्त थे।
यहां बड़ी हैरानी की बात है, जो चढ़ गया है, जो सफल हो गया है, पक्का मत समझना कि वह कहीं पहुंच जाएगा। जो असफल हो गया, नहीं चढ़ पाया, पक्का मत समझना कि कुछ खो गया है। यहां चढ़ने वाला, न चढ़ने वाला, सफल-असफल, जीत गया, हारा हुआ--सब एक से बेहोश हैं। जिंदगी के आखिर में हिसाब बराबर हो जाता है। सफल-असफल सब बराबर हो जाते हैं। धनी-गरीब सब बराबर हो जाते हैं। मौत तुम्हें बिल्कुल साफ कोरी स्लेट की भांति कर देती है।
सिर्फ एक व्यक्ति को मौत नहीं बराबर कर पाती--वह वह है, जिसने तीन के भीतर छिपे हुए चौथे को पहचान लिया; क्योंकि उसकी कोई मृत्यु नहीं है। वही बस सफल हुआ, शेष सभी असफल हैं। चाहे नेपोलियन, चाहे सिकंदर, वे सभी असफल हैं। सिर्फ कोई बुद्ध पुरुष कभी सफल होता है।

यहां सफलता बस एक है कि तुमने उसे जान लिया जिसकी कोई मृत्यु नहीं है।
जो मृत्यु से नष्ट हो जाए, उसे तुम असफलता समझना; इसे असफलता की व्याख्या बना लेना। तुम्हारे पास कुछ है, जो मृत्यु तुमसे न छीन पाएगी? इसको निरंतर विचार करना--मेरे पास कुछ है, जो मृत्यु मुझसे न छीन पाएगी? और अगर तुम पाओ कि कुछ भी नहीं है, तो जल्दी करना। अगर तुम पाओ कि सभी कुछ ऐसा है जो मृत्यु छीन लेगी, तो समय खोना अब उचित नहीं; जागने की घड़ी आ गई!
तीन--जिसको तुम जागरण कहते हो, तुम्हारा दिन; स्वप्न, तुम्हारी रात; और तुम्हारी निद्रा, जहां स्वप्न भी खो जाते हैं--ये तीनों ही मृत्यु में बुझ जाएंगे। इन तीनों का तुमसे कोई संबंध नहीं है। जैसे सूरज के चारों तरफ बादल घिर गए हों, ऐसे ही इन तीनों ने तुम्हारे सूरज को घेरा है। और अगर इन तीनों में ही तुमने अपने जीवन को नियोजित कर दिया तो मृत्यु के क्षण में तुम पाओगे कि तुम दीन-दरिद्र मर रहे हो। लेकिन अगर तुमने सूरज की किरण पकड़ ली--एक किरण भी पकड़ ली--तो सूरज ज्यादा दूर नहीं है। तब बादलों की तरफ तुम्हारी पीठ हो जाएगी और सूरज की तरफ तुम्हारा मुंह हो जाएगा।
पहला सूत्र हैः "तीनों अवस्थाओं में चौथी अवस्था का तेल की तरह सिंचन करना चाहिए।"
तीनों अवस्थाओं में--चाहे जागो, चाहे सोओ, चाहे सपना देखो--चौथे की स्मृति को जगाते रहना चाहिए। ध्यान चौथे पर रहे। परिधि पर कुछ भी घटता रहे, नजर केंद्र पर लगी रहे। होश उठते-बैठते सम्हाले रखना। भोजन करते, घर जाते, दुकान जाते--होश सम्हाले रखना।
एक बात ख्याल रखना कि मैं द्रष्टा हूं, कर्ता नहीं हूं। जीवन को एक अभिनय से ज्यादा मत समझना। अभिनय के साथ बहुत एकात्म मत हो जाना। तुम पति हो या पत्नी हो, दुकानदार हो कि ग्राहक हो--इसमें बहुत मत खो जाना। तुम्हारा पति होना या पत्नी होना, दुकानदार या ग्राहक होना एक अभिनय का हिस्सा है। लेकिन भीतर तुम बाहर बने रहना। जाना दुकान; जरूरी है, खेल प्यारा है, कुछ तोड़ने की जरूरत भी नहीं है। मगर खेल की तरह प्यारा है, जीवन की तरह घातक है। ठीक है, जो खेल मिला है, उसे पूरा कर देना; भगोड़े मत बनना; बीच में भागने की कोई जरूरत नहीं। भगोड़े हमेशा कमजोर हैं।
और जिन्हें तुम साधु-संन्यासी कहते हो, वे अक्सर भगोड़े हैं। वे कमजोर हैं, जो जिंदगी में टिक न पाए और जो जिंदगी में द्रष्टा को न सम्हाल पाए, इसलिए भाग गए हैं। भागने से कोई संन्यासी नहीं होता। भागने से केवल इतना ही बताता है कि संसार ज्यादा ताकतवर था और वह कमजोर था। दुकान पर न जाग सका, काम-धंधा करते हुए न जाग सका, इसलिए भाग गया है।
लेकिन अगर तुम दुकान पर न जाग सकोगे, तो पहाड़ में कैसे जाग जाओगे? जागने की क्रिया तो एक ही है। तुम कहां हो, इससे कोई भी संबंध नहीं है। तुम क्या कर रहे हो, इससे भी कोई संबंध नहीं है। यह असंगत है। जागने की क्रिया तो एक है--चाहे तुम दुकान पर बैठ कर जागो; चाहे तुम मंदिर में बैठ कर जागो; चाहे तुम मखमल की गद्दियों पर बैठ कर जागो; चाहे वृक्ष के नीचे बैठ कर जागो--जागने की क्रिया तो एक है। जागने की क्रिया यह है कि जो भी कृत्य हो रहा है, मैं उस कृत्य से पृथक हूं। वह कृत्य दुकान का है, काम का है, प्रार्थना का है, पूजा का है, कोई फर्क नहीं पड़ता। कृत्य मुझसे अलग है, वह संसार का हिस्सा है, और मैं देखने वाला हूं। कृत्य में इतने लीन न हो जाना कि कृत्य ही बचे और साक्षी खो जाए। अभी ऐसा ही हुआ है।
यह सूत्र कहता हैः तीनों अवस्था में चौथी को सिंचन करते रहना।
धीरे-धीरे सींचते-सींचते चौथी का वृक्ष खड़ा हो जाएगा। पहले शुरू करना जाग्रत से; क्योंकि वही चौथी के निकटतम है। उसमें थोड़ी सी किरण जागने की है, थोड़ा सा होश है। उस किरण का उपयोग करना। नींद में तो तुम कैसे जाग सकोगे एकदम से? सपने में कैसे जागोगे?
तो पहले जागने से शुरू करना। जागने में एक प्रतिशत होश है, निन्यानबे प्रतिशत बेहोशी है। इस एक प्रतिशत का उपयोग करना; इसको सींचना। जब भी दिन में मौका आ जाए, तो अपने को झकझोर कर जगा लेना। बार-बार खो जाएगी स्थिति। फिर तुम भूल जाओगे। फिर एक झटका देना और अपने को जगा लेना। जैसे कोई आदमी बाजार जाता है सामान खरीदने, भूल न जाए, कपड़े पर गांठ लगा लेता है। ऐसे तुम भूल न जाओ, तो हर जगह अपनी चेतना पर एक गांठ लगा लेना। हर जगह--कुछ भी कर रहे

हो--एक दफा ख्याल कर लेना कि मैं करने वाला नहीं हूं, सिर्फ देखने वाला हूं।
ऐसा ख्याल आते ही तुम पाओगे, सब तनाव खो गया। सब तनाव कर्तृत्व का है, अहंकार का है। जैसे ही तुम्हें लगेगा, मैं देखने वाला हूं, तनाव खो जाएगा। एक क्षण को भी खोएगा, तो भी झलक आएगी। भीतर सागर लहरें लेने लगेगा। बार-बार खोएगा; क्योंकि जन्मों-जन्मों से तुमने बेहोशी साधी है, तोड़ने में समय लगेगा। मगर अगर तुमने सतत सिंचन किया और दिन में दस-बीस मौके पर भी तुम जरा सी भी देर को जाग गए--रास्ते पर चलते हुए खड़े हो गए और तुमने साक्षी-भाव से देखा; भोजन करते हुए अपने को हिला लिया, जगा लिया, और साक्षी-भाव से देखा; दुकान पर बैठे हुए, ग्राहक से बात करते हुए, भूले ही जा रहे थे कि तुमने अपने को सम्हाल लिया--तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि आसान होती जाती है बात; रोज-रोज आसान होती जाती है। और दिन में कभी-कभी झलकें आने लगेंगी तुरीय की।
जब दिन में तुरीय सरल हो जाएगा, तब तुम सपने में भी उसका उपयोग कर सकोगे। तब रात सोते वक्त एक ही ख्याल रख कर सोना कि मैं देखने वाला हूं, मैं द्रष्टा हूं। नींद आने लगे, आने लगे, तुम्हारे भीतर एक ही स्वर गूंजता रहे कि मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं। इस भाव को पुनरुक्त करते हुए तुम सो जाना। तुम्हें पता भी न चले कि कब नींद लग गई और कब यह भाव-धारा टूटी।
अगर तुम इस भाव-धारा को सम्हालते चले गए, सम्हालते चले गए, नींद आ जाएगी, भाव-धारा जारी रहेगी। क्योंकि भाव-धारा तुम्हारे भीतर चल रही है, नींद तो शरीर को आती है। अगर भाव-धारा भीतर जारी रही तो एक दिन तुम अचानक स्वप्न में भी अनुभव करोगे कि मैं देखने वाला हूं। और जैसे ही तुम अनुभव करोगे, अनूठी प्रतीति होगीः स्वप्न तत्क्षण टूट जाएगा। जैसे ही तुम्हें यह ख्याल आएगा स्वप्न में कि मैं देखने वाला हूं, वैसे ही स्वप्न बंद हो जाएगा। स्वप्न चलता ही तुम्हारी बेहोशी से है। और जब ऐसा स्वप्न में होने लगे, तब तीसरी घटना संभव होती है कि तब तुम स्वप्न को देखते रहना और भीतर स्मरण करते रहना कि मैं साक्षी हूं। स्वप्न खो जाएगा, तुम भीतर स्मरण जारी रखना कि मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं। नींद पुनः आ जाएगी और अब नींद में भी यह धारा प्रविष्ट हो जाएगी।
और जिस दिन नींद में यह धारा प्रविष्ट हो जाती है कि मैं साक्षी हूं, तुम्हारे हाथ परम खजाने की कुंजी लग गई। अब तुम्हें कोई भी बेहोश न कर पाएगा। जो नींद में एक क्षण को भी जाग गया, अब उसकी बेहोशी बिल्कुल टूट जाएगी। जिस दिन तुम नींद में जाग लोगे, उस दिन तुम योगी हो गए। योगी कोई आसन करने से नहीं होता। वह सब व्यायाम है; अच्छा है; शरीर के लिए स्वास्थ्यप्रद है; करें तो बुरा नहीं। लेकिन शरीर के व्यायाम को ही अगर कोई योग समझ लेता हो, तो वह बड़ी भ्रांति में पड़ गया है। योग का अर्थ हैः निद्रा में जो जाग्रत हो जाए, वही योगी है। उसके पहले कोई योगी नहीं।
यह सूत्र कहता हैः तीनों अवस्थाओं में चौथे का तेल की भांति सिंचन करते रहना।
एक न एक दिन वह अनूठी घटना घट जाएगी! जब तुम्हें नींद में भी जागरण होगा तो चौथे में थिर हो जाओगे। जब कोई चौथे में थिर हो जाता है, तो ऐसी अवस्था हो जाती है, जैसे दीया जल रहा हो और कोई हवा का झोंका न हो और दीये की लौ अकंप हो जाए, जरा भी न कंपती हो--ऐसी तुम्हारी प्रज्ञा होगी; ऐसा तुम्हारा ज्ञान होगा; ऐसी तुम्हारी आत्मा होगी--अकंप, प्रकाश से भरी। फिर तुम उठोगे, जागोगे, सोओगे, कई बातों में रूपांतरण हो जाएगा।
पहली बात, जो नींद में जाग जाएगा उसके स्वप्न सदा के लिए समाप्त हो जाएंगे। बुद्ध पुरुष स्वप्न नहीं देखते। तो पहली घटना यह घटेगी नींद में जागने पर। स्वप्न में जागने पर, जिस स्वप्न में जागोगे, वह टूट जाएगा, लेकिन दूसरे सपने जारी रहेंगे। निद्रा में जागने पर, जब कोई स्वप्न भी न था, सिर्फ सुषुप्ति थी, तब जागने पर, फिर सभी सपने खो जाएंगे। फिर तुम रात सपने न देखोगे।
यह घटना घटेगी, स्वप्न सब गिर जाएंगे, क्योंकि स्वप्न वासना से घिरा हुआ चित्त देखता है। स्वप्न है क्या? जिसे तुम दिन में पूरा नहीं कर पाते,

उसे तुम रात सपने में पूरा कर लेते हो। सभी सम्राट नहीं हो सकते; बड़ा संघर्ष है, बड़ी प्रतियोगिता है; तो भिखारी रात सपना देख लेते हैं सम्राट होने का। और कुल जोड़ बराबर हो जाता है। क्योंकि कोई आदमी दिन भर सम्राट रहा, आठ घंटे रात सोएगा तो, सपना तो देखेगा। तब उसका सब साम्राज्य खो जाएगा। भिखमंगा रात आठ घंटे सोता है, वह सपना देखता है कि मैं सम्राट हूं। आखिरी हिसाब बराबर है।
ऐसा हुआ कि औरंगजेब एक फकीर पर बहुत नाराज था। और एक दिन उसने फकीर को पकड़वा कर महल बुलवा लिया। और लोगों ने कहा था, इस फकीर को नाराज करना तक मुश्किल है। औरंगजेब ने कहा, देखेंगे। सर्द रात थी--दिल्ली की सर्द रात-- महल में राग-रंग चलता रहा और फकीर को नग्न करवा कर यमुना में खड़ा करवा दिया। और औरंगजेब ने कहा कि सुबह पूछेंगे।
रात भर फकीर नग्न बर्फीली नदी में खड़ा रहा। सुबह औरंगजेब ने पूछा, कहो, कैसी बीती? फकीर ने कहा, कुछ तुम जैसी, कुछ तुमसे अच्छी! औरंगजेब ने पूछा, मैं समझा नहीं। फकीर ने कहा, सपने आते रहे। उनमें मैं सम्राट था। महलों में था, राग-रंग चल रहा था। उन सपनों में और तुम्हारे राग-रंग में जो महल में चल रहा था, जरा भी भेद नहीं है। मैं उतना ही मजा लिया, जितना तुम लिए। तो कुछ तुम जैसी। कुछ तुमसे अच्छी; क्योंकि बीच-बीच में होश आ गया और सपना टूट गया। तुम्हें अभी होश जरा भी नहीं आया।
रात तुम वही तो पूरा करते हो, जो दिन में चूक जाता है। दिन के अधूरे कृत्य रात में पूरे किए जाते हैं। दिन में जो वासनाएं तुम पूरी न कर पाए, क्योंकि कठिनाइयां हैं। और वासनाएं पूरी करना आसान नहीं है, क्योंकि वासनाएं दुष्पूर हैं। और ऐसी हैं कि उनके पूरे होने का कोई उपाय ही नहीं, उनका स्वभाव पूरा होना नहीं है। तुम्हें सारी दुनिया की संपत्ति मिल जाए, तो भी पूरी न होगी।
कहते हैं, सिकंदर को डायोजनीज ने कहा कि सिकंदर, जिस दिन तू सारी दुनिया जीत लेगा, बड़ी मुश्किल में पड़ेगा। यह काम छोड़ ही दे। जब तक जीता नहीं, तब तक मुश्किल में है, और जब जीत लेगा तो और भी मुश्किल में पड़ेगा। सिकंदर, कहते हैं, उदास हो गया। और उसने डायोजनीज से कहा, ऐसी बातें मत करो। क्योंकि यह ख्याल ही कि सारी दुनिया मैंने जीत ली, मुझे उदास करता है; क्योंकि फिर कोई और दूसरी दुनिया तो जीतने को है नहीं। सारी दुनिया जीत कर भी मन भरेगा नहीं। मन कहेगा--अब क्या? अब क्या जीतें? और मन उदास होगा। सपने सम्राट भी देखते हैं, भिखमंगे भी देखते हैं। क्योंकि अधूरा जो
रह गया, वह सपने में पूरा कर लेना पड़ता है। सपने का एक गुण है। सपना बड़ा दयालु है। सपना तुम पर बड़ी कृपा करता है। अगर तुमने दिन में उपवास किया है, किन्हीं साधु-संन्यासियों के चक्कर में पड़ गए और तुम भूखे मरे, तो रात तुम राज-भोज में सम्मिलित हो जाओगे। सपना तुम्हारे साधुओं से ज्यादा दयालु है। वह तुम्हें राज-भोज में बुला लेगा। बढ़िया से बढ़िया मिष्ठान्न, जो तुम्हें कभी नहीं मिले, सुंदर से सुंदर भोजन तुम कर पाओगे। और उनके स्वाद में और असली भोजन के स्वाद में जरा भी अंतर नहीं है। शायद थोड़ा उनका स्वाद ज्यादा ही है। तुम अगर स्त्रियों के पीछे दौड़ते रहे और उन्हें नहीं पा सके, तो सपने में तुम उन्हें पा लोगे। दुनिया की सुंदरतम स्त्रियां तुम्हारी हो जाएंगी या सुंदरतम पुरुष तुम्हारे हो जाएंगे।
सपना तुम्हें द्वार खोल देता है कि तुम्हारी सारी वासनाओं को पूरा कर लो। और आदमी अगर साठ साल जीता है, तो बीस साल सोता है, बीस साल जागता है, बीस साल दूसरे कामों में व्यतीत होते हैं। अगर बीस साल सपने में तुम सम्राट रहते हो और कोई आदमी जाग कर सम्राट रहता है, तो फर्क क्या है? हिसाब बराबर है। शायद जागने में जो सम्राट रहता है, वह झंझटों में सम्राट रह भी नहीं पाता; तुम निश्चिंत भाव से सम्राट रहते हो सपनों में।
सपने उसी दिन खोते हैं, जिस दिन कोई नींद में जाग जाता है। तब सपने व्यर्थ हो जाते हैं। क्योंकि नींद में जो जाग गया, अब उसकी कोई वासना न रही। सब वासनाएं मूर्च्छा के हिस्से हैं, बेहोशी के हिस्से हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन ट्रेन से उतरा। चक्कर खाता हुआ सा मालूम होता था। किसी मित्र ने पूछा कि बीमार लग रहे हो, क्या बात है? नसरुद्दीन ने कहा कि जब भी मैं ट्रेन में सवार होता हूं और कभी उलटी यात्रा करनी पड़ती

है--जिस तरफ ट्रेन जा रही है, उस तरफ मुझे पीठ रखनी पड़ती है--तो मुझे वमन, और चक्कर, और सिरदर्द पैदा हो जाता है। तो उस मित्र ने कहा, भले आदमी, सामने के आदमी से पूछ लिया होता कि भई मैं जरा तकलीफ में हूं, जगह बदल लो। नसरुद्दीन ने कहा, वह मैंने भी सोचा था। लेकिन सामने की सीट खाली थी, वहां कोई आदमी नहीं था। पूछने का मैंने भी सोचा था।
जिंदगी में तुम जो कर रहे हो, करीब-करीब ऐसा ही बेहोश है। धुत्त हो एक नशे में। इस नशे को कहीं न कहीं से तोड़ना जरूरी है। कहां से तुम शुरू करोगे? जागृति से शुरू करो। सुबह उठो, एक ही भाव से उठो कि आज दिन साक्षी का प्रयोग करूंगा। और जब पहली दफा तुम्हें सुबह नींद खुलती है, तब चित्त बड़ा ताजा होता है, हलका होता है; न विचार होते हैं, न सपने होते हैं। रात भर के विश्राम के बाद तुम्हारे भीतर भी एक सुबह होती है, बाहर भी एक सुबह होती है। तनाव नहीं होते। आकाश में बादल नहीं होते। तुम हलके होते हो। जल्दी ही काम की, दौड़ की दुनिया शुरू होगी, फिर मुश्किल होगा।
तो जैसे ही तुम्हें पता चले, सुबह की नींद टूट गई, आंख मत खोलना। उस वक्त चित्त बहुत संवेदनशील है। जैसे ही पता चले नींद टूट गई, पहला ध्यान एक करना कि मैं साक्षी हूं। रोज सुबह उठते समय पांच मिनट आंख बंद किए ही पड़े रहना। आंख मत खोलना। आंख खोलते ही संसार दिखाई पड़ा कि तुम खो जाओगे। आंख बंद ही रखना और भीतर एक भाव करना कि मैं साक्षी हूं, कर्ता नहीं। और यह साक्षी-भाव दिन भर सधे, बार-बार इसका मैं स्मरण कर सकूं--ऐसे भाव में डूबे हुए तुम उठना। और थोड़ी देर इसे सम्हालने की कोशिश करना; क्योंकि शुरू-शुरू में सबसे ज्यादा आसान होगा। उठो, बिस्तर के नीचे पैर रखो--होशपूर्वक रखना; स्नान करने जाओ--होशपूर्वक स्नान करना; सुबह का नाश्ता करो--होशपूर्वक नाश्ता करना।
होशपूर्वक का अर्थ हैः यह सब मेरे बाहर हो रहा है। शरीर की जरूरत है, मेरी नहीं। मेरी कोई जरूरत ही नहीं है। है भी नहीं; क्योंकि तुम स्वयं परमात्मा हो, तुम्हारी क्या जरूरत हो सकती है? तुम पूर्ण हो। तुम ब्रह्म स्वरूप हो। सब कुछ तुम्हारा है। तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं है। आत्मा किसी जरूरत से नहीं चलती। उसके लिए कोई ईंधन की जरूरत नहीं है--बिन बाती बिन तेल। मेरी कोई जरूरत नहीं है; शरीर की जरूरत है--स्नान, भोजन, उठना, काम।
इसे सम्हालने की कोशिश करना। इस धागे को जितनी देर तक खींच सको, खींचना। जल्दी ही यह खो जाएगा। काम-धाम की दुनिया है; पुरानी आदत है। मगर रोज-रोज इसको सींचना। यह पौधा धीरे-धीरे बड़ा होगा। दिखाई भी नहीं पड़ेगा कब बड़ा हो रहा है, क्योंकि इतने धीमे-धीमे बढ़ेगा। लेकिन अचानक एक दिन तुम पाओगे कि दिन भर एक धागे की तरह, तुम्हारे भीतर प्रकाश की एक किरण बनी रहती है। और वह प्रकाश की किरण तुम्हारे जीवन को रासायनिक रूप से बदल देगी। क्रोध कम आएगा; क्योंकि साक्षी को कैसा क्रोध! मोह कम पकड़ेगा; क्योंकि साक्षी को कैसा मोह! चीजें घटेंगी, सफलता-असफलता होगी, सुख-दुख आएंगे; लेकिन तुम कम डांवाडोल होओगे; क्योंकि साक्षी का कैसा कंपन! सुख आएगा, उसे भी तुम देख लोगे; दुख आएगा, उसे भी देख लोगे; और तुम्हारे भीतर सतत धारा बनी रहेगी कि मैं देखने वाला हूं, भोक्ता नहीं हूं।
कोई भी नहीं कह सकता कि कितना समय लगेगा। तुम्हारी त्वरा, तीव्रता, तुम्हारी सघन आकांक्षा, अभीप्सा पर निर्भर करेगा। कैसे तुम चलते हो! दौड़ते हो कि चींटी की चाल चलते हो! क्योंकि अक्सर धर्म की दुनिया में लोग बाराती की चाल चलते हैं। बाराती की चाल से कहीं पहुंचोगे नहीं। बाराती की चाल ठीक है; क्योंकि बारात को कहीं पहुंचना ही नहीं है। वह ऐसे ही गांव का चक्कर लगा कर वहीं के वहीं आ जाना है।
ईसप हुआ, एक बोध-कथाकार, उसने जैसी बोध-कथाएं लिखीं, दुनिया में किसी
ने नहीं लिखीं। वह आदमी बड़ी प्रज्ञा का था। एक किनारे बैठा था रास्ते के एक दिन। एक आदमी निकला और उसने पूछा कि भाई मेरे, बता सकोगे कि गांव कितनी दूर है और मैं कितनी देर में पहुंच जाऊंगा? ईसप कुछ भी न बोला; सिर्फ उठ कर उस आदमी के साथ चलने लगा। वह आदमी थोड़ा डरा भी। उसने कहा कि मैंने पूछा है कि गांव कितनी दूर है, मैं कितनी देर में पहुंच जाऊंगा? तुम कुछ उत्तर दो,

तुम्हें चलने की कोई जरूरत नहीं है मेरे साथ। लेकिन ईसप चुपचाप उसके साथ चलता रहा।
कोई पंद्रह मिनट बाद ईसप ने कहा, दो घंटे लगेंगे। उस आदमी ने कहा, हद्द पागल आदमी हो। यह बात तुम वहीं कह सकते थे। मेरे साथ मील भर आने की जरूरत न थी। ईसप ने कहा, जब तक तुम्हारी चाल न देख लूं तब तक कैसे बताऊं कितनी देर लगेगी। रास्ते की लंबाई से थोड़े ही तय होता है; आदमी की चाल! अब मैं निश्चिंत भाव से कहता हूं, दो घंटे लगेंगे।
तुम्हारी चाल पर निर्भर करेगा। तुम दौड़ भी सकते हो--तुम जल्दी पहुंच जाओगे। तुम बाराती की चाल से भी चल सकते हो--तब तुम कब पहुंचोगे, कुछ कहना मुश्किल है। तुम्हारी तेजी इतनी भी हो सकती है कि एक क्षण में तुम छलांग लगा जाओ। और तुम इतने मंदे-मंदे भी, कुनकुने-कुनकुने भी उबल सकते हो कि अनंत जन्म लग जाएं और तुम न पहुंचो।
अगर तुम पूरी त्वरा से, समग्र भाव से, पूरे प्राणों से, कुछ भी न बचाओ भीतर और सभी दांव पर लगा दो, तो अभी पहुंच जाओगे--इसी क्षण! क्योंकि यह यात्रा कोई बाहर की यात्रा नहीं है। यह यात्रा तो भीतर की है, जहां तुम हो ही, सिर्फ नजर फेरने की बात है। फासला जरा भी नहीं है। मगर अगर नजर ही फेरने में तुम देर लगाओ, स्थगन करो, कहो कि कल करेंगे, परसों करेंगे, तो फिर ऐसे अनंत जन्म जा चुके हैं, अनंत और जा सकते हैं।
और ध्यान रहे, प्रकृति को तुम्हारी धार्मिक उपलब्धि में कोई उत्सुकता नहीं है। मनुष्य जहां तक आ गया है, वहां तक प्रकृति ले आती है; इसके पार तुम्हें जाना हो, तो तुम्हारा ही श्रम ले जाएगा। प्रकृति तुम्हें पशु बनाती है, उससे आगे नहीं। उतना काम प्रकृति कर देती है। मनुष्यत्व तो अर्जित करना होता है। और इसलिए आदमी बड़े ही संकट में--बड़े संकट में जीता है!
सभी पशु शांत हैं, आदमी को छोड़ कर; क्योंकि प्रकृति ने काम पूरा कर दिया और उन्हें कहीं जाना नहीं है। तुम किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते हो कि तुम दूसरे कुत्तों से कम कुत्ते हो। सभी कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। दुबले हों, मोटे हों, ताकतवर हों, कमजोर हों, लेकिन कुत्तेपन में कोई फर्क नहीं है। लेकिन सभी आदमी बराबर आदमी नहीं हैं। आदमीयत में फर्क है। दुबला- पतला आदमी भी बहुत बड़ा आदमी हो सकता है। मोटा-तगड़ा आदमी भी बिल्कुल छोटा आदमी हो सकता है।
एक नया गुणधर्म शुरू होता है आदमी के साथ। किस बात से तय होता है? जितना होश होगा, उतनी ही ज्यादा मनुष्यता फलित होगी। और जिस दिन तुम परिपूर्ण होश से भर जाओगे, उस क्षण दिव्य हो जाओगे। खतरा भी बड़ा है; क्योंकि जो ऊपर उठ सकता है, वह नीचे भी गिर सकता है। सिर्फ वही नीचे गिर सकता है, जो ऊपर उठ सकता है; जो ऊपर नहीं उठ सकता, वह नीचे भी नहीं गिर सकता। इसलिए तुम जानवरों में बुद्ध, महावीर, कृष्ण को न पाओगे; लेकिन तुम्हें वहां हिटलर, स्टैलिन, नेपोलियन और चंगेज खां भी न मिलेंगे। क्योंकि जब बुद्धत्व नहीं हो सकता, तो चंगेज खां होने का भी उपाय नहीं है। जहां पर्वत-शिखर होते हैं, वहीं खाइयां होती हैं।
टोकियो में एक अजायबघर है। सारी दुनिया के पशु वहां इकट्ठे हैं। बड़ा अजायबघर है, बड़े से बड़ा अजायबघर है। खतरनाक से खतरनाक पशु--सिंह, बबर सिंह, चीते, हाथी, गेंडे--जंगली जानवर, हिप्पोपोटेमस और सब तरह के जानवरों का बड़ा विस्तार है। पूरे अजायबघर को घूमने के बाद आखिरी जो कठघरा है, उस पर एक तख्ती लगी है--दि मोस्ट डेंजरस एनीमल ऑफ आल! सब जानवरों से खतरनाक जानवर! तुम एकदम तेजी से कदम बढ़ाओगे कि कौन सा जानवर वहां बंद है। और वहां तुम सिर्फ एक दर्पण पाओगे, जिसमें तुम्हारी तस्वीर दिखाई पड़ेगी। वह कठघरा खाली है।
आदमी निश्चित ही सबसे खतरनाक जानवर है। क्योंकि उसमें दिव्य होने की क्षमता है, इसलिए नीचे गिरने का उपाय है। अगर तुम ऊपर न चढ़े, तो तुम जहां हो वहीं न रह सकोगे, तुम नीचे गिरोगे। यहां ठहराव नहीं है जगत में। यहां कोई ठहर नहीं सकता। या तो बढ़ो ऊपर या नीचे गिरोगे। यहां मध्य में रुकने की कोई जगह नहीं है। और इसलिए अगर तुम चेतना की तरफ नहीं जा रहे हो, तो तुम धीरे- धीरे मूर्च्छा की तरफ जाओगे।

बड़ी आश्चर्य की और बड़ी दुख की घटना है कि छोटे बच्चे ज्यादा चेतन होते हैं बजाय बूढ़ों के। क्या घटना घट जाती है? होना चाहिए उलटा कि जीवन भर के अनुभव के बाद बूढ़ा आदमी ज्यादा सचेत हो जाए, सावधान हो जाए। लेकिन होता उलटा है--ज्यादा चालाक हो जाता है; अनुभव से ज्यादा बेईमान हो जाता है; ज्यादा चोर, ज्यादा कुशल हो जाता है संसार में।
एक बूढ़ा कौआ अपने बेटे को शिक्षा दे रहा था और उससे कह रहा था कि देख, अनुभव की बात है--आदमी से सावधान रहना; आदमी भरोसे के नहीं हैं। और अगर किसी आदमी को तू झुकते देखे, फौरन उड़ जाना; वह पत्थर उठा रहा होगा। बेटे ने कहा, और अगर वह पत्थर पहले से ही बगल में दबाए आ रहा हो तो? यह सुनते ही बूढ़ा कौआ उड़ गया। उसने कहा कि यह लड़का भी खतरनाक है; इसके पास रुकना उचित नहीं।
बूढ़े आदमी सिर्फ जीवन के अनुभव से ज्यादा जागरूक तो नहीं होते, ज्यादा बेईमान हो जाते हैं, चालाक हो जाते हैं। लेकिन चालाकी से क्या मिलेगा? यहां कुछ मिलने को ही नहीं है। न तो भोलेपन से यहां कुछ खोने को है, न चालाकी से यहां कुछ मिलने को है। यहां जो भी हम बना रहे हैं, वे रेत पर बनाए हुए भवन हैं; बन जाएं तो भी मिटेंगे, न बनें तो भी कुछ हर्ज नहीं है। बच्चे ज्यादा चेतन मालूम पड़ते हैं। बच्चों को देखें! उनकी आंखें ज्यादा होशपूर्ण मालूम पड़ती हैं। वे ज्यादा सजग मालूम पड़ते हैं। उन्हें सुलाने के लिए हमें उपाय करने पड़ते हैं। सब भांति हम उनकी इंद्रियों को काटते हैं, ताकि उनकी सचेतना कम हो जाए। जोर से हंसने नहीं देते; जोर से रोने नहीं देते; दौड़ने, उछलने, कूदने नहीं देते। उनकी जीवन-ऊर्जा को हम सब तरफ से कैद करते हैं। उन्हें हम जल्दी से जल्दी बेईमान बना लेना चाहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे से मैंने पूछा कि तेरी उम्र कितनी है? उसने कहा, घर में सात साल और बस में पांच साल।
इस बेटे को बाप ने रास्ते पर लगा दिया!
एक घर में मैं मेहमान था। और ऐसे ही मेरे कान में सुनाई पड़ गया। घर की गृहिणी अपने बच्चे को सुला रही थी बगल के कमरे में। वह सो नहीं रहा था; उसको थपकार रही थी। और उससे बोली कि सो जा! रात कोई जरूरत हो--पानी लगे, प्यास लगे--कुछ भी जरूरत हो, तो जोर से मां को आवाज देना और पिताजी फौरन आएंगे!
मां को आवाज देना और पिताजी फौरन आएंगे। सभी माताएं यह कर रही हैं। लेकिन इस बच्चे को क्या सिखाया जा रहा है? एक झूठ, एक बेईमानी, एक चालाकी! दूध के साथ हम जहर पिलाना शुरू कर देते हैं। और हमारी पूरी कोशिश यह होती है कि बच्चा जल्दी से जल्दी बेईमान, चालाक... । हमारी कोशिश यह नहीं होती कि ज्यादा होशपूर्ण हो जाए।
दुनिया में जब कभी सचमुच संस्कृति पैदा होगी और शिक्षा का ढंग होगा,
तो पहली बात जो सिखाने की है बच्चे को वह यह है कि वह ज्यादा होशपूर्ण हो। तुरीय सिखाने की बात है; और सब तो सिखाने जैसा नहीं है। बाकी सब कामचलाऊ है। और बच्चा जैसा ताजा है--जैसे सुबह तुम ताजे होते हो थोड़े से--ऐसा बच्चा बहुत ताजा है; उसके जीवन की सुबह है। अगर वहीं उसे तुरीय का सूत्र मिल जाए और जागने की कला सिखाई जाए, तो वह बूढ़ा होते-होते शिखर पर पहुंच जाएगा, बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएगा।
एक ही चीज साधने जैसी है और वह हैः तीनों अवस्थाओं में तेल की भांति सिंचन करना--तुरीय का, होश का, विवेक का, जागरण का, अमूर्च्छा का, अप्रमाद का।
"ऐसा मग्न हुआ स्व-चित्त में प्रवेश करे।"
ऐसा मग्न हुआ स्व-चित्त में प्रवेश कर ही जाता है।
"मग्नः स्वचित्ते प्रविशेत्।"
और जो इस तुरीय में मग्न हो गया, और इससे बड़ी और कोई मग्नता नहीं है। तुम्हारी सब शराबें क्षण भर को रस देती होंगी, फिर रस सूख जाता है। तुरीय का रस कभी नहीं सूखता। वह रसधारा शाश्वत है। और जो उसमें मग्न हुआ; जो उसमें नाच गया; जो उससे भर गया; जिसके रोएं-रोएं में तुरीय समा गया; जिसके होने का ढंग जागना हो गया; जिसके उठने-बैठने में तुरीय उठा और बैठा; जिसके

चलने-फिरने में तुरीय चला और फिरा; जिसके जीवन का कण-कण तुरीय में स्नान कर गया; जो ऐसा मग्न हो गया, वही स्व-चित्त में प्रवेश करता है। अन्यथा तुम स्वयं से अपरिचित रह जाओगे। इस संसार में सबसे परिचित हो जाओगे, बस स्वयं से अपरिचित हो जाओगे। यह सारा संसार तुम्हारा परिवार हो जाएगा, लेकिन अपने प्रति तुम अजनबी रह जाओगे।
तुम बता सकते हो बहुत कुछ दूसरों के बाबत, उनके नाम-धाम, पते-ठिकाने तुम्हें मालूम हैं; लेकिन अपने संबंध में तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। और जब तक कोई स्वयं को न जान ले, उसका सब जानना दो कौड़ी का है। उस जानने का कोई भी मूल्य नहीं, क्योंकि आधार में अज्ञान है।
"ऐसा मग्न हुआ स्व-चित्त में प्रवेश करे।"
अगर तुम तीनों अवस्थाओं में सींचते रहोगे तुरीय को, तो जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन के पौधे में तुरीय आ गया। बुद्ध का चलना, उठना, बैठना भिन्न है। वे उठते भी हैं तो एक जागरण है; चलते हैं तो एक जागरण है। उनसे जो भी घटित होता है, वह मूर्च्छा में घटित नहीं हो रहा है। होश है। वे जो भी कर रहे हैं, सचेतन है।
तुमने अब तक जो भी किया है, अचेतन है। हालांकि तुम कहते हो मैंने जान
कर किया, वह भी झूठ है। तुम्हारा बच्चा कपड़े फाड़ कर घर लौट आया है, कि स्लेट तोड़ कर घर लौट आया है, और तुमने उसे मारा है, डांटा है, डपटा है। तुमसे अगर कोई पूछे, तो तुम कहोगे कि मैंने होशपूर्वक किया; बच्चे के सुधारने के लिए किया। लेकिन तुम थोड़ा विश्लेषण करना। सच में तुमने सोच कर किया है? सच में तुम होशपूर्वक थे? कि तुम क्रुद्ध हो गए, तुम नाराज हो गए और तुमने बच्चे से बदला लिया है? बच्चे ने तुम्हारी आज्ञा तोड़ी, तुम उससे नाराज हो। अगर तुम नाराज हो, तो तुम जो भी कर रहे हो वह बेहोशी में है; क्योंकि क्रोध बेहोशी है। और तुम जो कह रहे हो वह केवल समझाने की बातें हैं। तुम जो कह रहे हो--इसके सुधार के लिए।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को मार रहा था। और कह रहा था--तेरे सुधार
के लिए। और कह रहा था कि देख, एक तू है कि रोज दिन में दो बार तुझे न पीटूं तो कोई रास्ता नहीं निकलता; और एक मैं भी था अपने बचपन में कि मेरे बाप ने मुझे कभी नहीं मारा। उसके लड़के ने उसकी तरफ देखते हुए कहा, इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारे बाप भले आदमी रहे होंगे।
तुम भला मार रहे हो बेटे को और तुम समझ रहे हो कि तुम भला कर रहे हो; बेटा कुछ और समझ रहा है। क्योंकि बेटा तुम्हारे मारने को नहीं देख रहा है, तुम्हारे क्रोध को देख रहा है। तुम जो भी कर रहे हो, तुम रेशनलाइजेशन, तुम उसके आस-पास तर्क खड़ा करते हो। और तुम समझाते हो अपने को कि मैं बिल्कुल ठीक कर रहा हूं।
कल ही एक मित्र अपनी पत्नी को लेकर मेरे पास आए। पत्नी उन्हें ध्यान नहीं करने देती। सोचती पत्नी यही है कि यह ध्यान ढंग का नहीं है। पुराण-पंथी विचार हैं। लेकिन यह तो ऊपर-ऊपर है; अचेतन कारण बिल्कुल दूसरा है। कोई पत्नी नहीं चाहती कि पति ध्यान करे। कोई पति नहीं चाहता कि पत्नी ध्यान करे। क्योंकि जैसे ही कोई ध्यान करता है कि पुराना संबंध खतरे में पड़ जाता है। जैसे ही कोई ध्यान में गया कि वैसे ही काम से उसका रस कम हो जाएगा। यह अचेतन कारण है। बाकी सब बहाने हैं। बाकी सब ऊपर-ऊपर है। पत्नी यह पसंद भी कर सकती है कि पति वेश्यालय चला जाए; इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन पति संन्यास की तरफ उत्सुक हो जाए, इससे फर्क पड़ता है। वेश्यालय जाकर भी पत्नी के बहुत विरोध में नहीं जा रहा है, क्योंकि स्त्री में अभी भी उत्सुक है। लेकिन ध्यान में उत्सुकता बढ़ने का अर्थ हुआ कि स्त्री में उत्सुकता खो जाएगी।
तो अगर पत्नी के सामने चुनाव ही हो कि पति वेश्याघर जाए कि संन्यास में उतरे, तो पत्नी चुनेगी कि वेश्याघर चला जाए--अगर यही चुनाव हो। लेकिन पत्नी सोचेगी यह कि घर में बच्चे हैं, उनको पालना है, और ध्यान में लग जाओगे तो कैसे पालोगे?
ध्यान से बच्चों के पालने में कोई विरोध नहीं है; न ध्यान से दुकान में काम करने में कोई विरोध है। सच तो यह है कि ध्यानी जितनी कुशलता से कर पाता है, कोई भी नहीं कर पाता। क्योंकि ध्यान संसार से तोड़ता है भीतर गहरे

में, बाहर से नहीं तोड़ता। बाहर तो सब खेल वैसा ही चलता रहता है, लेकिन खेल हो जाता है। भीतर एक नयी ज्योति जगने लगती है। बाहर का अभिनय तो जारी रहता है।
लेकिन पति-पत्नी को कष्ट होते हैं। ऊपर से वे कुछ भी कहें, और उनकी खुद
की भी समझ यही हो कि वे ठीक इसी कारण रुकावट डाल रहे हैं, लेकिन भीतर कारण दूसरा होता है--कामवासना का संबंध है। ध्यान में जाने का अर्थ हुआ कि कामवासना का संबंध शिथिल होने लगेगा। पति की उत्सुकता धीरे-धीरे कामवासना में कम हो जाएगी।
इधर मेरे पास रोज इस तरह के मित्र आते हैं, जो कहते हैं कि मेरी पत्नी
की उत्सुकता ही नहीं थी काम में बिल्कुल; लेकिन जब से मैं ध्यान में उत्सुक हुआ, तब से वह एकदम आक्रामक हो गई है काम के लिए। आमतौर से स्त्रियों की उत्सुकता नहीं होती; क्योंकि निश्चिंत हैं, कोई भय नहीं, कोई खतरा नहीं। वे इतनी भी उत्सुकता नहीं दिखाती काम में, बल्कि वे कामवासना में ऐसा ही रखती हैं कि ठीक है, तुम्हारे लिए। यह भी झूठ है। यह सरासर झूठ है। लेकिन जब पति खुद ही चारों तरफ चक्कर लगा रहा है, तो क्यों उत्सुकता दिखाएं! तब वे अपने शील और चरित्र का भी भाव बनाए रखती हैं कि पति के लिए उनको इस गर्हित कृत्य में उतरना पड़ता है। लेकिन जैसे ही पति ध्यान में उत्सुक हो जाए, फिर बेचैनी खड़ी हो जाती है। अब खतरा है, और अब पति को खींच लेना शरीर में जरूरी है।
और ऐसा ही पति को भी घटता है। कुछ ही दिन पहले एक पत्नी मेरे पास आईं।
वह उत्सुक हैं, सच में उत्सुक हैं, और परिणाम गहरे हो सकते हैं। उनके पति मेरी किताबें जला देते हैं, घर के बाहर फेंक देते हैं। पति कहते हैं कि मेरे रहते हुए तुझे किसी और से पूछने जाने की जरूरत क्या है? पूछ क्या तुझे पूछना है? जब मैं मौजूद हूं! जब मैं न बता सकूं कुछ... ! अब पत्नी भलीभांति जानती है पति को कि वे क्या बता सकते हैं।
लेकिन पति के अहंकार को चोट लगती है। पत्नी अगर किसी गुरु में उत्सुक
हो जाए तो पति के अहंकार को भारी चोट लगती है--कोई उनसे भी ऊपर पत्नी के हृदय में बैठा जा रहा है। कष्ट है! लेकिन उस कष्ट को सीधा नहीं कहा जाएगा। तुम जो भी कर रहे हो, जो भी कह रहे हो, वह कहना पक्का सच्चा नहीं है; भीतर कारण कुछ और होंगे। ध्यानी को सदा कारण खोजने चाहिए भीतर। उसे मूल कारण को पकड़ना चाहिए; क्योंकि मूल कारण को बदला जा सकता है। अगर तुमने मूल कारण की जगह कुछ और कारण समझ रखा है, जो सच्चा नहीं है, तब तो कोई बदलाहट नहीं हो सकती।
जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे तुम्हें जीवन में मूल कारण दिखाई पड़ेंगे। तब तुम पाओगे कि तुम बेटे पर इसलिए नाराज नहीं हो रहे हो कि उसने गलती की; तुम इसलिए नाराज हो रहे हो कि तुम्हें नाराज होने में रस है। गलती बहाना है। तुम नाराज दफ्तर से लौटे हो। तुम नाराज मालिक पर होना चाहते थे, लेकिन वहां तुम नाराज न हो सके। क्योंकि मालिक से नाराज होना मंहगा धंधा है। नाराज अब तुम कहीं भी होना चाहते हो। पत्नी पर तुम नाराज हो नहीं सकते, क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके पर नाराजगी में वह मात कर देती है पति को। मंहगा धंधा वह भी है; क्योंकि अगर वह नाराज हो गई तो वह दो-चार दिन तक सिलसिला जारी रखती है। तो तुम बेटे को पकड़ लेते हो। और अब बेटा बेटा है; वह किताबें फाड़ कर लौटेगा ही; अभी कोई बूढ़ा नहीं हुआ है। वह गलत बच्चों के साथ खेलेगा ही; क्योंकि अपने बच्चे को छोड़ कर सभी बच्चे गलत हैं।

मैं एक छोटे से बच्चे से पूछा कि तू अच्छा बच्चा है? सब लोग तुझे अच्छा मानते हैं? उसने कहा, अगर मैं सच बताऊं, तो मैं उस तरह का बच्चा हूं जिसके साथ मेरी मां मुझे खेलने न देगी। उसने कहा कि मैं उस तरह का बच्चा हूं कि जिसके साथ मेरी मां मुझे खेलने न देगी--अगर मैं सच बताऊं।
तुम्हारे बच्चे को छोड़ कर सब बच्चे गलत हैं! तो वह किसी के साथ खेला होगा; कपड़े फाड़े होंगे; किताब फट गई होगी; पैर में चोट लग गई होगी। तुम उसे पकड़ लोगे; वह कमजोर है। तुम रेचन अपने क्रोध का उस पर कर डालोगे। लेकिन तुम कहोगे, उसके सुधार के लिए कर रहे हैं।

जैसे-जैसे तुम जागोगे, तुम पाओगे, असली कारण दिखाई पड़ने शुरू हो गए।
और जब असली कारण दिखाई पड़ते हैं, तो उन्हें छोड़ देना एकदम आसान है। फिर कोई कठिनाई नहीं है। तब तुम हंसोगे कि तुमने कैसा झूठा जीवन अपने चारों तरफ खड़ा कर रखा है! तुम एक झूठ हो गए हो! और इस झूठ को लेकर तुम सत्य तक पहुंचना चाहते हो? परमात्मा तक पहुंचना चाहते हो? तुम कभी न पहुंच पाओगे।
मेरे हृदय में संन्यास का अर्थ हैः झूठ का जो जाल तुमने खड़ा किया है, उसे विसर्जित कर देना। और जीवन को वास्तविक और प्रामाणिक--जैसे तुम हो, बुरे तो बुरे, क्रोधी तो क्रोधी। अब क्रोध को लीपा-पोती करके सुंदर मत बनाओ। घाव को फूलों से छिपाने से कुछ भी न होगा, घाव और बड़ा होगा। अपने को ढांको मत, अपने को उघाड़ दो। कह दो, ऐसा हूं मैं--जो बुरा हूं तो बुरा, भला हूं तो भला। लेकिन इसके लिए कोई रेशनलाइजेशन, कोई तर्क, कोई विचार की प्रक्रिया से छिपाने की कोशिश मत करो। और बुराइयों के लिए अच्छे कारण मत खोजो। क्योंकि तब बुराइयां कभी भी न मर सकेंगी, अगर तुमने अच्छे कारण खोज लिए।
तुम क्रोध भी करते हो तो अच्छे कारण खोजते हो। फिर क्रोध कैसे मरेगा? अच्छे कारण से तुम सहारा दे रहे हो; तुम क्रोध को भी अच्छा कर ले रहे हो; तुमने सजावट कर ली। तुमने कारागृह को भी घर जैसा बना लिया; चारों तरफ फूल-पत्ती सजा कर, अब तुम बड़े मजे में हो। तुम बीमारी को भी स्वास्थ्य जैसा समझ कर बैठे हो! तब फिर छुटकारा नहीं हो सकता।
जाग्रत हुआ व्यक्ति जैसे-जैसे जागेगा, वैसे-वैसे पाएगा, उसका जागरण झूठ; वैसे-वैसे पाएगा, उसके सपने विकृत; उसकी निद्रा अशांत। वह तीनों तलों पर एक बेचैनी, एक परेशानी, एक उपद्रव चल रहा है। और जैसे-जैसे वह देखने लगेगा सचाई को और झूठे कारणों को हटा देगा, वैसे-वैसे वह पाएगा कि झूठे कारणों के हटते ही, सचाई के दिखाई पड़ते ही, उसका होश और सघन होने लगा। तुम्हारी हालत वैसी है कि मैंने सुना है, एक आदमी रात सोया। भूकंप आ गया आधी रात में; जोर के बादल गरजे, बिजलियां चमकीं। पत्नी घबड़ा गई। उसने पति को उठा कर कहा कि उठो जी! लगता है, मकान गिरेगा। उस आदमी ने कहा, हम सिर्फ किराए से रहते हैं। शांति से सो जा। मकान अपना नहीं है।
तुम जिस मकान में रह रहे हो वह भला तुम्हारा न हो, लेकिन गिरेगा तो तुम मरोगे। तुमने जो झूठ खड़ी कर रखी हैं वे भला तुम्हारी न हों, क्योंकि बहुत सी झूठ भी उधार हैं--कुछ गुरुओं से सीखी हैं तुमने, कुछ शास्त्रों से सीखी हैं, कुछ संप्रदायों से सीखी हैं; वे तुम्हारी भी नहीं हैं--मगर गिरेंगी तो मरोगे तुम। और तुम झूठ से घिरे हो।
लेकिन झूठ कारगर मालूम होती है अभी; क्योंकि उससे तुम्हें चेहरे को सुंदर बनाने में सुविधा मिलती है। झूठ से तुम सजे-सजे लगते हो। भीतर तो दुख है, पीड़ा है, ऊपर मुस्कुराहटें हैं। वे सब झूठी हैं। बेहतर है, तुम रोओ, आंसू गिरने दो। बह जाने दो रंग-रोगन जो तुमने लगाया है ऊपर से, कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि केवल सचाई से ही सत्य तक पहुंचा जा सकता है।
जैसे-जैसे तुम जागने को सींचोगे, वैसे-वैसे सब रंग-रोगन बहने लगेगा।
इस रंग-रोगन के बह जाने का नाम ही संन्यास है। और जैसे-जैसे तुम भीतर सच्चे होते जाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि बीमारी को मिटाना जरा भी कठिन नहीं है।
लेकिन झूठी बीमारी को मिटाना बहुत कठिन है। ऐसा समझो कि तुम कैंसर के मरीज हो। लेकिन डर के मारे तुम यह स्वीकार नहीं करते कि मैं कैंसर का मरीज हूं; क्योंकि फिर कैंसर घबड़ाता है। तो तुम समझते हो सर्दी-जुकाम है; कि कुछ नहीं, सर्दी-जुकाम है! और तुम सर्दी-जुकाम का इलाज करते रहते हो। इससे क्या होगा? इससे कितनी देर तुम धोखा दोगे?
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, पहली बात साधक के लिए जान लेनी जरूरी है कि उसकी असली बीमारी क्या है।
और सभी साधक उसको छिपाते हैं। और जो असली बीमारी को छिपा लेता है, उसका निदान ही नहीं हो पाता, डायग्नोसिस नहीं हो पाती। और तब तुम झूठी बीमारी का इलाज करते रहते हो। उस इलाज से भी तुम मरते हो, बच नहीं सकते; क्योंकि वह बीमारी ही कभी तुम्हारी बीमारी न थी।

मेरे पास लोग आते हैं। कोई पूछता है, ईश्वर की खोज करनी है; कोई कहता है, आत्मा की खोज करनी है।
उनके चेहरे पर ऐसी किसी खोज का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता। यह खोज झूठी है। वे किसी और चीज की खोज में हैं। लेकिन ईश्वर के नाम के नीचे उसको छिपा रहे हैं।
एक मित्र आए--बूढ़े हैं--और कहा कि बस ईश्वर की तलाश कर रहा हूं तीस साल से।
मैंने कहा, तीस साल काफी लंबा वक्त है! अगर ईश्वर तुमसे बच ही न रहा हो,
तो अब तक मिल जाना चाहिए। ऐसा डर लगता है कि ईश्वर तुमसे बच रहा है। और अगर वह बच रहा है, तो तीस जन्म भी... । और या फिर तुम कहीं और खोज रहे हो; उसके घर की तरफ तुम जाते नहीं। या तो तुम उससे बच रहे हो, या वह तुमसे बच रहा है। तुम मुझे ठीक-ठीक बताओ, मामला क्या है?
नहीं, उन्होंने कहा कि मैं बिल्कुल खोज कर रहा हूं ईश्वर की; और ध्यान-साधना सब कर रहा हूं। लेकिन कुछ फल नहीं होता।
क्या फल चाहते हो?
कोई सिद्धि नहीं हाथ आती।
अब यह आदमी ईश्वर को खोज ही नहीं रहा है। यह आदमी सिद्धि खोज रहा है। ईश्वर का नाम रखा हुआ है इसने। सिद्धि भीतर खोज रहा है, ऊपर से ईश्वर का नाम रखा हुआ है। तुम बाजार में ही न पाओगे कि डिब्बों पर कुछ और लिखा है, भीतर कुछ और; तुम मंदिरों में भी ऐसे आदमी पाओगे, डिब्बे पर कुछ लिखा है, भीतर कुछ और।
एक पति चौके में नमक खोज रहा था। बड़ी देर हो गई तो उसकी पत्नी ने कहा, इतनी देर लगाने की क्या जरूरत है? क्या तुम्हें नमक दिखाई नहीं पड़ता? उसने कहा कि मैं खोज रहा हूं, मुझे दिखाई नहीं पड़ता। उसने कहा, वह बिल्कुल सामने रखा है--जिस डिब्बे पर हल्दी लिखी है। आंख के सामने रखा है। अंधे हो?
सारी खोज ऐसी चल रही है! तुम्हें पक्का पता नहीं, तुम क्या खोज रहे हो? क्यों खोज रहे हो?
जागने को जैसे-जैसे सींचोगे, तुम्हारे जीवन में एक दिशा आएगी। व्यर्थ गिरेगा, सार्थक बचेगा। और जिस दिन बिल्कुल सार्थक बच जाता है, उस दिन मंजिल दूर नहीं है।
"ऐसा मग्न हुआ... ।"
और जैसे-जैसे यह तुरीय की मग्नता भरेगी; जैसे-जैसे यह मस्ती तुम्हारे जीवन में आएगी... यह मस्ती बड़ी अलग है! भाषा में तो हमें उन्हीं शब्दों का उपयोग करना पड़ता है जिनका उपयोग होता है। शराब जब कोई आदमी पी लेता है, तो उसकी भी एक मस्ती है; लेकिन उस मस्ती में पैर डगमगाते हैं। यह मस्ती बिल्कुल उलटी है। यहां डगमगाते पैर ठहर जाते हैं। शराब की एक मस्ती है; उसमें आदमी अपने को भूल जाता है। यह मस्ती बिल्कुल उलटी है; यहां आदमी अपने को याद करता है। सेल्फ रिमेंबरिंग, सुरति आ जाती है, स्मृति आ जाती है। एक मस्ती शराब की है, कि उस नशे में आदमी भूल-चूक करता है, गलत भटक जाता है। और एक मस्ती तुरीय की है, जहां आदमी से भूल-चूक होनी असंभव हो जाती है। अकबर निकलता था एक दिन हाथी पर सवार, और एक आदमी खड़े होकर उसे गाली देने लगा। छप्पर पर खड़ा था। निश्चित उसी वक्त पकड़वा लिया गया। दूसरे दिन दरबार में हाजिर किया गया। अकबर ने पूछा कि नासमझ! यह तू क्या कर रहा था? उसने कहा कि मैं था ही नहीं; मैंने शराब पी ली थी। मैंने गाली दी ही नहीं; बस वह शराब ही गाली दे रही थी। अब तो मैं खुद ही पछता रहा हूं जब से होश आया। और आप मुझे सजा मत दें, क्योंकि मैं था ही नहीं।
और अकबर ने स्थिति समझी, क्योंकि अकबर तुरीय में बहुत उत्सुक था। अकबर बड़ी खोज में था कि कहीं से सूत्र मिल जाए जागृति का। उसने बात समझी कि बेहोश आदमी को क्या सजा देनी! उससे गलती होगी, यह निश्चित है। उससे ठीक हो जाए, यह चमत्कार है।
तुमसे कभी कुछ ठीक हो जाता है, तो यह चमत्कार है। तुमसे गलत होता है,
यह स्वाभाविक है। क्योंकि तुम होश में नहीं हो। गुरजिएफ कहता था कि तुमने जो पाप किए हैं, इनके कारण परमात्मा तुम्हें नरक नहीं भेज सकता, क्योंकि ये सब तुमने बेहोशी में किए हैं। बेहोश आदमी को तो अदालत भी माफ कर देती

है। परमात्मा तुम्हें नरक नहीं भेज सकता, तुमने ये जो पाप किए हैं इनके लिए। क्योंकि तुमने ये सब बेहोशी में किए हैं। वह इतना समझदार तो होगा ही जितनी अदालतें हैं। अगर यह सिद्ध हो जाए कि आदमी ने शराब की हालत में किसी की हत्या भी कर दी, तो भी अदालत उसे माफ करेगी; क्योंकि वह होश में नहीं था। कम सजा देगी। सजा भला शराब पीने के लिए दे, लेकिन हत्या के लिए क्या सजा देनी है! वह आदमी था ही नहीं।
तुमने पाप भी किए हैं, वे भी बेहोशी में; तुमने पुण्य भी किए हैं, वे भी बेहोशी में। इसलिए तुम्हारे पाप और पुण्यों में बहुत फर्क नहीं है। उनका गुणधर्म एक सा ही है। तुम घर बसाओ कि तुम संन्यास लेकर मुनि हो जाओ, कोई फर्क नहीं है। तुम बेहोश हो! तुम दुकान पर बेहोश हो, तुम मंदिर में भी बेहोश रहोगे। तुम दफ्तर में बेहोश हो, स्थानक में भी बेहोश ही रहोगे। कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। कपड़े पहन कर बेहोश हो, नग्न होकर बेहोश रहोगे। असली सवाल बेहोशी को तोड़ने का है; असली सवाल कृत्यों को बदलने का नहीं है। कृत्यों को बदलना तो बिल्कुल आसान है। लेकिन एक कृत्य में बेहोशी है, दूसरे कृत्य में बेहोशी आ जाएगी।
और जिसने ऐसा मग्न हुआ, तुरीय को साधा, वह स्व-चित्त में प्रवेश कर जाता है। जैसे ही कोई स्व-चित्त में प्रवेश करता है, उसके जीवन में पहली बार प्राण-समाचार का उदय होता है।
"प्राण-समाचार से, अर्थात सर्वत्र परमात्म-ऊर्जा का ही स्फुरण है-- ऐसे अनुभव से, समदर्शन को उपलब्ध होता है।"
और जैसे ही कोई व्यक्ति स्वयं को जान लेता है, तत्क्षण वह जान लेता हैः यही दीया सबमें जल रहा है। जब तक तुमने अपने को नहीं देखा, तभी तक दूसरा तुम्हें पराया मालूम पड़ रहा है। जब तक तुमने खुद को नहीं पहचाना, तभी तक तुम दूसरे को भी दुश्मन समझ रहे हो। जैसे ही तुमने स्वयं को देखा, वैसे ही तुम सभी के मिट्टी की दीवारों में घिरे हुए प्रकाश के दीये को देख लोगे; समदर्शन को उपलब्ध हो जाओगे। फिर न कोई मित्र है, न कोई शत्रु; न कोई अपना, न कोई पराया। तब वस्तुतः तुम ही सबके भीतर छाए हुए हो। तब एक ही विराजमान है।
प्राण-समाचार इसे शिव-सूत्र में कहा है, कि अब तुम्हें वह समाचार मिल गया कि सब तरफ एक ही प्राण, सभी दीयों में एक ज्योति, सभी बूंदों में एक ही सागर का निवास है। किसी का दीया काला है, किसी का गोरा है; कोई लाल मिट्टी का बना, कोई पीली मिट्टी का बना; कोई इस शक्ल, कोई उस शक्ल; कोई यह नाम, कोई वह रूप; लेकिन भीतर की ज्योति का न कोई नाम है, न कोई रूप है। जिसने अपने को जाना, उसने अपने को सबमें जान लिया।
पहली घटना घटती है तुरीय से कि तुम स्वयं को जानते हो; तत्क्षण दूसरी घटना घटती है कि तुम परमात्मा को जान लेते हो। आत्मा को जाना इधर, उधर परमात्मा उघड़ गया।
परमात्मा को सीधा मत खोजो। सीधा तुम खोजोगे तो वह कल्पना ही होगी। तुम बैठे कल्पना कर सकते हो कि कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं! इससे कोई परमात्मा न मिल जाएगा। यह सपना है। अच्छा सपना है। मगर इस सपने में और दूसरे सपनों में कोई भी भेद नहीं है; मन कल्पना कर रहा है। तुम कल्पना कर सकते हो कि महावीर के दर्शन हो रहे हैं; बुद्ध के दर्शन हो रहे हैं; राम के दर्शन हो रहे हैं। और कई लोग यही कल्पना करते रहते हैं; बैठे हुए सपने देखते रहते हैं। धार्मिक सपने हैं, मगर सपने ही हैं।
परमात्मा को सीधा खोजने का कोई उपाय ही नहीं है; क्योंकि तुम ही उसके द्वार हो। जब तक तुम अपने द्वार से न गुजरोगे, उसका द्वार बंद है। आत्मा परमात्मा का द्वार है। इधर खुला द्वार, इधर तुमने जाना अपने को, कि परमात्मा प्रकट हो गया। तब तुम्हें सब तरफ वही दिखाई पड़ने लगेगा। वृक्ष में, पत्थर में, चट्टान में वही आबद्ध है। कहीं बहुत सोया है; कहीं बहुत जागा है। कहीं सपने में खोया है, कहीं नींद है, कहीं होश है; लेकिन वही है। उस एक की प्रतीति को शिव ने प्राण-समाचार कहा है। वह बड़े से बड़ा समाचार है। लेकिन स्वयं को जानने वाले को उपलब्ध होता है।
और जब कोई व्यक्ति समदर्शन में ठहर जाता है, वह शिवतुल्य हो जाता है।
"शिवतुल्यो जायते।"

फिर वह स्वयं परमात्मा हो गया। तुम तभी तक "मैं" हो, जब तक तुम्हें अपना पता नहीं है। यह बात बड़ी विरोधाभासी लगती है। तुम तभी तक चिल्लाए चले जा रहे हो मैं, मैं, मैं, जब तक तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो। जिस दिन तुम्हें पता लगेगा, उसी दिन "मैं" भी गिर जाएगा, "तू" भी गिर जाएगा। उस दिन तुम शिवतुल्य हो जाओगे। उस दिन तुम स्वयं परमात्मा हो। उस दिन अहर्निश नाद उठेगा--अहं ब्रह्मास्मि! उस दिन तुम यह दोहराओगे नहीं, यह तुम जानोगे। उस दिन यह तुम्हें समझना नहीं पड़ेगा; यह तुम्हारा अस्तित्व होगा, यह तुम्हारी अनुभूति होगी। उस दिन सब तरफ एक का ही नाद, एक का ही निनाद होगा। जैसे बूंद सागर में खो जाए, सीमा मिट जाए, असीम हो जाए! तब तुम शिवतुल्य हो जाओगे।
शिव की यही चेष्टा है। बुद्धों का यही प्रयास है कि तुम भी उन जैसे हो जाओ। उन्होंने जो जाना है परम आनंद, वह तुम्हारी भी संपदा है। तुम अभी बीज हो, वे वृक्ष हो गए। वे वृक्ष तुम से यही कहे चले जा रहे हैं कि तुम बीज मत बने रहो, तुम भी वृक्ष हो जाओ। और तब तक तुम्हें शांति न मिलेगी जब तक तुम शिवतुल्य न हो जाओ। इससे कम में आदमी राजी होने वाला नहीं। इससे कम में आत्मा तृप्त न होगी; प्यास बनी ही रहेगी। कितना ही पीओ संसार का पानी, प्यास बुझेगी नहीं, जब तक कि परमात्मा के घट से न पी लोगे। तब प्यास सदा के लिए खो जाती है। सब वासनाएं, सब दौड़, सब आपाधापी समाप्त हो जाती है; क्योंकि तुम वह हो गए, जो परम है। उसके ऊपर फिर कुछ और नहीं।
तीनों अवस्थाओं में चौथी अवस्था को तेल की तरह सिंचन करो, ताकि ऐसे मग्न हो जाओ कि स्व-चित्त में प्रवेश हो; ताकि प्राण-समाचार मिले; ताकि तुम जान सको कि सबमें एक ही विराजमान है, समदर्शन हो; ताकि तुम शिवतुल्य हो जाओ।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
नौवां प्रवचन

साधो, सहज समाधि भली!

कथा जपः।
दानमात्मज्ञानम्।
योऽविपस्थो ज्ञाहेतुश्च।
स्वशक्ति प्रचयोऽस्य विश्वम्।
स्थितिलयौ।

वे जो भी बोलते हैं, वही जप है।
आत्मज्ञान ही उनका दान है।
जो अंतस शक्तियों का स्वामी और ज्ञान का कारण है।
स्वशक्ति का प्रचय अर्थात सतत विलास ही इसका विश्व है।
और वह स्वेच्छा से स्थिति और लय करता है।

प्रार्थना, क्या तुम कहते हो, उस पर निर्भर नहीं; वरन क्या तुम हो, उस
पर निर्भर है। पूजा, क्या तुम करते हो, उससे संबंधित नहीं; बल्कि क्या तुम हो, उससे ही संबंधित है। धर्म का संबंध कृत्य से नहीं, अस्तित्व से है। तुम्हारे भीतर के केंद्र पर अगर प्रेम है, तो तुम्हारी परिधि पर प्रार्थना होगी। तुम्हारे भीतर के केंद्र पर अगर अहर्निश शांति है, तो तुम्हारे बाहर के केंद्र पर ध्यान होगा। तुम्हारे भीतर के केंद्र पर अगर पल-पल होश है, तो तुम्हारा पूरा जीवन तपश्चर्या होगी।
इससे उलटा नहीं। परिधि को बदलने से केंद्र नहीं बदलता। केंद्र की बदलाहट से परिधि अपने आप बदल जाती है; क्योंकि परिधि तुम्हारी छाया है। छाया को बदल कर कोई स्वयं को नहीं बदल सकता; लेकिन स्वयं बदल जाए तो छाया अपने आप बदल जाती है।
यह जान लेना बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि अधिक लोग परिधि को बदलने में ही जीवन नष्ट कर देते हैं; आचरण को बदलने में सब कुछ दांव पर लगा देते हैं। जब कि आचरण बदल भी जाए तो भी कुछ बदलता नहीं। तुम आचरण को कितना ही बदल लो, तुम तुम ही रहोगे। चोरी करते थे, साधु हो जाओगे; धन इकट्ठा करते थे, बांटने लगोगे; लेकिन तुम तुम ही रहोगे। और धन का मूल्य तुम्हारी आंखों में वही रहेगा; जो चोरी करते समय था, वही मूल्य दान करते समय रहेगा। चोरी करते समय तुम समझते थे कि धन बहुत कीमत का है, दान देते वक्त भी तुम समझोगे कि धन बहुत कीमत का है। धन मिट्टी नहीं हुआ। नहीं तो मिट्टी को कोई दान देता है! अगर धन सच में ही मिट्टी हो गया, तो तुम अपने कूड़े-कर्कट को दूसरे को देने जाओगे? और अगर कोई ले लेगा तुम्हारा धन, तो क्या तुम समझोगे कि तुमने उसे अनुगृहीत किया? क्या तुम चाहोगे कि वह तुम्हें लौट कर धन्यवाद दे? अगर धन सच में ही व्यर्थ हो गया, तो जो तुम्हारा धन स्वीकार कर ले, तुम ही उसके अनुगृहीत होओगे। तुम सोचोगे कि धन्यभाग मेरे कि इस आदमी ने कचरा लिया, इनकार न किया।
लेकिन दानी ऐसा नहीं सोचता। एक पैसा भी दे देता है, तो उसका प्रतिकार चाहता है।
एक मारवाड़ी की मृत्यु हुई। उसने सीधा जाकर स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दी। और उसे पक्का भरोसा था कि द्वार खुलेगा; क्योंकि उसने दान किया था। द्वार खुला भी, द्वारपाल ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा; क्योंकि स्वर्गों में कृत्यों की पहचान नहीं है, व्यक्ति सीधे देखे जाते हैं। और द्वारपाल ने पूछा कि शायद भूल से आपने यहां दस्तक दे दी। वह जो सामने का दरवाजा है नरक का, वहां दस्तक दें।
मारवाड़ी नाराज हुआ। उसने कहा, क्या खबर नहीं पहुंची? कल ही मैंने एक बूढ़ी औरत को दो पैसे दान दिए। और उसके भी एक दिन पहले एक अंधे अखबार बेचने वाले लड़के को मैंने एक पैसा दिया है।

जब दान का दावा किया गया, तो द्वारपाल को खाता-बही खोलना पड़ा। अपने सहयोगी को उसने कहा कि देखो। तो वहां तीन पैसे मारवाड़ी के नाम लिखे थे। द्वारपाल चिंता में पड़ा। पूछा, कुछ और कभी किया है? मारवाड़ी ने कहा, और तो अभी इस समय कुछ याद नहीं आता। किया होता और याद न आता! जिसको तीन पैसे याद रहे, उसने किया होता और याद न आता! खाता-बही खोजा गया, बस वे तीन पैसे ही नाम लिखे थे। उन्हीं तीन पैसे के बल वह स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दिया था अकड़ के साथ।
द्वारपाल ने अपने साथी से पूछा, क्या करें इसके साथ? उसके साथी ने खीसे से तीन पैसे निकाले और कहा, इसको दे दो और कहो सामने के दरवाजे पर दस्तक दो।
पैसों से कहीं स्वर्ग का द्वार खुला है! तुम चाहे पकड़ो पैसा और चाहे छोड़ो, दोनों ही हालत में मूल्य रूपांतरित नहीं होता। तुम चाहे संसार में रहो, चाहे भाग जाओ, संसार का मूल्य वही का वही बना रहता है। तुम पीठ करो कि मुंह, यात्रा में बहुत भेद नहीं पड़ता--जब तक कि तुम केंद्र से न बदल जाओ। आचरण नहीं, अंतस की क्रांति चाहिए। और जैसे ही अंतस बदलता है, सभी कुछ बदल जाता है। ये सूत्र अंतस की क्रांति के सूत्र हैं। एक-एक सूत्र को अति ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करें। उनका कण भी तुम्हारे भीतर गिर गया, तो चिंगारी की तरह होगा। और अगर तुम्हारे भीतर थोड़ी भी सूखी बारूद है, तो जल उठेगी। और अगर तुमने सारी बारूद को गीली कर रखा है, तो चिंगारियां पड़ती हैं और बुझ जाती हैं।
तुम्हारी कठिनाई यह नहीं कि तुम्हें सत्य नहीं सुनने को मिलता। तुम सत्य को भी बुझाने में कुशल हो। तुम्हारे भीतर सब बारूद गीली है। अंगारा भी पड़ जाए, तो अंगारा ही बुझता है, बारूद नहीं सुलगती। और किस भांति तुमने बारूद को गीला किया है? जितना तुम्हारे पास ज्ञान है, उतनी ही तुम्हारी बारूद गीली है। जितना तुम सोचते हो कि मैं जानता हूं, उतनी ही तुम्हारी बारूद गीली है। वह जानने के कारण ही ज्ञान की चिंगारी भी तुम बुझा देते हो। तुम्हारा ज्ञान, ज्ञान की चिंगारी को भी तुम्हारे भीतर नहीं पहुंचने देता; वही द्वार पर खड़ा है। वह बाहर से ही इनकार कर देता है।
तुम अपने ज्ञान में ही बेहोश हो। और ध्यान रहे, ज्ञान से ज्यादा बड़ी शराब खोजनी मुश्किल है; क्योंकि उससे ज्यादा सूक्ष्म अहंकार किसी और चीज से नहीं मिलता। धन भी इतना अहंकार नहीं दे सकता। क्योंकि धन चोरी जा सकता है, सरकार बदल सकती है, कम्युनिस्ट आ सकते हैं, कुछ भी हो सकता है। धन का कोई पक्का भरोसा नहीं है। लेकिन ज्ञान चोरी नहीं जा सकता, कोई छीन नहीं सकता। तुम्हें कारागृह में भी डाल दिया जाए, तो भी तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे साथ जाएगा। इसलिए धनी में भी वैसी अकड़ नहीं होती, जैसी पंडित में होती है। और वह अकड़ ही तुम्हारे भीतर बारूद को गीला रखती है। उस अकड़ को छोड़ दो, तुम्हारी बारूद सूख जाएगी। तब एक चिंगारी भी तुम्हें बदलने में सफल हो जाती है; क्योंकि बहुत आग की जरूरत नहीं है। बारूद जलती हो, एक चिंगारी से ही जल जाएगी। जल सकती हो, एक चिंगारी काफी है। न जल सकती हो, तो आग भी लग जाए तो भी न जलेगी।
ये सूत्र चिंगारियों की तरह हैं। इन्हें अपने ज्ञान को हटा कर समझने
की कोशिश करना; क्योंकि ज्ञान से समझा तो समझ ही न पाओगे।
पहला सूत्र हैः "कथा जपः।"
वे जो शिवतुल्य हो गए हैं--कल जो हमारा आखिरी सूत्र था--वे जो शिवतुल्य
हो गए हैं, वे जो भी बोलते हैं, वही जप है। वे क्या बोलते हैं, यह सवाल नहीं है। वे जो भी बोलते हैं, वही जप है। क्योंकि उनके हृदय में संसार न रहा, वासना न रही, अंधेरा न रहा, उनका हृदय एक प्रकाश है। उस हृदय से अब जो भी आता है, वह जप है। उससे जप के अन्यथा कुछ आ ही नहीं सकता। प्रकाश से अंधकार कैसे आएगा! प्रेम से घृणा कैसे आएगी! करुणा से क्रोध कैसे आएगा! अब उनके भीतर से जो भी आता है, वही जप है।
जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि तुम क्या अपने मुंह में डालते हो, उससे स्वर्ग का राज्य नहीं मिलेगा; क्या तुम्हारे मुंह से निकलता है, उससे स्वर्ग का राज्य मिलेगा। क्या तुम अपने भीतर डालते हो, उससे कुछ तय नहीं होता; क्या तुम्हारे भीतर से बाहर आता है, वही खबर देता है कि तुम कौन हो।

शिवतुल्य जो हो गया है, वह जप नहीं करेगा। जप की कोई जरूरत नहीं; क्योंकि वह जो भी करेगा, वही जप होगा।
कबीर ने कहा हैः उठूं बैठूं परिक्रमा।
कबीर से किसी ने पूछा कि कभी जप करते दिखाई नहीं पड़ते! कब करते हो पूजा? कब करते हो प्रार्थना? लोग कहते हैं महा भक्त हो; लेकिन भक्ति कब करते हो? देखते हैं तुम्हें काम में लगा हुआ; कपड़ा बुनते हो, बाजार बेचने जाते हो। लेकिन कभी तुम्हें ध्यान, पूजा, मंदिर में तो कभी देखा नहीं!
तो कबीर ने कहा, जो भी करता हूं, वही मेरी परिक्रमा; जो भी बोलता हूं, वही मेरा जप; मेरा होना ही मेरा ध्यान।
जब भी तुम उत्सुक होते हो ध्यान में, तो तुम क्या करते हो? तुम अपने कृत्यों के जगत का एक छोटा सा कोना ध्यान को दे देते हो। जब कि ध्यान कृत्य नहीं है। तुम दुकान करते हो, बाजार जाते हो। करना ही पड़ेगा। काम-धंधा, जीवन की चर्या बाहर की परिधि पर चलती ही रहेगी। उसी परिधि पर एक कोना तुम ध्यान के लिए भी देते हो। तुम सोचते हो कि चलो बाजार जाने के पहले दो क्षण मंदिर हो आएं।
इस फर्क को ख्याल में लेना। तुम जो करते हो उसी में तुम ध्यान को भी जोड़ लेते हो; और पच्चीस काम करते हो, उसी में एक काम ध्यान है। तुम्हारे संसार में हजार व्यस्तताएं हैं, उसी में ईश्वर भी एक और व्यस्तता है। तब तुम ईश्वर से वंचित रह जाओगे। ईश्वर परिधि पर हो ही नहीं सकता। जहां दुकान है, बाजार है, काम है, वहां से ईश्वर का कोई संबंध नहीं। ईश्वर तुम्हारा अंतस्तल है, जहां तुम हो। काम के जगत में नहीं है वह। तुम्हारा जहां सब काम विश्राम हो जाता है, सिर्फ तुम्हीं बचते हो; जहां कोई कर्ता नहीं बचता, जहां सिर्फ साक्षी बचता है--वहीं उसका घर है।
ईश्वर तुम्हारे एक अंग को नहीं घेरेगा; वह महान है, विराट है; तुम पूरे
ही उससे घिरोगे तो ही तुम्हें घेर पाएगा। तुमने अगर कहा कि कुछ थोड़ा समय तुझे भी देंगे, तो तुम भटकोगे। जिस दिन तुम अपने को पूरा ही दे दोगे! इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम कोई काम न कर पाओगे। तुम काम और भी भलीभांति कर पाओगे। लेकिन तब तुम्हारे प्रत्येक काम में ईश्वर की धुन बजने लगेगी। तब वह तुम्हारे भीतर होगा--जैसे श्वास चल रही है। तुम बाजार जाते हो, तब तुम श्वास लेना बंद तो नहीं कर देते। तुम दुकान पर बैठते हो, तब तुम श्वास लेना बंद तो नहीं कर देते। तुम किसी से बात करते हो, तब तुम श्वास लेना बंद तो नहीं कर देते। श्वास कृत्य का हिस्सा नहीं है। तुम सब करते रहते हो, भीतर श्वास चलती रहती है। ऐसे ही, जब परमात्मा तुम्हारे भीतर का हिस्सा होगा, तुम सब करते रहोगे और उसकी धारा तुम्हारे भीतर अहर्निश बहती रहेगी। तुम्हारे करने से उसकी कोई प्रतियोगिता नहीं है। वह संसार का हिस्सा नहीं है। करने से संसार बनता है। कृत्य से संसार बनता है।
इसलिए हम कहते हैं, जब तक कोई कर्म में जुड़ा है, तब तक संसार में बना रहेगा; जब अकर्म को उपलब्ध होता है, तब परमात्मा को उपलब्ध होता है। अकर्म का अर्थ है--तुम्हारा अस्तित्व, जहां करने का कोई सवाल नहीं; जहां तुम सिर्फ हो, तुम्हारा होना मात्र; वहां से तुम जुड़ो।
शिवतुल्य जो हो गया है, वह जो भी बोलता है, वही जप है। तुम उसे प्रार्थना करते न पाओगे; क्योंकि अब प्रार्थना को अलग से करने की कोई जरूरत न रही। तुम उसे पूजा करते हुए न पाओगे, क्योंकि अब पूजा करने का हिस्सा न रही। अब वह स्वयं पूजा है। इसलिए वह जो भी करता है, उसमें अगर तुम गौर से देखोगे, तो सब जगह पूजा पाओगे। वह अगर श्वास भी लेता है, तो भी जप है। वह अगर हाथ भी हिलाता है, तो पूजा है। वह उठता है, बैठता है, तो परिक्रमा है।
शिवतुल्य जो हो गया, उसका सारा आचरण साधना हो जाता है। उसे साधना भी नहीं पड़ता, क्योंकि जिसे साधना पड़ता हो, वह कभी सहज नहीं होगा। और जिसे साधना पड़ता हो, उससे हम कभी न कभी थक जाएंगे। थकेंगे तो विश्राम करेंगे। विश्राम का अर्थ होगा--विपरीत में चले जाएंगे।
इसलिए अगर तुमने अपनी साधुता को साधा है, तो छह दिन साधोगे, सातवें दिन विश्राम करना पड़ेगा। उस दिन तुम असाधु हो जाओगे। इसलिए तुम्हारे जो साधु हैं, उनके जीवन में असाधुता का क्षण होगा ही। क्योंकि साधुता से भी

तुम थक जाओगे। एक दिन तो तुम्हें छुट्टी लेनी ही पड़ेगी। कृत्य को कोई सतत नहीं कर सकता; उससे थकान आएगी। इसलिए साधु भी छुट्टी पर होता है। और अगर वह छुट्टी पर न हो तो तनाव बहुत बढ़ जाएगा।
इसलिए साधु के जीवन में भी असाधुता के क्षण होते हैं; और असाधु के जीवन में भी साधुता के क्षण होते हैं। तुम ऐसा पापी न पा सकोगे, जिसके जीवन में पुण्य का क्षण न हो; क्योंकि वह पाप से थक जाता है, तो विपरीत में विश्राम लेना पड़ता है। और तुम ऐसा पुण्यात्मा न पा सकोगे, जिसके जीवन में पाप का क्षण न हो; क्योंकि वह पुण्य से थक जाता है, तो पाप में विश्राम लेना पड़ता है। हमेशा विपरीत में जाकर डूबना पड़ता है, ताकि मन हलका हो जाए।
संत हम उसे कहते हैं, जिसकी साधुता साधी हुई नहीं है; जिसकी साधुता सहज स्वभाव है। फिर कोई विश्राम नहीं है। तुम सांस लेने से तो कभी विश्राम नहीं लेते। तुम होने से तो कभी विश्राम नहीं लेते। जब तक तुम्हारे अंतस में प्रवेश न कर जाए शिवत्व, तब तक सब ऊपर-ऊपर होगा। जैसे तुमने वस्त्र अच्छे पहन रखे हों और भीतर गंदगी हो; अच्छे वस्त्र कितनी देर छिपाएंगे? और जैसे तुमने सुगंध छिड़क ली हो और भीतर से बदबू उठती हो; उस दुर्गंध को तुम कैसे छिपाओगे? हो सकता है, दूसरों से छिपा भी लो; लेकिन खुद से कैसे छिपाओगे?
इसलिए तुम्हारे साधु प्रसन्न नहीं दिखते, आनंदित नहीं दिखते। दूसरों
को साधु दिखते हैं, खुद को तो वे असाधु दिखते ही रहते हैं। नृत्य नहीं आता उनके जीवन में। उनके क्रोध में कोई अंतर नहीं पड़ता। भीतर तो वे जलते ही रहते हैं। तुमसे छिप जाएगा, क्योंकि तुम वस्त्रों को ही देख सकोगे। लेकिन जो आदमी खुद छिपा रहा है, वह कैसे बच सकेगा! उसे तो दिखाई पड़ रहा है। वही दिखाई पड़ना कांटे की तरह चुभता रहता है। और जब तक साधु नाच न सके, तब तक समझना कि उसकी साधुता सम्हाली हुई है। सम्हाला हुआ झूठा होता है; जो सहज हो जाए, वही सत्य है।
इसलिए कबीर बार-बार कहते हैंः साधो, सहज समाधि भली!
सहज समाधि का अर्थ है--जिसे सम्हालना न पड़े। सम्हालोगे तो थकोगे। आज नहीं कल बोझ हो जाएगा। मगर कब ऐसी घटना घटेगी जब सहज समाधि होगी? जब शिवत्व भीतर अंतस से आएगा; जब तुम शिवतुल्य हो जाओगे।
और ध्यान रहे, यह कोई भविष्य का आदर्श नहीं है। समझ सको, इसी क्षण घट सकता है। कृत्य में तो समय लगता है। करना हो तो समय लगेगा। यह तो छलांग है। यह कोई कृत्य नहीं है। यह तो बोध है। इसे करने की जरूरत नहीं, सिर्फ देखने की जरूरत है। यह ऐसे ही है, जैसे किसी आदमी के खीसे में हीरा पड़ा हो, और उसे पता न हो और वह सड़क पर भीख मांग रहा हो। और तब अचानक कोई उसे याद दिला दे कि तू क्यों भीख मांग रहा है पागल, तेरे खीसे से तो किरणें निकलती मालूम पड़ रही हैं, लगता है खीसे में हीरा है! और वह खीसे में हाथ डाले और हीरा बाहर आ जाए। बस ऐसा है।
तुम्हारे भीतर शिवत्व तो बैठा ही हुआ है। वह तुम्हारा सदा का खजाना है। उसे पाने के लिए देर नहीं करने की जरूरत है, सिर्फ आंख मोड़ कर देखने की जरूरत है। अगर वह कहीं भविष्य में होता, तो फिर कठिनाई थी, फिर समय लगता, जन्म-जन्म लगते, पहुंचते। वह तुम्हारे भीतर है। इसलिए शिवत्व को पाना नहीं है, केवल आविष्कृत करना है; सिर्फ उघाड़ना है। जैसे कोई प्याज के छिलकों को उघाड़ता चला जाए। फिर क्या घटता है? एक-एक छिलका निकलता है, दूसरा छिलका सामने आ जाता है। उघाड़ते ही चले जाओ, उघाड़ते ही चले जाओ। एक घड़ी आएगी, जब सब छिलके निकल जाएंगे, सिर्फ शून्य हाथ लगेगा। ऐसे ही आदमी के ऊपर छिलके हैं। और शिवत्व तो शून्य जैसा है।
इन छिलकों को हम थोड़ा समझ लें, तो उघाड़ने की आसानी हो जाए; तो तुम्हारा जीवन भी शिव जैसा हो जाए; तो तुम्हारा बोलना भी जप हो जाए।
पहली पर्त क्या है? पहली पर्त शरीर की है। और अधिक लोग इस पहली पर्त से
ही अपने को एक मान कर जी लेते हैं। वे ऐसे ही हैं जैसे किसी महल की सीढ़ियों पर बैठ कर जी रहे हों, उन सीढ़ियों को ही घर बना लेते हैं। उन्हें पता ही नहीं कि सीढ़ियां घर नहीं हैं, सिर्फ घर तक पहुंचने का उपाय हैं। वे वहीं खाते हैं, पीते हैं, भोजन बनाते हैं, शादी-विवाह करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं। और उनके बच्चों को तो महल पता ही नहीं चलेगा, क्योंकि वे सीढ़ियों पर

ही पैदा होंगे; वही उनका घर होगा, वे वहीं रहेंगे। वे कभी लौट कर पीछे की तरफ देखते भी नहीं कि ये सीढ़ियां हैं और हम पोर्च में ही जीवन बिता रहे हैं, महल पीछे है। वे कभी द्वार पर दस्तक भी नहीं देते। और जन्मों-जन्मों से दस्तक नहीं दी है। द्वार करीब-करीब जाम हो गया है। शायद द्वार दीवार जैसा ही लगने लगा है। अब कुछ पता नहीं चलता, कहां द्वार है।
पहली पर्त है शरीर की। और शरीर में ही तुम जी लेते हो। एक तादात्म्य है, जिससे लगता है कि मैं शरीर हूं।
शरीर मेरा है, मैं नहीं; और मेरा कभी भी मैं नहीं हो सकता। जो भी मेरा है, वह मेरे हाथ में हो सकता है, लेकिन मैं नहीं हूं। तुम्हारा पैर कोई काट दे, तो भी तुम न कटोगे, पैर ही कटेगा। तुम्हारा शरीर अगर होते तुम, तो पैर कट जाने पर तुम्हें लगता कि मैं अब कुछ कम हो गया; एक पैर कट गया, उतना मैं कम हो गया। लेकिन पैर कट जाए, आंखें चली जाएं, कान खो जाएं, हाथ टूट जाएं, तुम्हारे पूरेपन में जरा भी अंतर नहीं पड़ता। शरीर अपंग हो जाता है, लेकिन तुम पूरे ही होते हो।
इसीलिए शायद कुरूप से कुरूप आदमी भी भीतर अपने को कुरूप नहीं मान पाता; क्योंकि भीतर तो तुम सुंदर ही होते हो। शायद इसीलिए कुरूप से कुरूप आदमी भी राजी नहीं हो पाता कि मैं कुरूप हूं। और पापी से पापी आदमी भी राजी नहीं हो पाता कि मैं पापी हूं। बुरे से बुरा आदमी भी एक भीतरी झलक से भरा रहता है कि मैं शुभ हूं। बुरे से बुरे आदमी को भी तुम गौर से देखो तो वह यही कहता हैः हो गई भूल, लेकिन मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूं; हो गई गलती, लेकिन मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूं। वह कृत्य को गलत मान सकता है, लेकिन खुद को गलत नहीं मान सकता। और ठीक है। उसे पता नहीं है कि क्यों ऐसा लगता है। आस-पास तुम्हारे परिवार में, पड़ोस में, गांव में, लोग मरते हैं; लेकिन तुम्हें कभी ऐसा नहीं लगता कि मैं मरूंगा। जरूर कोई गहरी बात होनी चाहिए; क्योंकि घटना इतनी घटती है कि यह प्रतीति न आए कि मैं मरूंगा, बड़ी हैरानी की है। जब सभी मर रहे हैं, तब भी तुम्हें यह चोट गहरी नहीं बैठती मन में कि मैं भी मरूंगा। अगर कोई समझाए भी तो भी तुम सोचते हो कि हो सकता है। लेकिन भीतर कोई अहर्निश ध्वनि गूंजती रहती है कि और दूसरे ही मरेंगे, मैं नहीं मरूंगा। अन्यथा जीना मुश्किल हो जाए। जहां मृत्यु इतने जोर से घटती हो, जहां हर आदमी क्यू में खड़ा हो मरने के, जहां तुम भी क्यू में खड़े हो, वहां भी तुम इस मौज से जीते हो जैसे शाश्वत जीवन है। कुछ भीतरी कारण है।
और कारण यह है कि भीतर जो है, वह कभी मरने वाला नहीं है। तुम कितने ही शरीर के साथ जुड़ गए हो, तो भी तुम शरीर नहीं हो गए हो। वह भीतर की सच्चाई, तुम कितनी ही झुठलाओ, झूठ नहीं हो सकती। कितना ही नशा हो, तो भी भीतर का स्वर--सत्य का स्वर--गूंजता ही रहता है।
मैंने एक दिन सुबह मुल्ला नसरुद्दीन को घर के बाहर बैठे देखा। खिलखिला कर हंस रहा है। बड़ा ही आनंदित, आह्लादित है। मैंने पूछा कि क्या हुआ नसरुद्दीन? ऐसे खुश तुम कभी दिखाई नहीं पड़े! उसने कहा, गजब हो गया। पर तुम समझ न सकोगे, जब तक मैं पूरी कथा न कहूं। तो मैंने कहा, तुम पूरी कथा ही कहो। उसने कहा, हम दो भाई थे। जुड़वां पैदा हुए। एक सी शक्लें थीं। कोई भी फर्क न कर पाता था कि कौन कौन है। और जिंदगी भर मैं नुकसान में रहा। स्कूल में मेरा भाई किसी को पत्थर मार देता, सजा मुझे मिलती। वह चोरी कर लेता, पकड़ा मैं जाता। घर में भी यह हालत थी। उपद्रव वह करके आता, मोहल्ले के लोग मुझे पकड़ कर ले आते। और आखिरी तो उपद्रव तब हुआ कि एक लड़की से मेरा प्रेम था, वह उसको लेकर भाग गया।
तो मैंने कहा, इसमें तुम इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा कि लेकिन सात दिन पहले सब हिसाब-किताब चुकता हो गया। मैं मर गया और लोगों ने उसको दफना दिया।
इतनी बेहोशी किसी को भी नहीं है। तुम कितने ही जुड़वां हो, तो भी ऐसी भूल न हो सकेगी। नसरुद्दीन भयंकर शराब पीए बैठा था।
तुमने भी बड़ी शराब पी रखी है बहुत जन्मों से; लेकिन फिर भी इतनी शराब कभी नहीं हो पाती कि तुम्हारे होश को पूरा डुबा दे। तुम्हारा होश उभर-उभर कर बाहर आ जाता है। कहीं तुम जानते ही हो भीतर कि तुम न मरोगे। सब तथ्य कहते हैं कि मृत्यु घटेगी। फिर भी तुम भरोसा किए जाते हो कि मैं न मरूंगा।

तुम ऐसे ही जीते हो जैसे सदा यहां जीना है। इसलिए बहुत सी भूलें होती हैं। मजबूत मकान बनाते हो जैसे सदा यहां रहना है। तुम्हारी भूलों में भी कहीं न कहीं कोई सच्चाई की झलक होगी, नहीं तो ये भूलें बंद हो जातीं। तुम मकान ऐसे ही बनाते हो जैसे सदा रहना है। मजबूत दीवारें उठाते हो, पत्थर की नींव भरते हो, और तुम्हें पता नहीं कि कल मर जाना है। और सब मरते हैं, तुम भी मरोगे, यह सीधा-साफ गणित है; लेकिन फिर भी भीतर कोई शाश्वत है, इसलिए तुम्हारी हर स्थिति में उस शाश्वत की झलक पड़ती है।
शरीर तुम्हारा है, तुम नहीं। शरीर में तुम हो, लेकिन शरीर ही तुम नहीं हो। शरीर पहली पर्त है, जिससे तादात्म्य हो गया है। उसके साथ तुम बहुत दिन तक रहे हो, जोड़ हो गया है; जुड़वां हो, साथ-साथ पैदा हुए हो। इसलिए तुम्हें भी भूल हो जाती है कि कौन कौन है; शक्ल पहचान नहीं पाते। और इस भूल को साथ मिलता है, क्योंकि बाहर से देखने वाले केवल तुम्हारे शरीर को देखते हैं, तुम्हें नहीं देखते। वे तुम्हारे शरीर के चेहरे को तुम्हारा चेहरा मानते हैं। वे तुम्हारे शरीर की आकृति को तुम्हारी आकृति मानते हैं। और वे बहुत हैं, तुम अकेले हो। वे सभी तुम्हारे शरीर को ही तुम्हें मानते हैं। उन सब की प्रतीति भी तुम्हें प्रभावित करती है। अगर तुम्हारा शरीर कुरूप है, तो वे कहते हैं तुम कुरूप हो। अगर शरीर सुंदर है, तो वे कहते हैं तुम सुंदर हो। अगर शरीर बूढ़ा है, तो वे कहते हैं तुम बूढ़े हो। अगर शरीर जवान है, तो वे कहते हैं तुम जवान हो। और उन सबकी संख्या बड़ी है; तुम अकेले हो। वे बहुत हैं; उन सबकी प्रतीति भी तुम्हें इस भाव को गहराती है कि तुम शरीर हो। उनमें से कोई भी तुम्हारी आत्मा को नहीं देखता।
बड़ी पुरानी उपनिषदों में कथा है कि सम्राट जनक ने पंडितों की एक बड़ी सभा बुलाई; सभी आत्मज्ञानियों को निमंत्रण भेजे। और वह चाहता था कि परम सत्य के संबंध में कुछ उदघाटन हो सके। और जो भी परम सत्य को उदघाटित करेगा, उसके लिए उसने बहुत धनधान्य भेंट करने के लिए आयोजन किया था। लेकिन ये निमंत्रण भी उन्हीं को पहुंचे, जो ख्यातिनाम थे--स्वभावतः--जिनके हजारों शिष्य थे; जिन्हें लोग जानते थे; जिन्होंने शास्त्र लिखे थे; जिनके पांडित्य की चर्चा थी; जो वाद-विवाद में कुशल थे; उनको ये निमंत्रण पहुंचे। एक आदमी था, उसे निमंत्रण नहीं मिला। शायद जान कर ही निमंत्रण नहीं दिया गया। उस आदमी का नाम था अष्टावक्र। उसका शरीर आठ जगह से टेढ़ा था। उसे देख कर ही अप्रीतिकर अनुभव होता था, विकर्षण होता था। और ऐसे शरीर में कहीं आत्मज्ञानी हो सकता है!
अष्टावक्र के पिता को निमंत्रण मिला था। कुछ काम आ गया, तो अष्टावक्र अपने पिता को बुलाने जनक के दरबार चला गया। वह जब अंदर घुसा, तो पंडितों की बड़ी संख्या इकट्ठी थी, वे सब उसे देख कर हंसने लगे। वह हंसने योग्य था। उसका शरीर निश्चित ही कुरूप था--आठ जगह से टेढ़ा। चले तो ऐसा लगे कि वह कोई मजाक कर रहा है। बोले तो ऐसा लगे कि वह कुछ व्यंग्य कर रहा है। वह कार्टून था, आदमी नहीं था। वह सर्कस में जोकर हो सकता था। लेकिन जब सारे लोग उसे देख कर--उसकी चाल और ढंग को, ऊंट जैसा आदमी--हंसने लगे, तो वह भी खिलखिला कर हंसा।
उसकी खिलखिलाहट की हंसी ने सभी को चुप कर दिया। सभी हैरान हुए कि वह क्यों हंस रहा है! और जनक ने पूछा कि ये लोग क्यों हंस रहे हैं, वह तो मैं समझा, अष्टावक्र! लेकिन तुम क्यों हंसे? अष्टावक्र ने कहा, मैं इसलिए हंसा कि यह चमारों की सभा को तुमने पंडितों की सभा समझा है। ये सब चमार हैं। इनको शरीर ही दिखाई पड़ता है, चमड़ी दिखाई पड़ती है। मैं जो कि यहां सबसे सीधा हूं, वह इन्हें अष्टावक्र दिखाई पड़ रहा है। और ये सब तिरछे हैं! और तुम इनसे अगर ज्ञान की आशा रख रहे हो जनक, तो तुम रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहे हो। ज्ञान चाहिए हो तो मेरे पास आ जाना!
और अष्टावक्र ने ठीक कहा। लेकिन यह होता है; क्योंकि बाहर की आंख बाहर
को ही देख सकती है। तुम भी बाहर की आंख से परेशान हो, क्योंकि सभी तरफ आंखें ही आंखें हैं, और वे सब तुम्हारे शरीर को देखती हैं। शरीर सुंदर हो तो तुम सुंदर, शरीर कुरूप हो तो तुम कुरूप। और उन सबका इतना शोरगुल है चारों तरफ, और उनकी धारणा मजबूत है; क्योंकि बहुमत उनका है। तुम हमेशा अल्पमत हो, इकाई, और वे बहुत हैं। उनसे अगर तुम हार जाते हो, आश्चर्य नहीं।

तुम भी अपने को मान लेते हो कि मैं शरीर हूं, तो आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो तब होता है जब तुम इन लोगों की आंखों से बच पाते हो और पहचान पाते हो कि मैं शरीर नहीं हूं।
समाज से मुक्त होने का यही अर्थ है। समाज से मुक्त होने का अर्थ हिमालय चले जाना नहीं है। समाज से मुक्त होने का अर्थ है--चारों तरफ भीड़ की आंखें तुमसे जो कहती हैं, उससे मुक्त हो जाना। बहुत कठिन है। क्योंकि जब सभी लोग एक ही बात दोहराते हैं, तो निरंतर दोहराने से असत्य भी सत्य जैसे भासने लगते हैं। तुम कितने ही स्वस्थ होओ, अगर पूरा गांव तय कर ले कि वह दोहराएगा कि तुम बीमार हो, और जहां से तुम निकलोगे, लोग कहेंगे कि तुम बीमार हो, तुम जल्दी ही बीमार हो जाओगे। क्योंकि यह महामंत्र हो जाएगा, यह सजेशन हो जाएगा। इतने लोग कह रहे हैं, तो बचना बहुत मुश्किल होगा।
सारी दुनिया कहती है कि तुम शरीर हो। आदमी ही नहीं, कंकड़, पत्थर, जमीन, आकाश, सब कहते हैं कि तुम शरीर हो। एक कांटा भी चुभेगा तो आत्मा में तो चुभेगा नहीं, शरीर में चुभेगा। एक पत्थर कोई फेंक कर मारेगा तो खून आत्मा से तो नहीं बहेगा, शरीर से बहेगा। कंकड़, पत्थर, कांटे, जमीन, आसमान, सब कह रहे हैं कि तुम शरीर हो। इतनी बड़ी पुनरुक्ति को खंडित करना बड़ा कठिन है! और तुम अकेले हो; सबके खिलाफ तुम अकेले हो। क्योंकि तुम्हीं केवल भीतर हो, बाकी सब तुमसे बाहर हैं। और उनके कहने में कुछ भूल नहीं है; क्योंकि उन्हें तुम्हारा शरीर दिखाई पड़ता है, पर्त दिखाई पड़ती है। तुम्हारे पड़ोसियों को तुम्हारे घर की फेंसिंग दिखाई पड़ती है; तुम्हारे घर का अंतःकक्ष नहीं दिखाई पड़ता। वे समझते हैं, यह फेंसिंग ही तुम्हारा घर है।
उनका समझना ठीक है। लेकिन तुम भी इसे मान लेते हो, वहां भ्रांति हो जाती है।
समाज से मुक्त होने का अर्थ हैः बाहर की आंखों का जो प्रभाव तुम पर पड़ रहा है, उससे मुक्त होना। समाज की आंखों से जो मुक्त हो गया, उसे साफ दिखाई पड़ने लगेगाः शरीर के भीतर मैं हूं, लेकिन मैं शरीर नहीं हूं।
पहली पर्त को तोड़ना शुरू करो। धीरे-धीरे इस स्मरण को प्रगाढ़ करो कि मैं शरीर नहीं हूं। इसे अनुभव में उतारो। सिर्फ दोहराने से न होगा। जब कांटा चुभे, तब स्मरण रखना कि कांटा पैर में चुभा, पीड़ा पैर में होती है, मैं देखने वाला हूं। कांटा मुझमें चुभ भी नहीं सकता। पीड़ा मेरे भीतर हो भी नहीं सकती। मैं सिर्फ जानने वाला प्रकाश हूं।
इसीलिए जब तुम अचेतन हो जाते हो तो कांटे की चुभन पता नहीं चलती। डाक्टर को आपरेशन करना हो तो अनस्थेसिया देता है, बेहोश कर देता है। फिर पैर काटे, हाथ काटे, पूरा शरीर काट डाले, टुकड़े-टुकड़े कर दे, तो भी तुम्हें पता नहीं चलता। अगर तुम शरीर होते तब तो पता चलता। लेकिन तुम शरीर नहीं हो, तुम होश हो। और डाक्टर ने होश और शरीर का संबंध तोड़ दिया। उसने तुम्हें बेहोश कर दिया। अब तुम्हारे शरीर के साथ कुछ भी किया जाए, तुम्हें कुछ भी पता न चलेगा।
जिन लोगों ने जीवन और मृत्यु पर गहरे प्रयोग किए हैं, उनका अनुभव है--
और मैं भी उनके अनुभव को गवाही देता हूं--कि जब तुम मर जाते हो, तो तुम्हें दो-चार दिन तक पक्का पता नहीं चलता कि तुम मर गए हो। आमतौर से तीन दिन लग जाते हैं तुम्हें पता चलने में कि तुम मर गए हो। क्योंकि मृत्यु घटती है बेहोशी में, शरीर छूट जाता है बाहर का। लेकिन ठीक शरीर की आकृति का एक भीतरी शरीर है तुम्हारा, मनोशरीर है, वह तुम्हारे साथ रहता है। तीन दिन लग जाते हैं कम से कम, ज्यादा भी लग जाते हैं, तब धीरे-धीरे तुम्हें समझ में आना शुरू होता है कि तुम मर गए हो। अन्यथा तुम भटकते हो अपने घर के आस-पास, अपने मित्रों के पास, पत्नी-बच्चों के पास।
तीन दिन तक आत्मा आस-पास भ्रमण करती है। हैरान होती है कि यह मामला क्या हो गया! कोई मुझे देखता नहीं! कोई पहचानता नहीं! तुम द्वार पर खड़े हो, और तुम्हारी पत्नी रोती निकल जाती है। और तुम्हें पता नहीं चलता कि हो क्या गया? मामला क्या हो गया? क्योंकि तुम पूरे के पूरे हो, कुछ कमी नहीं हो गई। शरीर के हटने से कुछ भी कमी नहीं होती, जैसे कपड़े किसी ने उतार कर रख दिए हों। लेकिन कपड़े तुम उतार दो तो नग्न तुम खड़े हो जाओगे, क्या बदल गया?

तुम तो वही रहोगे। और फिर इससे भी सूक्ष्म शरीर तुम्हारे साथ रहता है--यही आकार, यही प्रतीति--समय लग जाता है। मर कर एकदम से तुम्हें पता नहीं चलेगा कि तुम मर गए हो।
तिब्बत में बारदो नाम की प्रक्रियाएं हैं। मरते हुए आदमी को बौद्ध भिक्षु बारदो की प्रक्रिया करवाते हैं। जब वह मर रहा होता है, तब वे उसे सब सुझाव देते हैं कि देख, अब तेरा शरीर छूट रहा है। अब तू स्मरण से भर कि तेरा शरीर छूट रहा है। अभी यह देह हट जाएगी। तू स्मरण कर। तू होशपूर्वक मर कि अब तेरे साथ जो देह है, वह देह भौतिक देह नहीं है, सूक्ष्म देह है। अब तूने शरीर छोड़ दिया। अब तेरे सामने विकल्प हैं कि तू किस तरह के गर्भ को ग्रहण करे। ऐसे सब सुझाव बारदो की प्रक्रिया में मरते हुए आदमियों को दिए जाते हैं।
और तिब्बत ने जितनी गहरी खोज मृत्यु के संबंध में की है, किसी दूसरी जाति ने नहीं की। आदमी मर रहा है और भिक्षु ये सुझाव दे रहा है। आखिरी क्षण तक, जब शरीर छूट रहा है, तब तक वह सुन रहा है भिक्षु को। यहां आदमी मर जाएगा और भिक्षु बोले चला जाएगा। तुम कहोगे, अब तुम किससे बोल रहे हो? अब बंद करो! आदमी तो मर गया। पर भिक्षु अभी बोले चला जाएगा; क्योंकि अब तुम्हें मर गया है आदमी, भिक्षु को अभी भी नहीं मर गया। और यह आदमी अभी भी सुन रहा है, क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि शरीर छूट गया; यह अभी भी सुन रहा है। और इसके अगले जन्म को प्रभावित किया जा सकता है कि कैसा गर्भ ग्रहण करे। और इसे इस जन्म के मोह और आसक्ति से मुक्त किया जा सकता है। और इन क्षणों में इस आदमी को पूरी याद दिलाई जा सकती है कि तू शरीर नहीं है, जो कि और किसी क्षण में याद दिलाना बहुत कठिन है। क्योंकि अब यह पाएगा कि मैं हूं और शरीर अलग पड़ा है। और भिक्षु कहेगा कि देख, अब तू ऊपर है और शरीर नीचे पड़ा है; गौर से देख! इसी शरीर के साथ तूने अपने को एक समझ रखा था। और अब तेरे मित्र, प्रियजन इस शरीर को मरघट ले जाएंगे, तू पीछा कर। वहां तू इसे जलते देख। वहां यह राख हो जाएगा, फिर भी तेरे होने में रत्ती भर कमी नहीं पड़ती। स्मरण रखना इसको आगे की यात्रा में। दुबारा शरीर के साथ ग्रस्त मत होना। अगले जन्म में पहले ही क्षण से स्मरण रखना कि तू शरीर नहीं है। सब कहेंगे कि तू शरीर है, लेकिन तू अपनी स्मृति को मत खोना। तू अपनी स्मृति को उनके सुझाव से ढंकने मत देना।
काश! तुम लोगों के सुझाव फेंक सको तो आत्मज्ञान बहुत दूर नहीं है।
पिकासो बहुत बड़ा चित्रकार हुआ। इस सदी में उसका कोई मुकाबला नहीं। लेकिन सलाह देने वाले तो उसके पास भी पहुंच जाते थे। सलाह देने वालों की कोई कमी नहीं। क्योंकि सच तो यह है कि बिना मांगी सलाह सिर्फ मूढ़ देता है। ज्ञानी की सलाह लेनी हो तो बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, मांगनी पड़ती है, अर्जित करनी पड़ती है। सिर्फ मूढ़ बिना मांगे सलाह देता है। और अच्छा ही है कि लोग सलाहें एक-दूसरे की नहीं मानते, नहीं तो बड़ी मुसीबत में पड़ें। तो दुनिया में सबसे ज्यादा चीज जो दी जाती है, वह सलाह है। और सबसे कम जो चीज ली जाती है, वह भी सलाह है।
पिकासो के घर लोग आते। जिनको अ ब स भी नहीं आता चित्रकला का, वे भी उसको कहते कि जरा इसमें रंग ऐसा लगाया होता! यह चित्र अगर जरा ऐसा बनाया होता! इसकी पृष्ठभूमि अगर दूसरे रंग की होती! पिकासो थक गया इन मूढ़ों के साथ बातचीत करते-करते। तो उसने क्या किया? वही तुम करो। उसने एक खूबसूरत पेटी बनाई और उस पर लिखाः सजेशन बाक्स, सुझाव की पेटी, सुझाव पेटिका। और उसके ऊपर लिखा कि कृपा करके आपके जो भी सुझाव हों, लिख कर इसमें डाल दें। यहां तक तो ठीक था, लेकिन उसमें नीचे कोई तलहटी नहीं थी और उसके नीचे उसने कचरे की टोकरी रखी हुई थी। लोग बड़ी खुशी से, कि उनके सुझाव का बड़ा मूल्य है, पिकासो की पेटी में डाल जाते सुझाव, और कचरे की टोकरी में सीधे पहुंच जाते। वह उनको कभी पढ़ता भी नहीं था। यही तुम करना।
अगर तुम समाज से मुक्त होना चाहो--और वही संन्यास का अर्थ है--तो लोगों
के सुझाव से मुक्त होना। क्योंकि वे बाहर हैं, उनके सभी सुझाव बाहर के होंगे और भीतर के ज्ञान में बाधा बनेगी। तुम उनकी सुनना ही मत। अगर तुम भीतर के परमात्मा की सुनना चाहो तो तुम समाज से बचना। अगर भीतर की आवाज सुननी हो तो बाहर की आवाजों को बिल्कुल द्वार बंद कर देना। अन्यथा बाहर की

आवाजें इतनी विकराल हैं और इतनी तेज हैं कि भीतर की धीमी मंद आवाज खो जाएगी; वह तुम्हें सुनाई न पड़ेगी। वह प्रतिपल निनादित हो रही है। लेकिन तुम बाजार में खड़े हो। वहां बड़ा शोरगुल है।
पहली पर्त है शरीर। और एक ही चाबी है; इसको कहना चाहिए "मास्टर की"; इससे सभी ताले खुल जाते हैं, क्योंकि ताले एक ही जैसे हैं। चाबी है कि शरीर के प्रति तुम होश से भरना। चलो, तो देखना कि शरीर चल रहा है, मैं नहीं। भूखे हो जाओ, देखना कि शरीर को भूख लगी, मुझे नहीं। प्यासे हो जाओ, देखना कि प्यास शरीर में है, मुझमें नहीं। यह होश कायम रखना।
तुम धीरे-धीरे पाओगे, यह होश तुम्हारे और शरीर के बीच में खाई पैदा करने लगा। जैसे-जैसे यह होश सघन होगा, फासला बड़ा होगा। और अनंत फासला है तुममें और शरीर में, अनंत दूरी है। जैसे-जैसे तुम्हारा होश गहरा होगा, बीच का सेतु टूटेगा, संबंध विच्छिन्न होगा। और एक दिन तुम प्रगाढ़ रूप से देख पाओगे कि शरीर सिर्फ खोल है; तुम जीवन हो, शरीर मृत्यु है; शरीर पदार्थ है, तुम चैतन्य हो। शरीर अणुओं का खेल है, अणुओं का जोड़ है; आज है, कल नहीं होगा; परिवर्तनशील है। तुम किसी के जोड़ नहीं; तुम चैतन्य हो अखंड; सदा थे, सदा रहोगे।
जैसे ही शरीर का पहला प्याज का छिलका अलग किया कि दूसरा छिलका ऊपर आ जाएगा। वह दूसरा छिलका है तुम्हारा मन। वह बीमारी और गहरी है; क्योंकि शरीर काफी दूर है, मन काफी निकट है। शरीर अगर अणुओं का जोड़ है, तो मन विचारों का। शरीर अगर पदार्थ है, तो मन सूक्ष्म पदार्थ है। विचार भी सूक्ष्म ध्वनियां हैं। ध्वनि पदार्थ है। लेकिन विचार और भी करीब हैं। तुम उनसे ऐसे ग्रसे हो--कपड़े जैसे नहीं; शरीर अगर कपड़े जैसा है, तो विचार चमड़ी जैसे हैं। तुम्हारी चमड़ी जैसे करीब है--कपड़े से ज्यादा करीब है--ऐसे विचार हैं। और उनसे छुटकारा और भी मुश्किल है; क्योंकि तुम्हें सदा यह भ्रांति रही है कि ये विचार तुम्हारे हैं।
तुम अक्सर लड़ते हो कि यह मेरा विचार है! और तुम अपने विचार को, सही हो चाहे गलत, सही करने की कोशिश करते हो, सिद्ध करने की कोशिश करते हो। क्योंकि तुम्हें डर लगता है कि अगर तुम्हारा विचार गलत हुआ तो तुम गलत हो गए।
शरीर के साथ तुम्हारा तादात्म्य इतना नहीं है, जितना विचार के साथ। अगर किसी आदमी से कहो कि तुम्हारा शरीर रुग्ण है, चिकित्सक के पास चले जाओ, तो वह बुरा नहीं मानेगा। लेकिन किसी से कहो कि तुम्हारा मन बीमार है, किसी मनोचिकित्सक के पास चले जाओ, तो वह फौरन नाराज हो जाएगा। किसी को बीमार कहो तो हर्जा नहीं, लेकिन किसी को पागल कहो तो झगड़ा हो जाएगा। क्योंकि शरीर से तो एक फासला है, लेकिन मन से हमारा तादात्म्य बहुत गहरा है। जब कोई कहता है पागल हो, तो हमें लगता है, मैं पागल हूं? क्या कह रहे हो? कोई पागल यह मानने को राजी नहीं हो सकता कि मैं पागल हूं। तुम ही पागल होओगे! क्योंकि मन के विचार धुएं की तरह तुम्हें चारों तरफ से घेरे हुए हैं। और जब तक ये विचार तुम्हें घेरे हैं, तुम्हारी आंखें अंधी रहेंगी।
तो दूसरा कठिन प्रयोग, कठिन तपश्चर्या हैः विचार के प्रति जागना कि कोई भी विचार--कोई भी विचार--वह सुखद हो, दुखद हो; सच हो, झूठ हो; शास्त्र में हो, न हो; परंपरागत हो, गैर-परंपरागत हो; मैं नहीं हूं। विचार भी उधार हैं। सभी विचार उधार हैं। वे भी समाज ने तुम्हें दिए हैं। वे भी दूसरे से तुम्हें मिले हैं। सीखा है उन्हें तुमने। तुम तो वह हो, जो अनसीखा तुम्हारे भीतर आया है। तुम चैतन्य मात्र हो, विचार नहीं। विचार तो तुम्हारे ऊपर तरंगों की भांति हैं; जैसे कूड़ा-कर्कट नदी के ऊपर तैर रहा हो, ऐसे विचार हैं। तुम तो नदी हो। तुम तो चैतन्य की धारा हो।
तो फिर धीरे-धीरे विचारों की पर्त को भी उघाड़ना। और जब कोई विचार तुम्हें पकड़े तो स्मरण रखना कि यह मैं नहीं हूं; यह भी बाहर की धूल है। जैसे दर्पण पर धूल जम जाए, ऐसे विचार तुम पर जम गए हैं। और किसी विचार को इतना अपना मत मानना कि उसके लिए लड़ने को खड़े हो जाओ। अगर लोग विचार से अपना संबंध तोड़ लें, दुनिया में सारे युद्ध बंद हो जाएं। सारा युद्ध और उपद्रव, सारी हिंसा, विचार के साथ तादात्म्य के कारण है। कोई कम्युनिस्ट है, कोई

समाजवादी है, कोई जनसंघी है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है--सब विचार के साथ तादात्म्य कर लिए हैं।
तुम सिर्फ परमात्मा हो; न तुम हिंदू हो, न तुम जैन हो, न तुम बौद्ध हो, न मुसलमान हो। तुम्हारा शुद्ध होना शिवत्व है। लेकिन तुम सस्ते में उलझ जाते हो। तुम्हें लगता है, हिंदू होना ज्यादा कीमती है बजाय परमात्मा होने के; मुसलमान होना ज्यादा कीमती है। और तुम्हारे मुसलमान और हिंदू होने से सिर्फ मंदिर और मस्जिद लड़ते हैं और यह जमीन धर्म से खाली होती है, भरती नहीं। सब धर्म लड़वाते हैं; क्योंकि सभी धर्म विचार हो जाते हैं। धर्म तो सिर्फ एक है और वह है तुम्हारा शिवत्व। तुम स्वयं परमात्मा हो। बस उतना ही धर्म है। वह कभी नहीं लड़ाएगा। क्योंकि जहां विचार न होंगे, वहां कैसी लड़ाई? वहां कैसा पक्षपात? वहां कैसा विरोध?
शरीर ने तुम्हें दूसरों से अलग किया है; विचार ने तुम्हें और भी ज्यादा अलग किया है। एक बात समझ लेना--जो बड़ी विरोधाभासी है--जिसने तुम्हें स्वयं से तोड़ा है, उसने ही तुम्हें दूसरों से भी तोड़ा है। शरीर ने तुम्हें स्वयं से तोड़ा है। शरीर ने ही तुम्हें दूसरों से तोड़ा है। विचार ने तुम्हें स्वयं से और भी बुरी तरह तोड़ा है। उसने तुम्हें दूसरों से और भी बुरी तरह तोड़ा है। और जिस दिन तुम अपने स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाओगे--न शरीर, न विचार, दोनों पर्तें उघाड़ कर फेंक दीं, तुम बिना पर्त हो गए, कोई खोल न रही, शुद्ध जीवन रह गया--उस दिन तुम पाओगे, तुम सबके साथ एक हो गए; क्योंकि परमात्मा दो नहीं है। उस दिन तुम्हारे भीतर का परमात्मा और तुम्हारे बाहर का परमात्मा एक हो गया। उस दिन घटाकाश और आकाश एक हो गया। उस दिन घड़े के भीतर छिपा आकाश और घड़े के बाहर फैला आकाश एक हो गया; घड़ा गिर गया। तादात्म्य घड़ा है।
जैसे-जैसे तुम पर्त उघाड़ते जाओगे... । पर्त का अर्थ है तादात्म्य, आइडेंटिटी। जो तुम नहीं हो, उसके साथ अपने को एक मान लेना तादात्म्य है। और उस सबसे तादात्म्य तोड़ देना, जो तुम नहीं हो--ध्यान है। और ध्यान कुंजी है। धीरे-धीरे वही बच रहता है जो तुम हो। सब प्याज की पर्तें उघड़ जाती हैं, शून्य हाथ में आता है। यही शून्य तुम्हारी प्रभुता है, तुम्हारा शिवत्व है।
तुमने देखा, शिव की पिंडी हमने बनाई है, वह शून्याकार है। वह जान कर हमने बनाई है। शिव का कोई चेहरा नहीं है। उन जैसी सुंदर मूर्ति और किसी की नहीं है; क्योंकि उस पर कोई चेहरा ही नहीं है। वह सिर्फ शून्य की आकृति है। और जिस दिन तुम भीतर, भीतर, भीतर उतरते जाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे वह शून्य की आकृति तुम्हारे भीतर भी आनी शुरू हो गई; तुम शिव के करीब होते जा रहे हो। जिस दिन तुम सिर्फ प्रकाश के शून्य मात्र रह जाओगे--एक ज्योति, निराकार, जिसका कोई नाम नहीं, रूप नहीं--उस दिन तुम जो भी बोलोगे वही जप होगा।
अभी तुम जो भी बोलोगे, वह धोखा है। अभी तुम जो भी बोलोगे, वह धोखा है। अभी तुम धर्म भी करोगे तो अधर्म है। अभी तुम कुछ और कर ही नहीं सकते। तुम अभी एक भूल से बचने जाओगे तो हजार भूल इकट्ठी कर लोगे। अभी सबसे बेहतर तो यह होगा कि तुम कुछ मत करना, सिर्फ तादात्म्य तोड़ना, बस; जागना, कुछ करना मत। अन्यथा तुम एक भूल से बचने जाते हो, दूसरी पकड़ लेते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन समुद्र के किनारे बैठा था। पास में ही एक आदमी बड़ा परेशान है। आखिर उससे न रहा गया और उस आदमी ने कहा कि भाई! नसरुद्दीन से कहा क्या यह तुम्हारा लड़का है, जो मेरे कपड़ों पर रेत फेंक रहा है? बड़ा क्रोधित था वह आदमी। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं भाई--बड़े प्यार से--यह तो मेरा भांजा है। मेरा लड़का तो तुम्हारा छाता तोड़ कर अब तुम्हारे जूते में पानी भरने गया है।
तुम इधर सम्हालोगे, उधर बिगड़ जाएगा। तुम अपनी भूलों से बचने के लिए जो कारण देते हो, वे और बड़ी भूलें हो जाती हैं। पुराने सम्राट अपने दरबारों में एक-एक महामूर्ख रखते थे, ताकि वह याद दिलाता रहे कि आदमी की बुद्धिमानी बहुत बुद्धिमानी नहीं है।
एक सम्राट ने एक महामूर्ख को रखा हुआ था। एक दिन अचानक, सम्राट दर्पण
के सामने खड़ा था, महामूर्ख आया और उसने जोर से उचक कर लात सम्राट की पीठ पर

मारी कि वह दर्पण पर गिर पड़ा। सामान टूट गया। दर्पण भी टूट गया। लहूलुहान हो गया। उस सम्राट ने कहा, हद हो गई। मूर्ख मैंने पहले भी देखे, लेकिन तेरे जैसा मूर्ख नहीं देखा। और यह तूने क्या किया? अगर तू, जो तूने किया है, इसको समझाने के लिए इससे भी बड़ी मूर्खता का कोई कारण नहीं बता सका, तो फांसी लगवा दूंगा। उसने कहा, हुजूर, मैं तो समझा महारानी खड़ी हैं। यह उन्होंने कारण बताया! मैं यह नहीं समझा कि आप खड़े हैं, मैं समझा कि महारानी खड़ी हैं। सम्राट को उसे छोड़ना पड़ा, क्योंकि कारण उसने और भी खतरनाक बताया। तुम जहां हो, अंधेरे में खड़े हो। तुम एक भूल करते हो, उसे सम्हालने के लिए तुम जो भी कारण खोजते हो, दूसरी भूल हो जाती है। और ऐसा भूल का एक वर्तुल बन गया है। दुकान से बचने के लिए मंदिर जाते हो; लेकिन तुम मंदिर पहुंच नहीं पाते, मंदिर दुकान हो जाती है--और भी बड़ी दुकान! इधर तुम बचते हो, उधर फंस जाते हो; क्योंकि कारण बाहर नहीं है, कारण भीतर है। तुम अंधेरे में हो; तुम जहां भी जाओगे, वहीं उपद्रव होगा खड़ा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक बार पकड़ गया। जेलखाने में पड़ा था, तो मैं मिलने गया। पुराना संबंध है, मैंने सोचा कि उसको देख आना जरूरी। मैंने पूछा कि नसरुद्दीन, इतने समझदार होकर फंस कैसे गए? उसने कहा, क्या बताऊं, चोरी में फंस गया, लेकिन अपनी ही भूल के कारण। मैंने पूछा, वह क्या भूल? तो उसने कहा, जिस सेठ के घर मैं घुसा, तीन महीने उसके कुत्ते से दोस्ती बनाने में बिताए। और जब भीतर गया तो बिल्ली पर पैर पड़ गया।
तुम जिंदगी भर ऐसे ही कुत्ते से दोस्ती करने में बिताते हो, बिल्ली पर पैर पड़ जाता है। तुम्हारे पास आंख नहीं है। तुम अंधेरे में यहां से वहां टटोलते घूम रहे हो। असली सवाल यह नहीं है कि तुम खोजो; असली सवाल यह है कि प्रकाश हो। अंधेरे में टटोलने से तुम कभी भी न पहुंचोगे। तुम, प्रकाश हो जाए, तो दरवाजा अभी देख लोगे और निकल जाओगे।
आचरण को बदलने में जो लगा है, वह अंधेरे में टटोल रहा है। कभी ज्यादा खाना खाता था, अब उपवास कर रहा है। मगर वह टटोल रहा है वही। खाने में ही अटका है। उपवास भी खाने का ही एक ढंग है। वह भी खाने में ही जुड़ा है। लेकिन कुछ फर्क नहीं पड़ रहा है। कल तक जो कर रहा था, उससे उलटा करने लगेगा, ज्यादा से ज्यादा। इस दिशा में खोज लिया, यहां नहीं पाया, तो उलटी दिशा में खोजने लगेगा। लेकिन आंख तो यहां भी बंद थी, आंख वहां भी बंद रहेगी। तुम इसलिए नहीं भटक रहे हो कि तुम्हारी दिशा गलत है; तुम इसलिए भटक रहे हो कि तुम्हारी आंख बंद है।

आंख खुलनी चाहिए। और जब आंख कहता हूं तो मेरा मतलब है होश! बेहोशी टूटनी चाहिए। होश बढ़ना चाहिए। सोए-सोए मत चलो, जागो। जैसे ही तुम जागोगे, शिवतुल्य हो जाओगे।
"और वे जो भी बोलते हैं, वही जप है। और आत्मज्ञान ही उनका दान है।"
वे धन नहीं देते, क्योंकि धन कचरा है, देने का कोई अर्थ भी नहीं है। जिसको खुद ही छोड़ा, उसे देने का क्या प्रयोजन है! जिसे खुद व्यर्थ पाया, उसे दूसरे को बांटने में क्या सार है! वे तुम्हारे शरीर की सेवा नहीं करते। वे तुम्हें सिर्फ एक ही चीज दे सकते हैं जो देने योग्य है, वह आत्मज्ञान है। वही उनका दान है।
लेकिन तुम देखो! तुम हिसाब उसका नहीं रखते। जैनियों से पूछो, तो वे महावीर का हिसाब रखे हुए हैं कि कितने घोड़े, कितने हाथी, कितने रथ, कितने हीरे-जवाहरात उन्होंने दान किए। और खूब बढ़ा-चढ़ा कर संख्या लिखी है; उतने उनके पास थे भी नहीं। क्योंकि वे एक छोटे से राज्य के मालिक थे, कोई बहुत बड़ा साम्राज्य न था--एक तहसील से बड़ा नहीं। उसमें इतने हाथी-घोड़े हो भी नहीं सकते, जितनी जैनियों ने संख्या लिखी है। संख्या से ऐसा लगता है कि वे कोई चक्रवर्ती सम्राट थे। बिल्कुल भूल है। सिक्किम के छोग्याल जैसी हालत में हैं, बस उतनी हैसियत के आदमी थे, उससे ज्यादा के नहीं। उस समय हिंदुस्तान में दो हजार राज्य थे। तो तुम सोच सकते हो, डिप्टी कलेक्टर की हैसियत रही होगी।
पर इतनी संख्या बढ़ा कर लिखने का क्या कारण है? क्योंकि जैनियों को लगता है, अगर दान छोटा किया तो इतने बड़े तीर्थंकर कैसे होंगे! संख्या बड़ी

करो, गणित को फैलाओ, बढ़ाते जाओ--लाखों हाथी-घोड़े, अरबों-खरबों के हीरे- जवाहरात--वह इसलिए ताकि त्याग मालूम पड़े। लेकिन उन अंधों को कोई भी पता नहीं है कि उस त्याग से कोई संबंध ही नहीं है। जो असली हीरा महावीर ने दिया, वह आत्मज्ञान है। वह उसमें जोड़ा ही नहीं गया है।
तुम वही देख सकते हो, जहां तुम्हारी वासना है। तुम्हारा रस कहां है, वही तुम्हें दिखाई पड़ता है। आत्मज्ञान! वह शब्द कुछ कीमती नहीं दिखाई पड़ता। अगर एक हाथ में रखूं आत्मज्ञान और एक में कोहिनूर हीरा, तो तुम पूछो अपने मन से क्या लोगे? तुम कहोगे, आत्मज्ञान फिर भी हो जाएगा, इतनी जल्दी क्या है! और इतनी जल्दी भी क्या है, जन्म-जन्म पड़े हैं। कोहिनूर फिर मिला न मिला। तुम कोहिनूर ही चुनोगे। क्योंकि तुम्हें रस ही उसमें दिखाई पड़ेगा, जो व्यर्थ है। तुम अंधे हो।
शिवतुल्य जो हो गया है, उसका एक ही दान है, वह आत्मज्ञान है। जो उसने पाया है, वह बांटता है। जो उसने चखा है, वह उसका स्वाद भी तुम्हें देता है। वह अपने को ही बांटता है। वह संपदा नहीं बांटता, वह स्वयं को बांटता है। वह तुम्हें भागीदार बनाता है अपनी भीतरी संपदा में। बाहरी संपदा दो कौड़ी की हो गई है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। तुम गरीब मरो कि अमीर मरो, कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम खा-पीकर ठीक से अच्छे बिस्तर पर मरो कि बिना खाए-पीए सड़क पर मरो, कोई फर्क नहीं पड़ता। फर्क सिर्फ एक बात से पड़ता है कि तुम जागते हुए जीओ और जागते हुए मरो। वहीं सब चीजें टिकी हैं। उस पर ही तुम्हारे सारे जीवन का गंतव्य निर्भर होगा। वही निष्कर्ष तय करेगा। बाकी किसी बात का कोई भी मूल्य नहीं है।
"आत्मज्ञान ही उसका दान है, जो अंतस शक्तियों का स्वामी है और ज्ञान
का कारण है।"
क्योंकि आत्मज्ञान ही अंतस शक्तियों का तुम्हें स्वामी बना देगा। और आत्मज्ञान ही तुम्हारे जीवन को प्रकाश, ज्ञान, आलोक से भर देगा। और जिस दिन तुम जान सकोगे, जाग सकोगे, उस दिन तुम पाओगे कि तुम सदा के सम्राट हो। तुमने अपने को भिखारी कैसे समझा, तुम हंसोगे। तुम हैरान होओगे कि तुम कैसे दुखस्वप्न में दब गए थे।
तुमने कई बार दुखस्वप्न देखे हैं--नाइटमेयर। बस वैसा ही पूरा जीवन है। कभी-कभी ऐसा होता है, रात तुम सोए, छाती पर हाथ पड़ गया। सीधे सो जाओ और छाती पर हाथ पड़ जाए, सपना आएगा कि कोई छाती पर चढ़ा है। कुछ नहीं है, तुम्हारे ही हाथ पड़े हैं। लेकिन वह तो जागने पर पता चलेगा। अभी नींद में तो लगेगा कि कोई छाती पर चढ़ा हुआ है। चट्टान रख दी छाती पर किसी ने; कि कोई पटक रहा है तुम्हें पहाड़ से। और तुम पसीने-पसीने हो रहे हो, भयभीत हो रहे हो। उसी घबड़ाहट में नींद खुल जाएगी। तब तुम चकित होकर हैरान होओगे कि अपने ही हाथ छाती पर पड़े हैं! न कोई चट्टान है। लेकिन सपने में कितनी बढ़ जाती है बात! सपना कैसी अतिशयोक्ति है! अपने ही हाथ पहाड़ और चट्टान बन जाते हैं! कि अपना ही एक हाथ बिस्तर के नीचे लटक गया है तो लगता है कि खाई में गिर रहे हैं।
तुम जरा प्रयोग करके देखो। दूसरे में सपने जगाए जा सकते हैं। कोई आदमी सोया हो, उसके पैर के पास जरा सी आंच ले जाओ। जल्दी ही वह सपना देखेगा कि रेगिस्तान में चल रहा है; मरा जा रहा है, पसीने-पसीने हुआ जा रहा है। या जरा सी बर्फ उसके पैर में छुलाओ। और वह समझेगा कि पहुंच गए एवरेस्ट पर; पैर गले जा रहे हैं, ठंड से मरे जा रहे हैं। तकिया ही रख दो उनकी छाती पर--शैतान बैठा है। उनका ही हाथ उनकी गर्दन में उलझा दो--फांसी लगी है। मगर यह तो जागने पर पता चलेगा। सपना बड़ी अतिशयोक्ति है! जब वह जागेगा, तो हंसेगा कि मैं भी कैसा परेशान हो रहा था। व्यर्थ ही परेशान हो रहा था। वहां कुछ भी न था। एक जरा सा इशारा, और मन भाग खड़ा होता है और न मालूम कितनी कल्पनाएं कर लेता है।
तुम जिंदगी में इतने दुख कभी नहीं पाते, जितनी तुम कल्पना करते हो। वे बीमारियां कभी नहीं आतीं, जिनको तुम सोचे बैठे रहते हो। वे दुख भी तुम पर कभी नहीं गिरते, जिनसे तुम भयभीत रहते हो। तुम्हारे जीवन का नब्बे प्रतिशत दुख तो तुम्हारे मन की कल्पना है, दस प्रतिशत सही है। लेकिन नब्बे प्रतिशत बिल्कुल कल्पना है। और नब्बे प्रतिशत के कारण तुम इस दस प्रतिशत

का हल नहीं कर पाते। अगर वह नब्बे प्रतिशत समाप्त हो जाए, झूठ हट जाए, तो जीवन का जो भी दुख वास्तविक है, उसका निपटारा है। उससे छुटकारा है। उसके बाहर होने का उपाय है। तुम उससे सदा बड़े हो। तुम उस पर पैर रख कर सीढ़ी बना ले सकते हो। लेकिन तुम इतना बढ़ा लेते हो कि दुख इतना बड़ा हो जाता है कि तुम छोटे हो जाते हो। तब तुम कंपते हो, तब तुम कुछ भी नहीं कर सकते।
जैसे ही भीतर के ज्ञान की किरण जगती है, दीया जलता है, तुम अपनी शक्तियों के स्वामी हो जाते हो। और वही तुम्हारे ज्ञान का कारण है। और ज्ञान अंतिम घटना है। ज्ञान का अर्थ हैः भीतर की आंख, देखने की क्षमता, आर-पार देखने की क्षमता। तब जीवन में कोई दुख नहीं है। तब जीवन में सिर्फ आनंद है। तुम्हारे अंधेपन के कारण दुख है। तुम्हारी नींद के कारण तुम्हारा सपना दुखद हो गया है। होश किसी दुख को नहीं जानता। होश सिर्फ आनंद को जानता है।
"स्वशक्ति का प्रचय अर्थात सतत विलास ही इसका विश्व है।"
जो व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह सतत अंतरविलास में है, वह सतत महा सुख में है। स्वशक्ति का प्रचय! उसके भीतर की स्वयं की शक्ति न मालूम कितने सुख को जन्म देती रहती है। प्रतिपल वहां सुख घटता रहता है। जैसा झरना बहता रहता है सतत, ऐसे वहां सुख की धारा बहती रहती है। तुम्हारे भीतर प्रतिपल अनंत स्रोत सुख के बह रहे हैं, लेकिन उस तरफ तुम्हारी पीठ है। और ध्यान रखना, धर्म कोई त्याग नहीं है, धर्म परम विलास है। परमात्मा कोई बैठ कर रो नहीं रहा है, नाच रहा है। तुम रोते परमात्मा को मत खोजना, वह तुम्हें कहीं न मिलेगा। और जो भी मिलेंगे, वे तुम्हारे बीच में से ही कोई होंगे, जो परमात्मा का अभिनय कर रहे हैं। परमात्मा नाच रहा है। यह पूरा जीवन आनंद का महोत्सव है। इस जीवन ने दुख कहीं जाना नहीं है। दुख तुम्हारी कल्पना है। दुख तुमने पैदा किया है। दुख तुम्हारा सोचा हुआ है। दुख तुम्हारी उत्पत्ति है। और अंधा आदमी और कुछ कर भी नहीं सकता; वह जहां जाएगा, वहीं टकराएगा। पर सोचता है वह यह कि सारी दुनिया मुझसे टकराने को तैयार खड़ी है।
कोई तुमसे टकराने को क्यों उत्सुक होगा? कोई दीवार को मतलब है? कि दरवाजे को कोई मतलब है? अंधा आदमी जहां भी जाता है, कहीं दीवार टकरा जाती, कहीं दरवाजा टकरा जाता। और अंधा आदमी सोचता है कि सारी दुनिया मुझसे टकराने को बैठी है। आंख वाले से कोई नहीं टकराता। निश्चित, कोई तुमसे टकराने को नहीं बैठा है। तुम ही अंधे हो, तुम ही टकरा जाते हो। दोष तुम दूसरे को देते हो; दोषी तुम स्वयं हो। उत्तरदायित्व तुम दूसरे पर फेंकते हो; तुम्हारे अतिरिक्त किसी का उत्तरदायित्व नहीं है।
यह वचन समझने जैसा हैः "स्वशक्ति का प्रचय अर्थात सतत विलास ही उसका विश्व है।"
ऐसी स्थिति जब आ जाती है ज्ञान की, तो प्रतिपल आनंद ही फलित होता रहता है। वहां सिर्फ फूल ही लगते हैं, कांटे नहीं। और वहां अमृत ही बरसता है, वहां कोई मृत्यु नहीं। वहां दुख की एक किरण भी नहीं प्रवेश पाती। तुम्हारे भीतर महा सुख का राज्य है। उसकी ही तुम तलाश में भी हो। लेकिन खोज तुम बाहर रहे हो। खोज तो ठीक है, दिशा गलत है। आत्मज्ञानी तुम्हें दिशा देता है, वही उसका दान है। वह तुम्हें उस दिशा में ले जाता है। जहां उसने पाया, वहीं तुम्हें ले जाता है। आत्मज्ञानी तुम्हें समझाता नहीं, क्योंकि उसे समझाने का कोई उपाय नहीं है; तुम्हारे हाथ को पकड़ कर उस तरफ ले जाता है।
लेकिन तुम इतने डरे हुए हो कि तुम किसी का हाथ पकड़ने से डरते हो। तुम समर्पण नहीं कर सकते, श्रद्धा नहीं कर सकते, किसी पर भरोसा नहीं कर सकते। तुम्हारे भय ने तुम्हें इतना असुरक्षित कर दिया है कि जो तुम्हें दुख के बाहर ले जाए, तुम सोचते हो शायद यह भी किसी झंझट में ले जाएगा। तुम इतनी झंझटों में पड़ते रहे हो कि अब तुम्हें झंझटें ही दिखाई पड़ती हैं। आत्मज्ञानी के पास, अगर तुम उसका हाथ पकड़ने को राजी नहीं हो, तो कोई उपाय नहीं कि वह तुम्हें दान भी कैसे दे। तुम्हें हाथ तो फैलाने ही होंगे। तुम्हें दान स्वीकार तो करना ही होगा। तुम अगर अपनी मुट्ठियां बांध कर

खड़े हो और तुम दान स्वीकार करने को राजी नहीं, तो आत्मज्ञानी भी तुम्हारे द्वार से बिना तुम्हें दिए लौट जाएगा।
"स्वशक्ति का प्रचय अर्थात सतत विलास ही इसका विश्व है।"
और वहां सतत विलास चल रहा है और तुम सतत दुख में हो।
"और वह स्वेच्छा से स्थिति और लय करता है।"
यह बड़ा कठिन है। समझना कठिन है; क्योंकि अनुभव से ही समझ में आ सकता है, अनुभव नहीं है तो समझ में नहीं आएगा। लेकिन फिर भी थोड़ा सा प्रत्यय बन जाए तो कभी सहयोगी होगा।
जैसे ही कोई व्यक्ति स्वयं को जानने में समर्थ हो जाता है, वैसे ही एक अनूठी शक्ति, इस जगत में सबसे महान शक्ति--उससे बड़ा कोई चमत्कार नहीं--उसे उपलब्ध होता है। और वह चमत्कार यह है कि वह जब चाहे तब हो जाए और जब चाहे न हो जाए; जब चाहे तब अस्तित्व में आ जाए और जब चाहे तब शून्य में खो जाए। जैसे तुम जगते हो और सोते हो।
लेकिन वह भी स्वेच्छा से नहीं। सुबह नींद खुल गई तो तुम क्या करोगे? फिर सो नहीं सकते। रात नींद आती है तो तुम जग नहीं सकते।
जैसे तुम सोते और जगते हो, ऐसा ही आत्मज्ञानी स्वेच्छा से शून्य में जाता और पूर्ण में आता है। वह उसकी स्वेच्छा है। वह उसमें परतंत्र नहीं है। अगर वह तय करे कि उसे शून्य में खो जाना है, तो वह शून्य में खो जाता है। अगर वह तय करे कि उसे पूर्ण में रहना है, तो वह पूर्ण में रहता है। बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि वे गए स्वर्ग के द्वार पर, द्वारपाल
ने द्वार खोले, लेकिन वे पीठ करके खड़े हो गए। उन्होंने कहा, जब तक अंतिम व्यक्ति मुक्त न हो जाए, तब तक मैं द्वार पर रुकूंगा। जिस दिन आखिरी व्यक्ति प्रवेश कर जाएगा स्वर्ग के महा सुख में, उस दिन उसके पीछे मैं प्रवेश करूंगा।
यह कहानी बड़ी प्रीतिकर है। इसका मतलब यह है कि जगत में दो तरह के आत्मज्ञानी हैं। सभी धर्मों ने उन दो तरह के आत्मज्ञानियों को समझा है। एक आत्मज्ञानी तो वह है जो अपने आत्मज्ञान हो जाने के बाद शून्य में लीन हो जाता है; और एक आत्मज्ञानी वह है जो अपने आत्मज्ञान के बाद भी अस्तित्व में बना रहता है, ताकि दूसरों को सहायता कर सके।
जैनों ने पहले आत्मज्ञानी को कैवल्य ज्ञानी कहा है। अनंत कैवल्य ज्ञानी होते हैं। वे शून्य में खो जाते हैं, उन्होंने अपनी मंजिल पा ली। वे प्रवेश कर जाते हैं, द्वार पर नहीं खड़े रहते। चौबीस को जैनियों ने तीर्थंकर कहा है। तीर्थंकर वे कैवल्य ज्ञानी हैं जो द्वार पर खड़े रहते हैं; जो दूसरे के लिए रास्ता बताते हैं।
बौद्धों ने भी दो तरह के आत्मज्ञानी माने हैं। एक को वे बोधिसत्व कहते हैं और एक को अर्हत। बोधिसत्व वह आत्मज्ञानी है जो दूसरे के लिए रुकता है। और अर्हत वह आत्मज्ञानी है जो अपना पाकर लीन हो जाता है।
सारे धर्मों ने दो तरह के आत्मज्ञानी माने हैं, क्योंकि दो तरह के होते हैं। तुम जब पहुंचोगे उस परम दशा में, तो या तो तुम्हारे मन में, तुम्हारे प्राणों में, एक वासना शेष रह जाएगी। इसको भी वासना ही कहना पड़ेगा कि मैं दूसरों की सहायता करूं। और या यह वासना भी शेष न रहेगी, तो तुम खो जाओगे। इसलिए सदगुरु, अपने शिष्यों में उन शिष्यों को बोधिसत्व या तीर्थंकर बनाने की कोशिश करते हैं जिनमें करुणा का तत्व ज्यादा है। दो तत्व हैं जो आखिर में रहते हैं--करुणा और प्रज्ञा। प्रज्ञा का अर्थ है ज्ञान; और करुणा का अर्थ है दया। और तुम्हारे भीतर दो ही तरह के व्यक्ति हैं--एक जिनके भीतर करुणा ज्यादा है और एक जिनके भीतर प्रज्ञा ज्यादा है। जिनके भीतर प्रज्ञा ज्यादा है, वे तो सीधे शून्य में खो जाएंगे। उनको गुरु नहीं बनाया जा सकता। वे शिष्य ही रहेंगे; और जिस दिन वे ज्ञान को उपलब्ध होंगे, वे खो जाएंगे। वे गुरु कभी नहीं बनेंगे। जिनके जीवन-तत्व में करुणा का भाव ज्यादा है, वे गुरु बन सकते हैं, तीर्थंकर बन सकते हैं, बोधिसत्व बन सकते हैं।
तो यह गुरु पर निर्भर करेगा कि वह अपने शिष्यों को तैयार करे। जिनके भीतर उसे करुणा का तत्व ज्यादा दिखाई पड़ता है, प्रेम का, सेवा का, उनको वह इस भांति तैयार करेगा कि उनमें करुणा की वासना आखिर तक रह जाए। जब उनका

ज्ञान फलित हो, तो एक वासना उनके भीतर शेष रह जाए करुणा की। जब उनकी नाव छूटने के लिए तैयार हो जाए, तब एक खूंटी से रस्सी बंधी रह जाए। वह खूंटी होगी करुणा की। या उनके भीतर करुणा का तत्व नहीं है, शुष्क प्रज्ञा है, तो उनकी कोई खूंटी बचाने की जरूरत नहीं। उनकी नाव जैसे ही तैयार हुई, वे यात्रा पर निकल जाएंगे, महा शून्य में खो जाएंगे।
शिवत्व को उपलब्ध व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से स्थिति और लय करता है।
या तो वह ठहर सकता है अस्तित्व में सेवा के लिए या खो सकता है शून्य में--यह उसकी स्वेच्छा है। और ध्यान रहे, उसी के पास स्वेच्छा है, तुम्हारे पास कोई स्वेच्छा नहीं। तुम्हारे पास स्वयं का होना नहीं, तो स्वेच्छा कैसे होगी! तुम भला कहते हो कि मैं अपनी स्वेच्छा से ऐसा कर रहा हूं, लेकिन वह झूठ है; तुम किसी वासना के दबाव में वैसा करते हो। स्वेच्छा क्या है तुम्हारे पास? स्वेच्छा तो तब है कि कोई गाली दे और तुम क्रोध न करो। यह हो सकता है, क्रोध प्रकट न करो; लेकिन गाली देते ही भीतर क्रोध हो जाएगा। स्वेच्छा तो तब है जब कोई गाली दे और तुम ऐसे खड़े रहो जैसे गाली नहीं दी गई। स्वेच्छा तो तब है जब कोई प्रशंसा करे और तुम ऐसे खड़े रहो जैसे प्रशंसा नहीं की गई; जैसे कुछ भी नहीं हुआ, तुम वही हो जैसे पहले थे, कोई रत्ती भर भी अंतर न पड़े। तब तुम मालिक हो अपने, तब तुम स्वामी हो। और ऐसा जो स्वामित्व है, उसके लिए अंतिम निर्णय आखिरी क्षण में होता है।
तो बौद्धों के दो धर्म हो गए इसी आधार पर। एक धर्म है हीनयान, और एक धर्म है महायान; दो पंथ हो गए। हीनयान का अर्थ है छोटी नाव। उसमें एक ही सवार हो सकता है, ज्यादा लोग नहीं। वह अर्हत की नाव है। वह बैठता है और अपनी यात्रा पर निकल जाता है। महायान का अर्थ है बड़ी नाव। वह बोधिसत्व की नाव है। वह बैठ भी जाए नाव में तो रुकता है, ताकि और लोग भी सवार हो जाएं, फिर उसकी नाव जाए।
कहना मुश्किल है कि दोनों में कौन ठीक है, कौन गलत। उस स्थिति में ठीक
और गलत का निर्णय भी मुश्किल है। जो जिसके स्वभाव के अनुकूल है! जिनके हृदय में स्त्रैणता है, वे बोधिसत्व हो जाएंगे; और जिनके हृदय में पुरुषत्व है, वे अर्हत हो जाएंगे। और दो तरह के हृदय हैं। इसलिए आखिरी क्षण में भी दो तरह के हृदय निर्णायक होंगे। या तो तुम्हारे पास पुरुष का हृदय है--शुष्क प्रज्ञा; या स्त्री का हृदय है--आर्द्र करुणा। या तो तुम प्रेमपूर्ण हो, या तुम ज्ञानपूर्ण हो। या तो तुम ज्ञानी हो, या भक्त हो। ये दो विपरीत मिल कर संसार बना है। संसार में सभी चीजें विपरीत से बनी हैं-- अंधेरा और प्रकाश, स्त्री और पुरुष, जन्म और मृत्यु; ऐसे ही करुणा और प्रज्ञा। आखिरी क्षण में भी ये दो तत्व किनारे पर रहेंगे। इनमें से जो भी प्रबल होगा, वह निर्णायक होगा।
लेकिन तब स्वेच्छा का उपयोग करना होगा। तब स्वेच्छा है तुम्हारी, क्योंकि मुक्त पुरुष अब किसी बंधन में नहीं है। यह उसकी अपनी ही मर्जी है। पहली दफा मर्जी पैदा हुई है। पहली दफा संकल्प का जन्म हुआ है। आत्मज्ञानी ही संकल्प करता है; तुम तो वासनाओं में प्रवाहित होते हो। वह तय करेगा। और एक ही निर्णय की अवस्था है बस, इसके पहले कोई अवस्था निर्णय की नहीं है। तब तो तुम बहते हो, निर्णायक नहीं हो।
गुरजिएफ से किसी ने पूछा कि मैं क्या करूं, मुझे बताएं। गुरजिएफ ने कहा, काश, तुम कुछ कर सकते! तो मैं तुम्हें बताता। अभी तुम कुछ कर ही नहीं सकते। अभी तो तुम अंधे प्रवाह में हो। अभी तो तुम ऐसे हो जैसे घास का तिनका लहरों पर डोलता रहता है; कहीं भी लहरें ले जाएं, वहीं चला जाता है। अभी तुम कहां हो?
बुद्ध से किसी ने पूछा कि मैं सेवा करना चाहता हूं लोगों की। बुद्ध ने बहुत गौर से देखा और दया से कहा, अभी तुम हो ही नहीं, सेवा कैसे करोगे? निर्णय आता है आखिरी क्षण हाथ में। आत्मज्ञान के बाद निर्णायक शक्ति तुम्हारे पास होती है, क्योंकि तुम तब शिवतुल्य हो गए; तब तुम सृष्टि न रहे, स्रष्टा हो गए। तब तुम इस जगत के हिस्से नहीं हो, तुम स्वयं परमात्मा हो। अब सारा खेल तुम्हारे हाथ में है। अब तुम नियंता हो। तब आखिरी निर्णय हाथ में आता है और वह यह है कि या तो तुम रुकना चाहोगे, अपनी नाव में और लोगों को सवार कर लो, तब तुम तीर्थंकर हो जाओगे। या तुम चिंता न करोगे। वह

बात ही तुम्हें पकड़ेगी नहीं। और तुम सोचोगे, हर आदमी अपना रास्ता खोजता है; अपने रास्ते से पहुंचता है; कौन किसकी नाव में सवार होता है! तुम अपनी नाव को छोड़ दोगे।
"और वह स्वेच्छा से स्थिति और लय करता है।"
इसे ख्याल में रखना उचित है, क्योंकि इसको सुनते भी तुम्हारे भीतर ख्याल जगने लगेगा कि तुम्हें अगर निर्णय का मौका मिले तो तुम क्या करोगे।
तत्क्षण जगने लगेगा। और वह जगना उपयोगी है; क्योंकि आखिरी क्षण वही बीज बड़ा हो जाएगा, वृक्ष बन जाएगा।
आज इतना ही।

शिव-सूत्र
दसवां प्रवचन

साक्षित्व ही शिवत्व है

सुखासुखयोर्बहिर्मननम्।
तद्विमुक्तस्तु केवली।
तदारूढ़प्रमितेस्तत्क्षयाज्जीवसंक्षयः।
भूतकंचुकी तदाविमुक्तो
भूयः पतिसमःपरः।
ओम्, श्री शिवार्पणं अस्तु।

सुख-दुख बाह्य वृत्तियां हैं, ऐसा सतत जानता है।
और उनसे विमुक्त, वह केवली हो जाता है।
उस कैवल्य अवस्था में आरूढ़ हुए योगी का अभिलाषा-क्षय के कारण
जन्म-मरण का पूर्ण क्षय हो जाता है।
ऐसा भूतकंचुकी, विमुक्त पुरुष परम शिवरूप ही होता है।
ओम भगवान श्री शिव को यह अर्पित हो।

सूत्र में प्रवेश के पहले--पीछे मैं आपको कहा था कि मंत्र के संबंध में कुछ कहूंगा। आज शिविर का अंतिम दिन है; मंत्र के संबंध में कुछ समझ लें। उसका प्रयोग जीवन में क्रांति ला सकता है।
पहली बात--जैसा मैंने कल कहा, पर्त-पर्त तुम्हारे व्यक्तित्व में है, जैसे प्याज में होती है। एक-एक पर्त को उघाड़ना है, ताकि भीतर छिपे केंद्र को तुम खोज पाओ। हीरा छिपा है, खोया तुमने नहीं। खो सकते भी नहीं हो; क्योंकि वह हीरा तुम ही हो। दब सकते हो; हीरा भी मिट्टी में दब जाता है। हीरे पर भी पर्त जम जाती हैं। हीरा भी पत्थर जैसा दिखाई पड़ने लगता है। पर भीतर कुछ भी नष्ट नहीं होता।
तुम्हें शायद ख्याल न हो कि हीरे का इतना मूल्य क्यों?
हीरे के मूल्य के पीछे मनुष्य की शाश्वत की खोज है। इस जगत में हीरा सबसे थिर है। सब चीजें बदल जाती हैं; हीरा बिना बदला हुआ बना रहता है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष में भी वह क्षीण नहीं होता। इस बदलते हुए संसार में, हीरा न बदलते हुए अस्तित्व का प्रतीक है। इसलिए हीरे का इतना मूल्य है। अन्यथा वह पत्थर है। मूल्य है उसकी शाश्वतता का, उसके ठहराव का।
हीरा होना तुम्हारा शाश्वत स्वभाव है। और सारी साधना तुम्हारी मिट्टी की जम गई पर्तों को अलग करने की है। पर्तें मिट्टी की हैं; इसलिए अलग करना बहुत कठिन न होगा। और पर्तें हीरे पर हैं और मिट्टी की हैं, शाश्वत पर हैं, परिवर्तनशील की हैं, इसलिए बहुत कठिन बात नहीं होगी। मंत्र इन पर्तों को खोदने की विधि है।
एक छोटी घटना तुमसे कहूं।
मुल्ला नसरुद्दीन का एक मित्र बहुत वर्षों बाद मिला। तो उसने घर के समाचार पूछे और फिर पूछा कि तुम्हारी बेटी का क्या हुआ? नसरुद्दीन ने कहा, तुम भरोसा करो या न करो, बेटी की शादी हो गई। और साधारण आदमी से नहीं, एक बड़े डाक्टर से!
मित्र को भरोसा न आया। उसने कहा, क्षमा करना, विश्वास करना कठिन है।
और बुरा मत मानना, तुम भी जानते हो कि बेटी तुम्हारी सुंदर तो थी ही नहीं; निश्चित रूप से कुरूप थी। मिलिट्री के टेंट जैसी उसकी देह थी। तो मैं भरोसा नहीं कर सकता कि उसकी शादी हो गई, और वह भी फिर डाक्टर से! बड़े डाक्टर से! बड़े रहस्य की घटना है! कैसे फांस लिया उसने एक डाक्टर को?
नसरुद्दीन ने कहा, अच्छा-अच्छा! तो नहीं सही। न सही बड़ा डाक्टर, न सही डाक्टर। लेकिन एक बात मैं तुमसे कहूंगा। मेरे सिर का दर्द उसने दूर किया। मेरे लिए वह डाक्टर है।
जो सिर का दर्द दूर करे, वह डाक्टर; और जो सिर को ही दूर कर दे, वह मंत्र। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! सिर जब तक है, तब तक दर्द होता ही

रहेगा। ऐसी भी विधि है, जिससे सिर दूर हो जाए। तुम्हारी सारी तकलीफ तुम्हारा सिर है, तुम्हारे विचार हैं, विचारों का ऊहापोह है, चिंतना है। अगर विचार खो जाएं तो सिर खो गया! तब तुम तो रहोगे, लेकिन मन न रहेगा।
मन को जो मार दे, वह मंत्र है। मन की जिससे मृत्यु घटित हो जाए, वह मंत्र है। और मन जब नहीं रह जाता तो तुम्हारे और शरीर के बीच जो सेतु है वह टूट जाता है। मन ही जोड़े हुए है तुम्हें शरीर से। अगर बीच का सेतु, बीच का संबंध टूट जाए, तो शरीर अलग, तुम अलग हो जाते हो। और जिसने जान लिया अपने को शरीर से अलग और मन से शून्य, वह शिवत्व को उपलब्ध हो जाता है। वह परम केवली है।
इसलिए मंत्र को समझ लें। मंत्र की परिभाषा है--जिससे सिर ही खो जाए, मन
न बचे। और ये जो पर्तें हैं शरीर की, मन की, इनको काटने की विधि। एक-एक कदम बढ़ना जरूरी है। और धैर्य रखना होगा; क्योंकि मंत्र बहुत धीरज का प्रयोग है। अधैर्य जिनके मन में बहुत ज्यादा है, उन्हें मंत्र से लाभ न होगा, नुकसान हो सकता है। इसे पहले समझ लें। क्योंकि वैसे ही तुम काफी परेशान हो, मंत्र और एक नयी परेशानी बन जाएगी अगर अधैर्य हुआ।
मैं एक स्टेशन से गुजर रहा था। खिलौनों के एक ठेले पर एक खिलौना मैंने देखा। और वह चिल्ला-चिल्ला कर खिलौने बेचने वाला कह रहा था कि कोई बच्चा इस खिलौने को तोड़ नहीं सकता, यह अनब्रेकेबल है। तो मैंने सोचा, खरीद लूं, नसरुद्दीन के बच्चे के काम आएगा, क्योंकि उसकी पत्नी सदा यही रोना रोती रहती है कि खिलौना घर तक नहीं आ पाता और लड़का तोड़ देता है। उसे मैंने खरीद लिया। उसके दाम भी ज्यादा थे और मजबूत भी था। दिया नसरुद्दीन की पत्नी को, बेटे के लिए। पति-पत्नी दोनों प्रसन्न हुए कि इसको वह भी न तोड़ पाएगा, हम भी न तोड़ पाएंगे। सच में ही खिलौना मजबूत था।
सात दिन बाद उनके घर गया। पूछा, तो पत्नी कहने लगी, बड़ी मुसीबत हो गई! मैंने पूछा, क्या उसने वह खिलौना तोड़ दिया? पत्नी ने कहा, नहीं, वह खिलौना तो नहीं तोड़ पाया, लेकिन उस खिलौने से उसने सारे खिलौने तोड़ डाले, घर के सब दर्पण तोड़ डाले और अब आत्मरक्षा के लिए हमें कुछ उपाय करना पड़ेगा। वह खिलौने का अस्त्र की तरह उपयोग कर रहा है।
तुम वैसे ही विक्षिप्त दशा में हो। मंत्र से विक्षिप्तता टूट भी सकती है, बढ़ भी सकती है। वैसे ही तुम बोझ से भरे हो, और नया मंत्र और एक बोझ ले आएगा। इसलिए एक अनहोनी घटना रोज घटती है कि जिनको तुम साधारणतः धार्मिक आदमी कहते हो, वे साधारण सांसारिक आदमी से ज्यादा परेशान हो जाते हैं। क्योंकि संसारी को संसार की परेशानी है, उनको संसार की तो बनी ही रहती है, धर्म की और जुड़ जाती है। वह प्लस। उससे कुछ घटता नहीं, बढ़ता है। मन पुराने सब धंधे तो जारी रखता है, यह एक नया धंधा और पकड़ लिया; व्यस्तता और बढ़ गई। तो मंत्र के साथ अत्यंत धैर्य चाहिए, अन्यथा उस झंझट में मत पड़ना। जैसे दवा को मात्रा में लेना होता है! यह मत सोचना कि पूरी बोतल इकट्ठी पी गए तो बीमारी अभी ठीक हो जाएगी। उससे बीमार मर सकता है, बीमारी न मरेगी। उसे मात्रा में ही लेना। और मंत्र की मात्राएं बड़ी होमियोपैथिक हैं, बड़ी सूक्ष्म हैं। तो बहुत धैर्य की जरूरत है, वह पहली जरूरत है। फल की बहुत जल्दी आकांक्षा मत करना; वह जल्दी आएगा भी नहीं, क्योंकि यह परम फल है। यह कोई मौसमी फूल नहीं है कि बोया और पंद्रह दिन के भीतर आ गया। जन्म-जन्म लग जाते हैं। और एक कठिन बात जो समझ लेने की है, वह यह है कि जितना धैर्य हो उतने जल्दी फल आ जाएगा, और जितना अधैर्य हो उतनी ज्यादा देर लग जाएगी।
एक आदमी जा रहा था रास्ते से। उसका जूता उसे काट रहा था; जूता छोटा था।
वह जूते को गालियां दे रहा था और बहुत परेशान था। नसरुद्दीन ने उससे पूछा कि मेरे भाई, इतना तंग जूता कहां से खरीदा? वह आदमी वैसे ही जला-भुना था, वैसे ही क्रोध में था। उसने कहा, जूता कहां से खरीदा! झाड़ से तोड़ा है! नसरुद्दीन ने कहा, मेरे भाई, थोड़ी देर रुक जाते तो पैर के नाप का तो हो जाता। कच्चा तोड़ लिया!
मंत्र कभी कच्चा मत तोड़ना, नहीं तो बुरे फंस जाओगे। जूते को तो कोई फेंक दे, मंत्र को फेंकना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जूता तो बाहर है, मंत्र भीतर होता है। और अगर गलती से मंत्र में फंस गए तो निकालना बहुत मुश्किल हो जाता है। बहुत से धार्मिक लोग पागल हो जाते हैं। उसका कारण हैः

मंत्र में फंस गए, कुछ जल्दी कर ली तोड़ने की; फल पक नहीं पाया था, कच्चा ले गए। पक कर तो फल बहुत मीठा हो जाता; कच्चा बहुत तिक्त होगा, बहुत कड़वा होगा, जहरीला होगा।
पहली पर्त है शरीर। तो मंत्र का पहला प्रयोग शरीर से शुरू करना जरूरी है। क्योंकि वहीं तुम हो, वहीं से इलाज शुरू होगा। अगर तुमने वह पर्त छोड़ कर मंत्र का इलाज शुरू किया, तो बीमारी तुम्हारी रह जाएगी, मिटेगी नहीं। कल नहीं परसों, कच्चा फल हाथ आएगा। ध्यान रखना, यात्रा वहीं से शुरू की जा सकती है जहां तुम खड़े हो; कहीं और से यात्रा की, वह सपना है। तुम अभी शरीर हो। तो अभी मंत्र को शरीर से ही शुरू करना होगा।
विधि को समझ लो। पहले दस मिनट शांत बैठ जाना। शांत बैठने के पहले-- क्योंकि शांत बैठना आसान नहीं है--पांच मिनट नाचना, उछलना, कूदना। और दिल खोल कर उछलना, कूदना, नाचना। ताकि शरीर के भीतर, रग-रग, रेशे-रेशे में जो रेस्टलेसनेस है, वह जो बेचैनी है, वह निकल जाए। तभी तुम दस मिनट शांति से बैठ पाओगे। शांति से बैठने के लिए यह जरूरी रेचन है। दस-पांच मिनट, जितना तुम्हें ठीक लगे, जितनी तुम्हारी बेचैनी हो, उस हिसाब से तुम नाचना, कूदना, डोलना, शरीर को सब तरफ से हिलाना। ताकि दस मिनट शरीर हिलने की आकांक्षा न करे। उसकी हिलने की तृप्ति कर देना। दस मिनट शरीर को हिलाना-डुलाना, नाचना-कूदना, दौड़ना, फिर बैठ जाना। और फिर बैठ जाना बिल्कुल थिर, दस मिनट अब शरीर न हिले। आंख आधी खुली रखना। और उचित होगा कि प्रयोग खुले में मत करना, बंद में करना। छोटा कमरा हो, बंद हो, और बिल्कुल खाली हो, वहां कोई भी चीज न हो।
इसलिए मंदिर, मस्जिद या चर्च बहुत अच्छा है, जहां कुछ भी नहीं है, कोई सामान नहीं है। या घर में एक कोना साफ कर लेना, जहां कुछ भी नहीं है। वहां देवी-देवताओं को भी मत रखना, वे भी उपद्रव हैं। वहां बिल्कुल खाली कर देना। बस खालीपन ही एकमात्र परमात्मा है, बाकी सब चीजें मन का ही खेल हैं। अब मन ऐसा पागल है कि अगर लोगों के पूजागृह देखो तो उनका पागलपन पता
चल जाए। कोई सौ-पचास देवी-देवताओं को लटकाए हुए हैं! जमाने भर के कैलेंडर काट-काट कर टांग लिए हैं। जो भी देवी-देवता जहां मिल जाता है, रद्दी में, अखबार में, उसको वे चिपका लेते हैं। यह उनकी खोपड़ी का सबूत है। और इन सबके सामने जल्दी-जल्दी सिर झुका कर, पानी वगैरह छिड़क कर, सबको तृप्त करके वे गए!
इनमें से कोई एक भी तृप्त नहीं होता है। एक को तृप्त करने से सब भी तृप्त हो जाएं, सब को तृप्त करने से एक भी तृप्त नहीं होता। एक साधे, सब सधे। और वह एक बाहर नहीं है, वह भीतर है।
कमरे को बिल्कुल खाली रखना। जितना शून्य हो, उतना अच्छा; क्योंकि इसी शून्य की भीतर तलाश है। यह कमरा तुम्हारे भीतर शून्य का प्रतीक हो, और छोटा हो, क्योंकि मंत्र में उसका उपयोग है; और खाली हो, उसका भी उपयोग है। आंख आधी खुली रखना; क्योंकि जब आंख पूरी खुली होती है, तो तुम दरवाजे पर खड़े हो अपने मकान के--पीठ मकान की तरफ, मुंह संसार की तरफ। एकदम से पीठ न मुड़ेगी। एकदम से परिवर्तन आसान नहीं। तुम सिर्फ आधी आंख खोलना, आधा संसार की तरफ बंद और आधा अपनी तरफ खुले। आधी आंख खुले होने का यही अर्थ है कि आधा संसार देख रहे हैं, आधा अपने को। यहीं से शुरू करना।
और जल्दी की कोई आवश्यकता नहीं है। आधी आंख जब खुली होती है तो तुम एक तंद्रा जैसी स्थिति अनुभव करोगे। तो अपनी नाक के शीर्ष भाग को देखते रहना। बस उतनी ही आंख खोलनी है। एकाग्रता नहीं करनी है; शांत भाव से नाक का अगला हिस्सा दिखाई पड़ रहा है--नासाग्र दिखाई पड़ रहा है। तब ओम का पाठ जोर से शुरू करना--शरीर से, क्योंकि शरीर में तुम हो। तो जोर से ओम की ध्वनि करना कि कमरे की दीवारों से टकरा कर तुम पर गिरने लगे। इसलिए खाली जरूरी है। खाली होगा तो प्रतिध्वनि होगी। जितनी प्रतिध्वनि हो उतनी लाभ की है। इसलिए अगर तुम ईसाइयों का कैथेड्रल देखे हो, तो वह मंत्र के लिए बनाया गया था। वहां कुछ भी बोलो तो वह ध्वनि हजार होकर तुम्हारे ऊपर लौट आती है। हिंदुओं ने मंदिर बनाया था अर्धवृत्त में सिर्फ इसीलिए कि उसकी गुंबज में ध्वनि टकरा कर वापस लौट आएगी। वृत्ताकार वस्तु से कोई भी ध्वनि बाहर नहीं जा सकती, भीतर लौट आती है। वे मंत्र के लिए थे।

तो तुम बैठ जाना, जोर से ओंकार--ओम, ओम, जितने जोर से कर सको; क्योंकि शरीर का उपयोग करना है। तुम्हारा पूरा शरीर निमज्जित हो जाए ओम में। ऐसा लगने लगे कि तुमने अपनी पूरी जीवन-ऊर्जा ओम में लगा दी, कुछ बचाया नहीं। जैसे इसी पर जीवन-मरण टिका है। इससे कम में मंत्र पूरा नहीं होता। ऐसे धीरे-धीरे मुर्दे की तरह कहते रहो, आधे-आधे, उससे हल न होगा। समग्र भाव से! जैसे कि इसी पर निर्भर है कि अगर तुमने पूरी तरह ओम कहा तो ही तुम बचोगे, अन्यथा मर जाओगे। दांव पर लगा देना! जैसे सिंहनाद होने लगे। आधी आंख खुली, आंधी बंद, जोर से ओम का पाठ। और ध्यान रखना, जैसे कोई पत्थर फेंकता है शांत झील में, लहरें उठती हैं, चारों तरफ चली जाती हैं, ऐसा जब तुम ओम कहोगे, तुमने एक पत्थर फेंका उस शांत शून्यता में कमरे की, चारों तरफ किरणें फैलीं, ध्वनि गई, टकराई, वापस लौटी।
और तुम इतने जल्दी ओम कहना कि ओवरलैपिंग हो जाए। एक मंत्र उच्चार के ऊपर दूसरा मंत्र उच्चार हो जाएः ओम--ओम--ओम। दो ओम के बीच जगह मत छोड़ना। पसीना-पसीना हो जाना। सारी ताकत लगा देना। थोड़े ही दिनों में तुम पाओगे कि पूरा कक्ष ओम से भर गया। तुम पाओगे कि पूरा कक्ष तुम्हें साथ दे रहा है; ध्वनि लौट रही है। अगर तुम कोई गोल कक्ष खोज पाओ तो ज्यादा आसान होगा। अगर गुंबद वाला कक्ष खोज पाओ तो और भी आसान होगा। बिल्कुल कुछ भी न हो, ताकि ध्वनि पूरी तरह तुम पर बरसने लगे। तुम्हारा शरीर एक स्नान से गुजर जाएगा। और तुम पाओगे कि ऐसी शीतलता जल के स्नान से कभी भी नहीं मिलती।
अभी वैज्ञानिक इस पर बहुत खोज कर रहे हैं। और वे कहते हैं कि वृक्षों
को अगर कुछ खास ध्वनि का संगीत सुनाया जाए, तो उनमें जल्दी फूल आ जाते हैं, जल्दी फल आ जाते हैं, वृक्ष जल्दी बढ़ जाते हैं। रूस और अमरीका में दोनों जगह खेतों में संगीत का प्रयोग किया जा रहा है, ताकि फसलें जल्दी आ जाएं, दुगनी आ जाएं। और परिणाम सफल हुए हैं।
रविशंकर के सितार पर एक प्रयोग किया जा रहा था कनाडा में। रविशंकर सितार बजाते और बीज बोए थे एक तरफ; दूसरी तरफ, थोड़े पास, थोड़े दूर, कई तरह के बीज बोए थे। और बड़ी हैरानी की बात हुई कि जब उनमें से अंकुर आए तो वे सभी अंकुर रविशंकर के सितार की तरफ झुके हुए थे। वृक्ष बड़े हुए, लेकिन जैसे अपने कान को बहरा आदमी पास कर देता है सुनने के लिए, सभी पौधों ने अपने कान सितार पर लगा दिए थे। और दुगनी बढ़ती होती है। जो पौधा तीन महीने में बढ़ता, वह डेढ़ महीने में बढ़ जाता। और पौधे परम आनंदित होते। पौधा सिर्फ शरीर है। अभी उसका सब सोया हुआ है, बिल्कुल प्रसुप्त है। लेकिन शरीर भी ध्वनि से तरंगित होता है, आंदोलित होता है।
जब चारों तरफ से ओंकार तुम पर बरसने लगेगा, लौटने लगेगा, तुम्हारी ध्वनि वर्तुलाकार हो जाएगी, तुम पाओगे शरीर का रोआं-रोआं प्रसन्न हो रहा है; रोएं-रोएं से रोग झड़ रहा है; शांति, स्वास्थ्य प्रगाढ़ हो रहा है। तुम हैरान होकर पाओगे कि तुम्हारे शरीर की बहुत सी तकलीफें अपने आप खो गईं; क्योंकि यह बड़ा गहरा स्नान है और बड़ी गहराई तक इसकी पकड़ और पहुंच है। शरीर ध्वनि का ही जोड़ है। और ओंकार से अदभुत ध्वनि नहीं।
यह दस मिनट ओंकार का उच्चार जोर से, शरीर के माध्यम से। फिर आंख बंद कर लेना। ओंठ बंद कर लेना। जीभ तालू से लग जाए, इस तरह मुंह बंद कर लेना कि बिल्कुल बंद है, कोई जगह न बची; क्योंकि अब जीभ का उपयोग नहीं करना है, ओंठ का उपयोग नहीं करना है।
दूसरा कदम है, दस मिनट तक अब ओम का उच्चार करना भीतर मन में। अभी तक कक्ष था चारों तरफ, अब शरीर है चारों तरफ। अभी तक मकान के भीतर थे तुम, अब शरीर मकान है। दूसरे दस मिनट में अब तुम अपने भीतर मन में ही गुंजाना। ओंठ का, जीभ का, कंठ का कोई उपयोग न करना। सिर्फ मन मेंः ओम--ओम... । लेकिन गति वही रखना; तीव्रता वही रखना। जैसे तुमने कमरे को भर दिया था ओंकार से, ऐसे ही अब शरीर को भीतर से भर देना ओंकार से--कि शरीर के भीतर ही कंपन होने लगे, ओम दोहरने लगे पैर से लेकर सिर तक। और इतनी तेजी से यह ओम करना है, जितनी तेजी से तुम कर सको। और दो ओम के बीच जरा भी जगह मत छोड़ना। क्योंकि मन का एक नियम है कि वह एक साथ दो विचार नहीं कर सकता। एक साथ दो विचार असंभव हैं। तो अगर तुमने ओम इतने जोर से गुंजाया कि दो ओम के बीच में जरा सी भी संधि न बची, तो कोई विचार न आ सकेगा। अगर जरा सी संधि बची तो विचार आ जाएगा;

उसी संधि में से जगह बना लेगा। तो संधि मत छोड़ना; संधि-शून्य उच्चार। इसकी भी फिक्र न करना कि एक ओम पर दूसरा चढ़ा जा रहा है। जैसे कभी मालगाड़ी टकरा जाती है, एक डब्बे के ऊपर दूसरा डब्बा हो जाता है, ऐसा तुम ओम को एक-दूसरे के ऊपर हो जाने देना, जगह बीच में मत छोड़ना।
और ध्यान रखना, शरीर का उपयोग नहीं करना है इसमें। आंख इसीलिए अब बंद
कर ली। शरीर थिर है। मन में ही गूंज करनी है। शरीर से ही टकरा कर गूंज मन पर वापस गिरेगी, जैसे कमरे से टकरा कर शरीर पर गिर रही थी। उससे शरीर शुद्ध हुआ; इससे मन शुद्ध होगा। और जैसे-जैसे गूंज गहन होने लगेगी, तुम पाओगे कि मन विसर्जित होने लगा। एक गहन शांति, जैसी तुमने कभी नहीं जानी, उसका स्वाद मिलना शुरू हो जाएगा।
दस मिनट तक तुम भीतर गुंजार करना और दस मिनट के बाद गर्दन झुका लेना
कि तुम्हारी दाढ़ी छाती को छूने लगे। दो-चार दिन तकलीफ भी मालूम होगी गर्दन में, उसकी फिक्र मत करना, वह चली जाएगी। तीसरे चरण में दाढ़ी छूने लगे; जैसे गर्दन कट गई, उसमें कोई जान न रही। और अब तुम मन में भी गुंजार मत करना ओम का। अब तुम सुनने की कोशिश करना; जैसे ओंकार हो ही रहा है, तुम सिर्फ सुनने वाले हो, करने वाले नहीं। क्योंकि मन के बाहर तभी जा सकोगे, जब कर्ता छूट जाएगा। अब तुम साक्षी हो जाना। अब तुम गर्दन झुका कर यह कोशिश करना कि भीतर ओंकार चल रहा है, मैं उसे सुनूं।
गालिब का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः
दिल के आईने में है तस्वीरे-यार।
जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली।
वह गर्दन झुकाना जरूरी है। जैसे ही गर्दन झुकती है, दिल का आईना सामने
आ जाता है। और उस परम प्रिय की तस्वीर वहां है, प्रतिबिंब वहां है। लेकिन गर्दन झुकाना तुम्हें नहीं आता। तुम तो गर्दन अकड़ा कर चलते हो। जहां गर्दन झुकाने की बात आई, वहीं तुम और तन जाते हो। तुम अगर परमात्मा को खो रहे हो, तो सिर्फ एक अकड़ से कि तुम गर्दन झुकाने को राजी नहीं; समर्पण की तुम्हारी तैयारी नहीं। यह तो प्रतीक है गर्दन को लटका देना, जैसे कट गई, ताकि तुम झुक सको। और जैसे ही गर्दन झुकती है, भीतर देखना आसान हो जाता है। जैसे ही गर्दन झुकती है, विचार मुश्किल हो जाते हैं।
अब तुम सुनने की कोशिश करना। अभी तक तुम मंत्र का उच्चार कर रहे थे; अब तुम मंत्र के साक्षी बनने की कोशिश करना। और तुम चकित होओगे कि तुम पाओगे कि भीतर सूक्ष्म उच्चार चल रहा है। वह ओम जैसा है; ठीक ओम नहीं है, क्योंकि भाषा में उसे लाना कठिन है; ठीक ओम जैसा है। तुम अगर शांति से सुनोगे तो अब वह तुम्हें सुनाई पड़ेगा। शरीर से तुम हट गए। पहले मंत्र के प्रयोग ने तुम्हें शरीर से काट दिया। दूसरे मंत्र के प्रयोग ने तुम्हें मन से काट दिया। अब तीसरा मंत्र का प्रयोग साक्षी-भाव का है।
और इसलिए ओंकार से अदभुत कोई मंत्र नहीं है। ओम से अदभुत कोई मंत्र नहीं है। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध प्यारे हैं, लेकिन मन के बाहर न ले जा सकेंगे। क्योंकि उनकी प्रतिमा, उनका रूप है। ओम अरूप है। और बुद्ध, कृष्ण, जीसस, उनके साथ तुम्हारा लगाव है; भाव है, प्रेम है, आसक्ति है, मोह है। वह मन के बाहर न ले जाने देगा। ओम बिल्कुल अर्थहीन है। ओम बड़ा अनूठा है। इसमें कोई अर्थ नहीं है। न इसका कोई रूप है। न इसकी कोई प्रतिमा है। न इसकी कोई आकृति है। यह वर्णमाला का हिस्सा भी नहीं है। और यह निकटतम है उस ध्वनि के, जो भीतर सतत चल रही है, जो तुम्हारे जीवन का स्वभाव है। जैसे कि झरने कलकल का नाद करते हैं; उन्हें करना नहीं पड़ता, उनके बहने से ही कलकल नाद होता रहता है। जैसे हवा गुजरती है वृक्षों से तो एक सरसराहट की आवाज होती है; वह उसे करनी नहीं पड़ती, उसके गुजरने से और वृक्षों की टकराहट से हो जाती है। ऐसे ही तुम्हारा होना ही इस ढंग का है कि उसमें ओम गूंज रहा है। वह तुम्हारे होने की ध्वनि है--दि साउंड ऑफ योर बीइंग।
इसलिए ओम किसी धर्म की बपौती नहीं है। वह न हिंदुओं का है, न जैनों का,
न बौद्धों का, न मुसलमानों का, न ईसाइयों का। ओम अकेला मंत्र है जो गैर-सांप्रदायिक है, बाकी सब मंत्र सांप्रदायिक हैं। यह तुम चकित होओगे कि जैन भी ओम का उपयोग करते हैं, बौद्ध भी ओम का उपयोग करते हैं, ईसाई भी उपयोग करते हैं, मुसलमान भी। थोड़ा फर्क है। वे ओम की जगह आमीन का उपयोग करते हैं।

वह ओम का ही रूपांतरण है; वह ओम का ही भ्रष्ट रूप है। इस मुल्क से उन तक खबर पहुंचते-पहुंचते ओम आमीन हो गया। क्योंकि इसका संबंध सोच-विचार से नहीं है। यह तो जो लोग भी निस्सोच में डूब गए, उन्हें सुनाई पड़ा है।
तो दो चरण तो तुम मंत्र करोगे, तीसरे चरण में तुम मंत्र को सुनोगे; श्रावक बनोगे, साक्षी बनोगे। दो तक कर्ता रहोगे, क्योंकि शरीर और मन कर्तृत्व का हिस्सा है; और तीसरा चरण साक्षी-भाव का है। तो तीसरे चरण में तुम सिर्फ सुनना। शरीर कटा, मन कटा; तब तुम बच गए। प्याज के छिलके अलग हुए, अब सिर्फ शुद्ध अस्तित्व बचा। वही शिवत्व है।
और एक बार इसका स्वाद आ जाए, तो फिर तुम जल्दी-जल्दी जाने लगोगे। फिर स्वाद ही खींचने लगेगा। फिर स्वाद एक मैगनेट बन जाता है। और जिसमें हमें स्वाद आता है, उस तरफ हम सहज ही चले जाते हैं। कठिनाई तो वहीं होती है, जहां हमें स्वाद नहीं आता। तुम ध्यान लगाते हो, नहीं लगता, क्योंकि तुम्हें स्वाद नहीं आया अभी। पहला स्वाद आ जाए, उसके बाद कोई अड़चन न होगी। फिर तो मन वहां-वहां अपने आप पहुंच जाता है। जरा समय मिला, आंख बंद की--कि दिल के आईने में है तस्वीरे-यार। जब बाजार में, दुकान में, कहीं मौका मिला--जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली।
वह स्वाद एक दफा आ जाए, वही पहला कदम कठिन है। पहला कदम आधी मंजिल के बराबर है। एक दफा स्वाद आ जाए, फिर तो मन भौंरे की तरह वहीं-वहीं जाता है जहां रस है। मन की सहज वृत्ति है वहीं-वहीं जाने की जहां रस है। तुम्हें रस नहीं आया अभी, इसलिए तुम ठोंक-पीट करते हो बहुत, कि मन को धक्का दो कि ध्यान लगाओ, ईश्वर का स्मरण करो। और वह कहता है, चलो बाजार, क्यों समय खराब कर रहे हो? इतनी देर में कुछ कमा ही लेते! और फिर यह बाद में कर लेना, जल्दी भी क्या है? जब समय हो, तब कर लेना; अभी दुकान का समय है, दफ्तर का समय है।
मन तुम्हें वहां ले जाता है, जहां उसने रस पाया है। उसका भी कोई कसूर नहीं। एक बार तुम्हें रस आ जाए भीतर का, तुम पाओगे, मुश्किल हो जाता है बाहर आना। अभी भीतर जाना मुश्किल, तब बाहर आना मुश्किल हो जाता है। सारिपुत्त था बुद्ध का शिष्य, वह इस परम मंत्र की अवस्था को उपलब्ध हुआ। उसने भीतर का महामंत्र सुन लिया। जिस दिन उसने भीतर का महामंत्र सुना, बुद्ध ने कहा, अब तू जा और लोगों को शिक्षा दे। उसने कहा, अब मेरा जाने का कहीं मन नहीं होता। बुद्ध ने कहा, इसीलिए भेजता हूं। क्योंकि पहले तू बाहर पकड़ा हुआ था--वह भी बंधन था; अब कहीं तू भीतर न पकड़ जाए--वह भी बंधन है। जैसे बाहर से भीतर आने में कठिनाई थी, अब बाहर जाने में कठिनाई है। परम सिद्ध तो वही है, जिसकी कठिनाई खो गई। वह बाहर-भीतर ऐसे आता है जैसे हवा का झोंका आता-जाता है। न बाहर आने में कोई अड़चन है, न भीतर जाने में कोई अड़चन है। बाहर बाहर नहीं है अब, भीतर भीतर नहीं है; दोनों एक हो गए। तुम अपने घर के बाहर जैसी सरलता से आ जाते हो, जैसी सरलता से भीतर चले जाते हो, ऐसे ही यह जीवन तुम्हारा घर है, इसके बाहर और भीतर आने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए।
तो कुछ हैं, जो आसक्त हैं संसार से; फिर कुछ हैं, जो आसक्त हो जाते हैं आत्मा से। दोनों आसक्त हैं और दोनों बंधन में हैं; परम मोक्ष फलित नहीं हुआ। ज्ञानी वही है, जिसका अब कोई बंधन नहीं--न बाहर, न भीतर; जिसका प्रवाह सहज है।
मंत्र की यह प्रक्रिया--तीसरा चरण जितनी देर तुम रह सको, सम्हालना। पहला चरणः शांत बैठना। शांत के पहले भूमिकाः दस मिनट उछल-कूद, शरीर की सब बेचैनी को बाहर फेंक देना। क्योंकि शरीर में बेचैनी भरी रहती है। जब मैं यह कहता हूं तो यह एक वैज्ञानिक बात आपसे कह रहा हूं--शरीर में बेचैनी भरी रहती है।
जैसे तुम किसी को चांटा मारना चाहते हो, जब तुम चांटा मारना चाहते हो
तो तुम्हारी शरीर-ऊर्जा हाथ में आ जाती है। इसलिए कमजोर आदमी भी जब चांटा मारता है तो बहुत जोर से मारता है। तुम आशा नहीं कर सकते थे कि यह आदमी और इतने जोर का चांटा मारेगा। यह साधारण हाथ नहीं रहा; ऊर्जा हाथ में आ गई। लेकिन चांटा तुम नहीं मार पाते; हजार कारण हो सकते हैं। जिंदगी जटिल है! जिसको तुम चांटा मारने जा रहे हो, उससे कुछ स्वार्थ है, वह पूरा करना जरूरी है। तुम चांटे को रोक लेते हो। ऊर्जा के वापस लौटने का कोई उपाय नहीं है।

यह वैज्ञानिक शोध है, अत्यंत आधुनिक, कि शरीर से बाहर तो ऊर्जा के जाने का मार्ग है; बाहर गई ऊर्जा को भीतर लाने का कोई मार्ग नहीं है। तो जो ऊर्जा हाथ में आ गई, अब वह हाथ में रुकेगी, अगर तुमने चांटा नहीं मारा। चांटा किसको मारा, इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम हवा में ही चांटा मार दो, तो भी ऊर्जा का निष्कासन हो जाएगा। लेकिन ऊर्जा को भीतर लाने वाले स्नायु शरीर में नहीं हैं। वह वहीं अटकी रहेगी।
और इस तरह तुम बहुत सी ऊर्जा चौबीस घंटे में शरीर के अलग-अलग हिस्सों में अटका लेते हो। फिर तुम ध्यान को बैठे। वह सब अटकी ऊर्जा बाधा डालेगी। इसलिए तुम कहते हो, पैर में दर्द हो रहा है। कहीं चींटी चढ़ रही है। कहीं यह कमर में कुछ मालूम होता है। कहीं गर्दन में खुजलाहट आती है। यह सब काल्पनिक नहीं है। यह तुम कल्पना नहीं कर रहे हो। यह हो रहा है। क्योंकि कभी तुम खाली बैठे नहीं, कुछ न कुछ में लगे रहे, ऊर्जा संलग्न थी। अब तुम खाली बैठे, तो जहां-जहां ऊर्जा अटकी है, वहां-वहां बेचैनी, रेस्टलेसनेस पैदा होगी।
एक छोटे बच्चे को देखो। उसको कह दो कि बैठो शांत! तो वह आंख बंद करके बैठ जाएगा; लेकिन देखो, कितनी मुसीबत उठा रहा है, सिर्फ खाली बैठने में! हाथ को दबाएगा, पैर को दबाएगा, आंख बंद करेगा, मुंह रोकेगा; क्योंकि सब तरफ ऊर्जा का प्रवाह है। पैर भागना चाहते हैं। हाथ फैलना चाहते हैं। आंखें देखना चाहती हैं। कान सुनना चाहते हैं। उनकी पुरानी आदत है। वह ऊर्जा का पुराना प्रवाह का ढंग है।
इसलिए मैं सदा जोर देता हूं कि प्रत्येक ध्यान के पहले रेचन जरूरी है। रेचन तुम्हें सहयोगी होगा। दस मिनट दौड़ लो, कूद लो, उछल लो; सारी ऊर्जा जो जम गई है, उसे फेंक दो। फिर बैठ जाओ। जैसे तूफान के बाद शांति आ जाती है, ऐसे रेचन के बाद शरीर हलका हो जाता है, उसकी बेचैनी खो जाती है। पर वह भूमिका है, वह कोई चरण नहीं। वह मकान के बाहर की सीढ़ी है। मकान के भीतर असली यात्रा तो शुरू होती हैः दस मिनट ओंकार की ध्वनि शरीर से; दस मिनट ओंकार की ध्वनि मन से; दस मिनट ओंकार की ध्वनि तुम्हें नहीं करनी, वह अस्तित्व में हो ही रही है, तुम्हें सिर्फ सुननी है।
इसलिए मैं कहता हूं--राम, कृष्ण, बुद्ध उतने ठीक नहीं होंगे; दूसरे चरण
तक तो ले जाएंगे, तीसरे चरण तक नहीं ले जाएंगे। क्योंकि तीसरे चरण में जो ध्वनि हो रही है, वह ओम की है। लेकिन कभी-कभी राम से भी कोई तीसरे चरण में पहुंच जाता है। वह वैसा ही जैसा कभी तुम ट्रेन में चलते हो, रेलगाड़ी आवाज करती हैः छक-छक, छक-छक। उसमें तुम कोई भी चीज सोचना चाहो तो सोच सकते हो। तुम अगर सोचना चाहो--अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह। धीरे-धीरे तुमको लगने लगेगा कि वह छक-छक नहीं है, अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह हो रहा है। या राम, राम, राम; तो राम-राम हो रहा है। लेकिन हो सिर्फ छक-छक, छक-छक रहा है।
ओम शुद्ध ध्वनि है। अगर तुम राम को ही पकड़ कर चलोगे तो तुम्हें राम भी सुनाई पड़ने लगेगा वहां, लेकिन वह आरोपण है। और आरोपण का अर्थ है--मन थोड़ा जिंदा है।
हम वही जानना चाहते हैं, जो है। हम वही देखना चाहते हैं, जो है। हम मन
को उसके ऊपर थोपना नहीं चाहते, रंग नहीं देना चाहते। इसलिए मंत्र, महा मंत्र तो ओंकार है। बाकी सब मंत्र छोटे-छोटे हैं; दूसरे तक ले जा सकते हैं, तीसरे में बाधा डालेंगे। कोई जरूरत नहीं है।
तुम ओम का प्रयोग करना। और इस भांति जैसा मैंने कहा। तीन महीने तुम चिंता मत करना कि क्या परिणाम आ रहे हैं। तुम परिणाम का विचार ही मत करना। तुम सिर्फ किए जाना। तुम सोचना ही मत कि कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा, अभी तक हुआ कि नहीं। तुम तीन महीने तक सोचना ही मत। तुम एक तारीख तय कर लेना कि तीन महीने, फलां तारीख को लौट कर सोचेंगे कि कुछ हुआ कि नहीं; तब तक नहीं सोचेंगे फल को। अगर तुमने इतना साहस रखा... और यह साहस वैसा ही है जैसा छोटे बच्चे कभी-कभी आम की गोई बो देते हैं, आधी घड़ी बाद जाकर फिर निकाल कर देखते हैं कि अभी तक अंकुर आया कि नहीं। फिर गड़ा आते हैं उदासी में कि अभी तक कुछ नहीं हुआ। फिर घड़ी भर बाद पहुंच जाते हैं, फिर उखाड़ कर देख लेते हैं। यह अंकुर कभी आएगा ही नहीं। क्योंकि अंकुर आने के लिए जरूरी है एक समय की सीमा कि गोई अंधकार में दबी रहे, पृथ्वी में गड़ी रहे।

तुम्हारा ध्यान भी फल नहीं ला पाता; क्योंकि तुम बार-बार गोई को उखाड़-उखाड़ कर देखते हो--कुछ हुआ कि नहीं? वह हृदय में पहुंच ही नहीं पाता, उसके पहले तुम निकाल कर देख लेते हो।
जीसस ने कहा है, तुम्हारा दायां हाथ क्या करता है, तुम्हारे बाएं हाथ
को पता न चले।
मंत्र को ऐसा गड़ा दो भीतर। उसको उखाड़-उखाड़ कर मत देखो; वह बीज है।
इसलिए मंत्र को हमने बीज कहा है। बीज का अर्थ है कि उसको उखाड़-उखाड़ कर मत देखना। उसका समय है। वह अपने समय से ही फूटेगा, तुम्हारी जल्दबाजी से नहीं। तुम्हारी जल्दबाजी से उलटा ही परिणाम होगा कि शायद वह कभी न फूटे।
इस महामंत्र को इस समाधि शिविर से अपने साथ ले जाएं और प्रयोग करें।
तीन महीने धैर्य से किया तो बड़े मीठे रस से भर जाएंगे; जिसको कबीर ने गूंगे का गुड़ कहा है। और एक बार वह गुड़ स्वाद में आ जाए, फिर कोई कठिनाई नहीं है।
फिर तुम जहां हो, ठीक हो; तुम जो कर रहे हो, ठीक हो। फिर संसार स्वप्नवत हो जाता है। जीवन एक अभिनय से ज्यादा नहीं रह जाता। तुम साक्षी हो जाते हो।
तुम्हारा साक्षित्व ही शिवत्व है।
अब हम सूत्रों को लें।
"सुख-दुख बाह्य वृत्तियां हैं, ऐसा सतत जानता है।"
वह जो शिवत्व को उपलब्ध हुआ, ऐसा सतत जानता है कि सुख-दुख बाह्य वृत्तियां हैं।
सुख भी बाहर घटता है, दुख भी बाहर घटता है; दोनों में से कोई भी तुम्हारे भीतर नहीं पहुंचता। लेकिन तुम दोनों से परेशान हो जाते हो। सुख को भी तुम पकड़ लेते हो और तादात्म्य कर लेते हो और समझते हो मैं सुखी हूं। बस तुमने दुख पैदा किया! अब देर नहीं है। यहीं से दुख शुरू हो गया। जैसे ही तुमने कहा--मैं सुखी हूं, तुमने दुख के बीज बो दिए। अब ज्यादा देर न लगेगी, जल्दी ही दुख आ जाएगा। क्योंकि दुख का अर्थ है--वृत्तियों के साथ एक हो जाना। फिर जब दुख आएगा, तब तुम दुख के साथ एक हो जाओगे।
तुम्हारी तकलीफ यह है कि जो भी सामने आता है, तुम उसी के साथ एक हो जाते हो; जो भी दिखाई पड़ता है, उसमें तुम देखने वाले नहीं रह जाते, भोक्ता हो जाते हो। दुख आया तो रोते हो, छाती पीटते हो; सुख आया तो नाचने-कूदने लगते हो।
सुख भी बाहर से आता है, दुख भी बाहर से आता है; और तुम्हारे भीतर जाने
का कोई उपाय नहीं। लेकिन तुम ही अपने हाथ से सुख-दुख के साथ जुड़ कर सुख-दुख भोग लेते हो। जैसे ही कोई व्यक्ति मन के पार गया, उसे फिर दिखाई पड़ेगा कि यह सब मंदिर के बाहर ही हो रहा है, भीतर कुछ आता नहीं।
"सुख-दुख बाह्य वृत्तियां हैं, ऐसा सतत जानता है।"
सतत शब्द महत्वपूर्ण है। ऐसा कभी-कभी तो तुम भी जानते हो। और अक्सर जब दूसरे को समझाना हो, तब तो तुम पक्का ही जानते हो। तुम जितने बुद्धिमान दूसरों के लिए हो, काश उतने ही अपने लिए होते! जितनी समझ सलाह में तुम लगाते हो, उतनी समझ काश तुमने अपनी जीवन-यात्रा में लगाई होती!
क्या कारण है, दूसरे के लिए तुम इतने समझदार क्यों होते हो? कोई आदमी दुख में है तो तुम कहते हो, क्यों परेशान हो रहे हो! यह सब चलता रहता है; संसार है! अपने को जरा दूर रखो। और यही दुख तुम पर आएगा, तो बड़े मजे की बात है, हो सकता है यही आदमी, जिसको तुम सलाह दे रहे हो, वह तुम्हें सलाह दे कि भाई, सुख-दुख तो बाहर की वृत्तियां हैं। बात क्या है? कारण क्या है? कारण यह है कि जब दूसरे पर दुख आता है, तब तुम साक्षी हो। इसलिए ज्ञान उत्पन्न होता है। दूसरे पर दुख आ रहा है, तुम पर तो आ नहीं रहा। तुम सिर्फ देखने वाले हो। इतने ही देखने वाले जब तुम अपने दुख के लिए हो जाओगे, तब इतना ही ज्ञान तुम्हें अपने प्रति भी बना रहेगा। तुमने अभी अपना ज्ञान बांटा है। मुल्ला नसरुद्दीन एक मनोचिकित्सक के पास गया और उसने कहा कि मेरी पत्नी की हालत अब खराब है, कुछ आपको करना ही पड़ेगा। मनोचिकित्सक ने अध्ययन किया पत्नी का कुछ सप्ताह तक और कहा कि इसका मस्तिष्क तो बिल्कुल खत्म हो गया है। नसरुद्दीन ने कहा, वह मुझे पता था। रोज मुझे बांटती थी, मुझे देती थी। आखिर हर चीज खत्म हो जाती है। रोज थोड़ा-थोड़ा करके अपनी बुद्धि मुझे देती रही, खत्म हो गई।

तुम दूसरों को तो बुद्धि बांट रहे हो; लेकिन उसी बुद्धि का प्रयोग तुम अपने पर ही नहीं कर पाते।
अब जब दुबारा तुम्हारे जीवन में सुख आए तो तुम ऐसे देखना जैसे किसी और
के जीवन में आया है। तुम जरा दूर खड़े होकर देखने की कोशिश करना। जरा फासला चाहिए। थोड़ा सा भी फासला काफी फासला हो जाता है। बिल्कुल सट कर मत खड़े हो जाओ अपने से। तुम अपने पड़ोसी हो। इतने सट कर मत खड़े हो जाओ।
नसरुद्दीन से मैंने पूछा यह कि जो रास्ते के किनारे पर होटल है, उस होटल का मालिक कहता है कि तुम्हारा बहुत सगा-संबंधी है, बहुत निकट का है। नसरुद्दीन ने कहा, गलत कहता है। नाता है, लेकिन बहुत दूर का। बड़ा फासला है। मैंने पूछा, क्या नाता है? तो नसरुद्दीन ने कहा कि हम एक ही बाप के बारह बेटे हैं। वह पहला है, मैं बारहवां हूं। बड़ा फासला है।
तुम अपने पड़ोसी हो, फासला काफी है। ज्यादा सट कर मत खड़े होओ। जरा दूरी रखो। दूरी के बिना परिप्रेक्ष्य खो जाता है, पर्सपेक्टिव खो जाता है। कोई भी चीज देखनी हो तो थोड़ा सा फासला चाहिए। तुम अगर बिल्कुल फूल पर आंखें रख दो, तो क्या खाक दिखाई पड़ेगा! कि तुम दर्पण में बिल्कुल सिर लगा दो, तो कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। थोड़ी दूरी चाहिए।
अपने से थोड़ी दूरी ही सारी साधना है। जैसे-जैसे दूरी बढ़ती है, तुम हैरान होकर देखोगे कि तुम व्यर्थ ही परेशान थे। जो घटनाएं तुम पर कभी घटी ही न थीं, तुमसे बाहर घट रही थीं, सिर्फ करीब खड़े होने के कारण प्रतिबिंब तुममें पड़ता था, छाया तुम पर पड़ती थी, ध्वनि तुम तक आ जाती थी, उसी प्रतिध्वनि को तुम अपनी समझ लेते थे और परेशान होते थे।
एक मकान में आग लगी थी और मकान का मालिक स्वभावतः छाती पीट कर रो रहा था। लेकिन एक आदमी ने कहा, तुम नाहक परेशान हो रहे हो; क्योंकि मुझे पता है, तुम्हारे लड़के ने कल यह मकान बेच दिया है। उसने कहा, क्या कहा!
यह लड़का गांव के बाहर गया था। रोना खो गया। मकान में अब भी आग लगी है।
वह बढ़ गई है बल्कि पहले से। लपटें उठ रही हैं, सब जल रहा है। लेकिन अब यह आदमी इस मकान से फासले पर हो गया। अब यह मकान मालिक नहीं है।
तभी लड़का भागता हुआ आया। और उसने कहा, क्या हुआ? यह मकान जल रहा है? सौदा तो हो गया था, लेकिन पैसे अभी मिले नहीं थे। अब जले के कौन पैसे देगा? फिर बाप छाती पीटने लगा। मकान वहीं का वहीं है। उसमें कोई फर्क नहीं
पड़ रहा है। मकान को पता ही नहीं कि यहां सुख हो गया, दुख हो गया। और फिर फर्क हो सकता है! अगर वह आदमी आकर कह दे कि कोई बात नहीं, मैं वचन का आदमी हूं; जल गया, जल गया; खरीद लिया, खरीद लिया; पैसे दूंगा। फिर बात बदल गई।
सब बाहर हो रहा है। और तुम इतने करीब सट कर खड़े हो जाते हो, उससे कठिनाई होती है। थोड़ा फासला बनाओ। जब सुख आए, तो थोड़ा दूर खड़े होकर देखना। जब दुख आए, तब भी दूर खड़े होकर देखना। और सुख से शुरू करना, ध्यान रहे। दुख से शुरू मत करना।
हममें से अक्सर लोग, जब दुख होता है, तब दूर होने की कोशिश करते हैं।
तब सफल न हो पाओगे। वह जरा कठिन मार्ग है। जब सुख होता है तब दूर होने की कोशिश करना। क्योंकि दुख से तो सभी दूर होना चाहते हैं, वह बिल्कुल सामान्य मन की वृत्ति है। सुख से कोई दूर नहीं होना चाहता। इसलिए दुख से दूर होने की तुम कोशिश मत करना; क्योंकि वह तो तुम सदा से कर रहे हो। उससे कुछ फल नहीं हुआ। उलटे चलना होगा। जैसी तुमने यात्रा की है, उससे तो तुम भटकते ही चले गए हो। अब वापस लौटना होगा। प्रतिक्रमण करना होगा।
इसको महावीर प्रतिक्रमण कहते हैं, पतंजलि ने प्रत्याहार कहा है। वापस लौटना होगा--रिटर्निंग बैक टु दि सोर्स। थोड़े कदम वापस लौट आओ। सुख जब आए तब जरा दूर खड़े होकर देखो। मत धड़कने दो हृदय को जोर से। मत नाचो। इतना ही जानो कि आया है, यह भी चला जाएगा। रुकने वाला नहीं; कुछ रुकता नहीं। लहर है हवा की, आई और गई। तुम जान भी न पाए कि चली गई। बस दूर खड़े होकर साक्षी-भाव से देखते रहो।
क्या होगा? डर क्या है? सुख को हम देखते क्यों नहीं साक्षी-भाव से? साक्षी-भाव से न देखने के पीछे कारण है; क्योंकि साक्षी-भाव से देखा कि सुख सुख न रह जाएगा। वह सुख था ही, जितने तुम करीब थे। जितने तुम भूले थे, उतना

ही सुख था। जितनी याद की, उतना ही कुछ न रह जाएगा। इसलिए कोई आदमी सुख का साक्षी नहीं होना चाहता। पर वहीं से यात्रा है।
सुख आए, साक्षी-भाव से देखना। देखते-देखते ही तुम पाओगेः सुख खो गया, तुम रह गए। और अगर तुम सुख में सफल हो गए, फिर तुम दुख में सफल हो जाओगे। कुंजी तुम्हारे हाथ में है। फिर दुख आए, तुम दूर से खड़े होकर देखना। और दूर खड़े हो सकते हो; क्योंकि शरीर और तुम दूर हो। इससे बड़ी दूरी किन्हीं दो चीजों के बीच नहीं हो सकती। चेतना और पदार्थ की दूरी से बड़ी दूरी और क्या हो सकती है! चांद-तारे भी इतने दूर नहीं हैं एक-दूसरे से, जितना तुम अपने शरीर से दूर हो। एक जड़ है, एक चेतन है। एक मिट्टी से बना है--मृण्मय है; एक चैतन्य से बना है--चिन्मय है। बड़ा फासला है। इससे ज्यादा विपरीत छोर नहीं मिल सकते।
सुख से शुरू करो, दुख तक ले जाओ। और एक ही बात स्मरण रखो कि तुम बाहर हो।
सुख-दुख बाह्य वृत्तियां हैं, ऐसा तुम्हें साधना पड़ेगा; लेकिन बार-बार खो-खो जाएगा। यह सतत नहीं हो सकता। सतत तो तभी होगा, जब तुम आत्मा में थिर हो जाओगे; जब मंत्र सफल हो जाएगा, मन कट जाएगा। लेकिन तब तक जितनी देर बने, साधना। जितनी देर अभ्यास कर सको, करना। उससे रास्ता साफ होगा। उससे भला बीज न बोए जाएं, लेकिन जमीन साफ होगी। बीज बोने के वक्त कम से कम तैयार जमीन तुम पाओगे। यह बार-बार खो जाएगा, यह सतत नहीं रह सकता। जरा ही तुम होश गंवाओगे कि फिर सुख पकड़ लेगा, दुख पकड़ लेगा।
सुख-दुख बाह्य वृत्तियां हैं, शिवत्व को उपलब्ध योगी ऐसा सतत जानता है। सतत का अर्थ है, एक भी क्षण को व्यवधान नहीं पड़ता। सतत तो वही चीज हो सकती है जो तुम्हारा स्वभाव हो। जो तुम्हारा स्वभाव नहीं, वह सतत नहीं हो सकता। तुम कितनी देर क्रोध कर सकते हो?
बोधिधर्म गया चीन। चीन के सम्राट ने उससे कहा कि मेरे मन में बड़ा क्रोध आता है, मैं क्या करूं? तो बोधिधर्म ने कहा, तुमको अगर क्रोध करना पड़े तो तुम कितनी देर कर सकते हो? उसने कहा, कितनी देर! यह भी कोई सवाल है? घड़ी, आधा घड़ी ज्यादा से ज्यादा। तो बोधिधर्म ने कहा, जो घड़ी, आधा घड़ी किया जा सके, वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। चौबीस घंटे कर सकते हो? सतत कर सकते हो? उस सम्राट ने कहा, हम घड़ी, दो घड़ी करके परेशान हो रहे हैं! और यह हम पूछने आए भी नहीं कि सतत कैसे करें। बोधिधर्म ने कहा, यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि जो तुम सतत कर सको, वही स्वभाव है। इसमें परेशान क्यों हो रहे हो? क्या है जो तुम सतत कर सकते हो? इसे थोड़ा सोचना। तुम सुखी भी सतत नहीं
रह सकते हो। यह तुम्हें बहुत कठिन मालूम पड़ेगा समझ में आना; लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, तुम सुखी सतत नहीं रह सकते हो। थोड़ी देर सोचो, कितनी देर सुखी रह पाते हो? कुछ भी हो जाए, थोड़ी देर में सुख खोने लगता है, तुम दुखी होने लगते हो। अगर कुछ भी न हो तो तुम सुख से ही ऊब जाओगे। महल हो, अच्छा भोजन हो, पत्नी हो, सब हो; कोई दुख-दुविधा न हो, कोई अड़चन न हो; क्या करोगे? कितनी देर सुखी रहोगे? घड़ी, दो घड़ी में तुम ऊब जाओगे। स्वाद बदलना चाहोगे। अक्सर ऐसा होता है, सुंदरतम पत्नी वाला व्यक्ति भी साधारण नौकरानी के प्रेम में पड़ जाता है। दूसरों को हैरानी होती है; क्योंकि दूसरे साक्षी हैं कि यह क्या हो रहा है। ऐसी सुंदर स्त्री जो कि खोजनी मुश्किल है, उसको छोड़ कर एक बदशक्ल नौकरानी! क्या हो गया इस आदमी को?
स्वाद बदल रहा है। ऊब गया! सौंदर्य भी उबा देता है। एक सुंदर स्त्री
को भी कब तक देखते रहोगे! थोड़ी देर में सिर पीटने लगोगे। अच्छे से अच्छा गीत भी कितनी बार सुनोगे! सिर घूमने लगेगा। कहोगे कि अब बंद करो। अगर फिर भी गीत बजता ही जाए, तो नारकीय हो जाएगा।
मन किसी चीज को सतत सह ही नहीं सकता। सुख को भी नहीं सह सकता। इसलिए जब
भी सुख होता है, तत्क्षण मन दुख पैदा करता है। उससे स्वाद बदलता है। फिर तुम तैयार हो जाते हो सुख झेलने के लिए। तुम शांत भी नहीं बैठ सकते हो थोड़ी देर; मन जल्दी ही अशांति पैदा कर लेगा; क्योंकि शांति भी उबाने लगती है। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि मैं मोक्ष जाना पसंद न करूंगा; क्योंकि मैंने सुना है कि मोक्ष में सिद्धशिला पर लोग बैठे हुए हैं अनंत काल से। कुछ करने को भी नहीं है वहां; क्योंकि करने का मतलब संसार। महावीर स्वामी

क्या करते होंगे? बैठे हैं सिद्धशिला पर। कितने दिन से बैठे हैं! और कब तक बैठना है, इसका कोई अंत भी नहीं है। और काम भी नहीं है। अखबार भी नहीं छपते वहां कि सुबह से बैठ कर पढ़ो। कोई खबर ही वहां नहीं घटती; क्योंकि खबरें तो गलत जगह घटती हैं। नर्क में बहुत घटती हैं। यहां से भी ज्यादा घटती हैं। वहां दिन में कम से कम दस-बारह एडिशन अखबार के निकालने पड़ते होंगे। क्योंकि वहां घटता ही रहता है; मार-पीट, काट चलती ही रहती है। स्वर्ग में कुछ घट ही नहीं रहा; सब अपनी-अपनी सिद्धशिला पर बैठे हैं।
बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है, इससे मन ऐसा घबड़ाता है कि इससे तो नर्क बेहतर है।
मन ठीक कह रहा है। लेकिन बर्ट्रेंड रसेल को पता नहीं कि मन जब तक हो,
तब तक कोई मोक्ष नहीं जाता। मन तो यहीं छूट जाता है जो बदलाहट मांगता है। मोक्ष तो वही जाता है जिसका मन न रहा। मोक्ष तो वही जाता है जो सतत है। तुम्हारे भीतर सतत तुम क्या झेल सकोगे? न तो सुख तुम सतत झेल सकते हो, क्योंकि उससे भी उत्तेजना होती है; न तुम दुख सतत झेल सकते हो, क्योंकि उससे भी उत्तेजना होती है। तुम सिर्फ शांत हो सकते हो सतत; क्योंकि वह उत्तेजना की अवस्था नहीं है। वह दोनों के ठीक मध्य में और दोनों के पार है।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर मेहमान था। उसका बेटा खाना खा रहा था। पहले वह बाएं हाथ से खा रहा था, फिर थोड़ी देर में उसने दाएं हाथ से खाना शुरू कर दिया। मैं थोड़ा चौंका। फिर मैंने देखा कि उसने फिर बाएं हाथ से शुरू कर दिया। नसरुद्दीन ने कहा, हजार बार तुझसे कहा लड़के कि दाएं हाथ से खाना खा! बाएं हाथ से मत खा! लड़के ने कहा, क्या फर्क पड़ता है; मुंह बिल्कुल दोनों के बीच में है--चाहे इधर से खाओ, कि उधर से खाओ। यात्रा बराबर करनी पड़ती है। मुंह बिल्कुल मध्य में है।
सुख और दुख के मध्य में खोजना किसी बिंदु को, वही सतत हो सकता है। ठीक मध्य में संतुलन है, सम्यकत्व है। वहां न यह अति है, न वह अति है। जैसे तराजू होता है, वह जो मध्य में कांटा है बीच में थिर--वही तुम हो सकते हो। इस पर वजन पड़ा, थोड़ी देर में थक जाओगे, दूसरी तरफ वजन डालना पड़ेगा। जैसे लोग मरघट ले जाते हैं अरथी को रख कर कंधे पर; रास्ते में कंधा बदलते हैं। एक कंधा दुखने लगता है, दूसरे पर रख लेते हैं। कुछ वजन कम नहीं होता, लेकिन कंधा बदलने से राहत मिलती है। फिर थोड़ी देर में यह कंधा दुखने लगता है, दूसरे पर रख लेते हैं।
सुख-दुख तुम्हारे कंधे हैं और कर्ता का भाव तुम्हारी अरथी है जिसको तुम बदलते रहते हो। कभी सुख के साथ जुड़ जाते हो, कभी दुख के साथ जुड़ जाते हो। साक्षी बनो! मध्य में ठहर जाओ। तब तुम सतत रह पाओगे। बुद्धत्व सतत रह सकता है, क्योंकि वह शांत अवस्था है। वहां आनंद तो है, लेकिन वह आनंद सूरज की प्रगाढ़ किरणों की भांति नहीं, चांद की शांत किरणों की भांति है। वहां आनंद तो है, लेकिन जलती हुई अग्नि की भांति नहीं, शांत आलोक की भांति। उसमें कोई तनाव नहीं है। उसमें कोई बेचैनी नहीं है।
तुमने ख्याल किया कि सुखी आदमी अक्सर हार्ट फेल से मर जाते हैं। कभी बहुत सुख जा आए, लाटरी एकदम से मिल जाए--न मिले तो मुसीबत, मिल जाए तो मुसीबत--एकदम से लाटरी मिल जाए कि तुम गए।
मैंने सुना है, एक आदमी को लाटरी मिल गई दस लाख रुपये की। पत्नी को खबर मिली। पत्नी बहुत घबड़ाई; क्योंकि वह अपने पति को जानती है, दस पैसे मिल जाएं तो हार्ट फेल हो जाए। दस लाख रुपये! पति बाहर थे। वह भागी पड़ोस में गई। एक मंदिर के पुजारी को उसने पकड़ा, क्योंकि वह उसको ज्ञानी समझती थी। उसने कहा, भैया, कुछ मेरी सहायता कर। पति घर आएं, उसके पहले कुछ जमाओ। दस लाख रुपये की लाटरी मिल गई है! उसने कहा, मत घबड़ा। ढंग से हम समझा लेंगे। मात्रा-मात्रा में काम करना पड़ेगा। आने दे पति को, मैं आता हूं।
पुजारी जाकर बैठ गया। पति आया। तो पुजारी ने सोचा कि दस लाख बहुत ज्यादा हो जाएगा, एक लाख से शुरू करें। धीरे-धीरे चोट करने से ठीक रहेगा। तो उसने कहा, सुनो, एक लाख रुपये लाटरी में मिल गया! वह आदमी बोला, सच! अगर एक लाख मिला, पचास हजार तुम्हारे मंदिर को दान। वह पुजारी का वहीं हार्ट फेल हो गया। उसने कभी सोचा ही नहीं था--पचास हजार!

सुख भी मार डालता है। दुख तो मारता ही है, सुख भी मार डालता है; क्योंकि दोनों में एक उत्तेजना है। और जहां उत्तेजना है वहां चीजें टूट जाती हैं। सतत तो वही रह सकता है जो तुम्हारा अनुत्तेजित स्वभाव है। जिसे साधना न पड़े, वही सतत रह सकता है। जो सदा बिना साधे तुम्हारे भीतर है, वही सतत रह सकता है। जिसे तुम छोड़ भी नहीं सकते, वही सतत रह सकता है।
इसलिए सारे धर्म की खोज स्वभाव की खोज है। स्वभाव की खोज धर्म है; क्योंकि वह शाश्वत है। उससे तुम कभी न ऊबोगे; क्योंकि वह तुम ही हो। उससे अलग होने का उपाय ही नहीं है। उसके पार खड़े होकर देखने का उपाय नहीं है। जिससे भी तुम दूर खड़े होकर देख सकते हो, उससे तुम ऊब जाओगे; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है।
मंत्र जब मन को मार डालेगा, मंत्र के द्वारा मन जब आत्महत्या कर लेगा,
तब तुम्हारे भीतर उस सतत झरने का प्रवाह शुरू होगा। और जैसे ही यह सतत झरना पैदा होता है, और सुख-दुख बाह्य वृत्तियों से विमुक्त, वह केवली हो जाता है। तब वह अकेला है। और वह अपने अकेले धुन में मस्त है। अब उसे कुछ भी न चाहिए। अब सब चाह मर गई। क्योंकि सुख भी बाहर है, दुख भी बाहर है। अब न तो वह सुख की चाह करता है, न दुख से बचने की चाह करता है। जो बाहर है, उससे उसका संबंध ही छूट गया। अब तो वह अपने भीतर थिर है। और भीतर सतत आनंदित है, इसलिए चाह का कोई सवाल नहीं। अब वह सतत अपनी चेतना में रमता है। उसका सच्चिदानंद अब निरंतर चलता रहता है। वह उसकी श्वास-श्वास में, होने के कण-कण में व्याप्त है।
"और उनसे विमुक्त, वह केवली हो जाता है।"
"उस कैवल्य अवस्था में आरूढ़ हुए योगी का अभिलाषा-शून्यता के कारण जन्म-मरण का पूर्ण क्षय हो जाता है।"
फिर न कोई जन्म है, न फिर कोई मरण है। जन्म और मरण सुख की खोज की यात्रा में हैं। हम चाहते हैं सुख। सुख मिल सकता है केवल शरीर से, तो शरीर ग्रहण करना पड़ता है। जैसा सुख हम चाहते हैं, वैसा शरीर हम ग्रहण कर लेते हैं। फिर सुख की आकांक्षा मरते क्षण भी बनी रहती है। मरते जाते हैं, लेकिन सुख की आकांक्षा बनी रहती है। वही आकांक्षा बीज बन जाती है नये जन्म का।
जब एक वृक्ष मरने लगता है, तो क्या करता है? मरने के पहले वृक्ष अपनी सारी जीवन-ऊर्जा को इकट्ठा करके बीज में संगृहीत कर देता है। बीज उस वृक्ष की आकांक्षा है कि मैं फिर भी रहूंगा। और बीज बड़ी अदभुत घटना है! क्योंकि वृक्ष इतना बड़ा है, लेकिन अपने सार-संचय को वह निचोड़ कर बीज में रख देता है। और उस बीज को यात्रा पर भेज देता है। यह वृक्ष तो मर जाएगा, यह देह तो गिरेगी, लेकिन नयी देह का उसने इंतजाम कर लिया। और इसलिए तुम देखो, एक वृक्ष एक बीज से पैदा होता है। लेकिन मरते वक्त, मरने के पहले, एक वृक्ष करोड़ों बीज छोड़ जाता है। क्योंकि क्या भरोसा एक बीज न पहुंच पाए ठीक भूमि तक! पत्थर पर गिर जाए! पानी न मिले! जानवर खा जाएं! कोई रौंद डाले! इतना खतरा वृक्ष मोल नहीं ले सकता। एक के साथ तो खतरा रहेगा, बचे न बचे। इसलिए करोड़ बीज पैदा करता है। और हजार उपायों से बीज को ऐसी जगह भेजता है जहां उसको ठीक भूमि मिल जाए।
तुम देखो! सेमर का फूल देखा? सेमर के वृक्ष की एक खूबी है कि उसके नीचे कोई पौधा पैदा नहीं हो सकता। इसलिए सेमर अपने बीज में रुई लगा देता है, ताकि कोई बीज नीचे न गिर पाए। क्योंकि नीचे गिरा तो मर जाएगा। तुम यह मत समझना कि रुई तुम्हारे गद्दे-तकियों में भरने के लिए सेमर लगाता है। रुई लगाता है सेमर अपने बीज को पंख देने के लिए, ताकि हवा के झोंकों में वह दूर चला जाए। एक बात पक्की कर लेता है कि नीचे न गिर पाए बस, कहीं भी गिरे, यहां न गिर पाए; क्योंकि नीचे सेमर के कोई वृक्ष पैदा न होगा। सेमर सारे पानी को चूस लेता है।

बड़े वृक्ष के नीचे पैदा होना मुश्किल भी है। इसलिए सभी वृक्ष अपनी- अपनी तरकीबें खोजते हैं। तुम इनको इतना आसान मत समझना। वे सब काफी कुशल और चालाक हैं। तुम उनको सीधा-सादा मत समझना! संसार में कोई सीधा-सादा हो ही नहीं सकता। सीधा-सादा हुआ कि मोक्ष! यहां तो तिरछा ही हो सकता है। तिरछा होना यहां होने की शर्त है। वही यहां योग्यता है। तो वृक्ष हजार... अगर तुम

वृक्षों के संबंध में अध्ययन करो, तुम चकित हो जाओगे कि कैसी-कैसी तरकीबें वृक्ष खोजते हैं! तितलियों के सहारे; तितलियों को आकर्षित करते हैं। तितलियां सोचती होंगी कि शायद यह जो मधुर रस बह रहा है वृक्ष में, उनके लिए है। वे भ्रांति में हैं। उनको केवल रिश्वत दी जा रही है। वृक्ष उनके पैरों में, पंखों में अपने बीज को लगा कर भेज रहा है। हजार तरकीबें वृक्ष करेगा बचने की। और जब वृक्ष इतनी तरकीबें करता है, तुम कितनी न करते होओगे! तुम्हारी चालाकी का तो कोई अंत नहीं।
एक मनुष्य, एक पुरुष, अगर उसके पूरे वीर्यकणों का उपयोग करे, तो इस पूरी पृथ्वी पर जितनी जनसंख्या है, एक पुरुष पैदा कर सकता है। एक साधारण पुरुष अपने जीवन में--साधारण, न ब्रह्मचारी, न व्यभिचारी, दोनों के मध्य में जो साधारण है--वह कम से कम चार हजार बार संभोग करता है। एक संभोग में कोई दस करोड़ जीवाणु, दस करोड़ बीज, एक संभोग में स्खलित होते हैं। अगर उसके सभी बीज सफल हो जाएं--जो कि किसी दिन हो सकता है; अब तक तो नहीं हो सकता था, क्योंकि स्त्री की सीमा है, क्षमता है, उसको नौ महीने लगेंगे एक बीज पके। तो एक स्त्री बहुत से बहुत बारह, पंद्रह, बहुत से बहुत चौबीस बच्चे पैदा कर सकती है। इसलिए सीमा है। इसलिए सम्राट हजारों रानियां रख लेते थे, ताकि वह सीमा तोड़ दी जाए।
लेकिन अब वैज्ञानिक उपायों से यह संभव हो गया है कि हम एक ही व्यक्ति
के वीर्यकणों को सारी स्त्रियों को दुनिया में दे दें, इंजेक्ट कर दें। इस बात की बहुत संभावना है। क्योंकि वैज्ञानिक जब सुझाव देते हैं, उनके सुझाव कितने ही खतरनाक हों, थोड़े-बहुत दिनों में स्वीकृत हो जाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, सभी लोगों को बच्चे पैदा करने का हक नहीं होना चाहिए। आइंस्टीन जैसा कोई आदमी, जिसके पास ऐसी प्रतिभा है, उसके बीज का उपयोग करो। ठीक है! जब बागवानी में तुम इतनी कुशलता बताते हो कि बीज चुनते हो, तो आदमी की बागवानी में क्यों न बीज चुनो! बागवान देखता है, अच्छे से अच्छा बीज खोज कर लाता है। हर कुछ रद्दी नहीं बो देता।
तो आज नहीं कल, दुनिया में सभी लोगों को बच्चे पैदा करने का हक नहीं रह जाने वाला। थोड़े से लोग, जिनको वैज्ञानिक तय करेंगे--स्वास्थ्य में, बुद्धि में, प्रतिभा में, उम्र में--उनका बीज उपयोग में लाया जाएगा। और उसके पैकेट मिल सकेंगे। उसको तुम ले आ सकते हो। तब एक ही आदमी पूरी पृथ्वी को भर दे, इतने बीज पैदा करता है। यह भी जीवन-आकांक्षा है।
तुम हैरान होओगे--कहीं तुमने यह पढ़ा न होगा, क्योंकि कहीं यह लिखा हुआ नहीं है अब तक--कि जैसे ही कोई व्यक्ति सुख-दुख के बाहर हो जाता, केवली हो जाता, उसके भीतर वीर्य का पैदा होना बंद हो जाता है। वही ठीक ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकता है, जिसके भीतर वीर्य का पैदा होना बंद हो गया।
लेकिन वह तभी हो सकता है वीर्य का पैदा होना बंद जब सारी आकांक्षा जन्म की खो गई हो। जब तक जन्म की आकांक्षा है कि मैं बचूं, किसी भी रूप में बचूं; यह शरीर खो जाए तो कोई हर्ज नहीं; दूसरे शरीर में रहूं, लेकिन रहूं; जीवेषणा जब तक है, तब तक शरीर पैदा करता जाता है वीर्यकणों को।
इधर शरीर भी जीएगा और उधर तुम्हारी आत्मा भी वासनाग्रस्त, नये गर्भ
की खोज करती रहेगी। तुम तभी तक भटकोगे, जब तक तुम सुख और दुख के साथ अपने को एक समझे हो। तब तक तुम पूरी कोशिश करोगे कि दुख न हो और सुख हो। और मैं और-और सुख की यात्रा करूं, और-और सुख खोजूं। तुम्हारे सपने तुम्हें नये जन्मों में ले जाएंगे।
"उस कैवल्य अवस्था में आरूढ़ हुए योगी का अभिलाषा-शून्यता के कारण जन्म-मरण का पूर्ण क्षय हो जाता है।"
वह जन्मता नहीं। और जो जन्मता नहीं उसके मरण का कोई कारण नहीं है। जन्मोगे तो मरोगे। जन्म का ही दूसरा पहलू मरण है। वह जन्म के ही सिक्के पर एक तरफ जन्म और दूसरी तरफ मृत्यु है। इधर तुम जन्मे, उधर तुम मरोगे। लेकिन जिसे मृत्यु से मुक्त होना है, उसे जन्म से मुक्त होना पड़ेगा।
मृत्यु से तो सभी मुक्त होना चाहते हैं, लेकिन जन्म से कोई मुक्त नहीं होना चाहता। यही हमारी कठिनाई है। दुख से सभी मुक्त होना चाहते हैं, सुख से कोई मुक्त नहीं होना चाहता। जिस दिन तुम सुख से मुक्त होना चाहते हो, उस दिन तुम्हारे जीवन में क्रांति घटी, उस दिन तुम धार्मिक हुए।

मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा समुद्र की यात्रा पर गया। पहली ही दफा जहाज में सवार हुआ। बड़ा बीमार हो गया--उलटी, वमन, चक्कर! और एक दिन सुबह इतना घबरा गया, तूफान भयंकर था और जहाज करवटें ले रहा था और वह लोट रहा था, उसने अपनी पत्नी को कहा कि सुन, सारी संपत्ति तेरे नाम से लिख छोड़ी है और मेरी वसीयत बैंक में रखी है। सब हिसाब-किताब वहां है। और मुझे दूसरे किनारे पर दफना देना--चाहे मैं मरूं या न! क्योंकि जिंदा या मुर्दा, यह यात्रा अब दुबारा नहीं कर सकता हूं। जिंदा या मुर्दा, यह यात्रा अब दुबारा नहीं कर सकता हूं। तू मुझे वहीं दफना आना। और बाकी सब बैंक में है, वह तू सम्हाल लेना।
जिस दिन तुम्हें जिंदगी ऐसी बेहूदी दिखाई पड़ने लगेगी, यह पूरी यात्रा इतनी व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगी कि जिंदा या मुर्दा, तुम कोई भी हालत में इस यात्रा पर वापस न आना चाहोगे, जिस दिन तुम्हें यह जिंदगी मृत्यु से बदतर दिखाई पड़ने लगेगी--और यह है--उसी दिन तुम्हारे जीवन में क्रांति होगी। अभी तुम धर्म में भी उत्सुक होते हो तो वह भी सुख की ही खोज के लिए। इसलिए तुम्हें धर्म कभी मिल नहीं पाता।
धर्म में तुम्हारी उत्सुकता वास्तविक तभी होगी, जब तुम इस जीवन की यात्रा पर किसी भी स्थिति में जाने को राजी नहीं हो। तुमने सब देख लिया और तुमने सब व्यर्थ पाया। तुमने सुख देख लिए और पाया कि वे भी पीड़ा से भर जाते हैं। और तुमने दुख देख लिए और पाया कि वे भी पीड़ा से भर जाते हैं। दुख तो दुख है ही, यहां सुख भी दुख है। यहां जो मीठा लगता है, वह भी जहर है। यहां जहर तो जहर है ही, अमृत की जो घोषणा है, वह भी जहर को ही छिपाने की तरकीब है। जिस दिन तुम्हें सब व्यर्थ हो गया, सब बाहर है और सब सारहीन है, उसी दिन तुम्हारे जीवन में धर्म का जन्म होगा।
ध्यान रहे, अपने मन में साफ-साफ खोजना कि तुम धर्म में उत्सुक सुख के लिए हो? तो तुम उत्सुक ही नहीं हो। धर्म में उत्सुकता तो सच्ची तभी है जब तुम शांति के लिए--सुख के लिए नहीं--शांति के लिए उत्सुक हो। सुख भी व्यर्थ, दुख भी व्यर्थ; अब तुम दोनों से छुटकारा चाहते हो।
"उस कैवल्य अवस्था में आरूढ़ हुए योगी का अभिलाषा-शून्यता के कारण... ।"
अब उसकी कोई वासना नहीं। अब वह किसी यात्रा पर नहीं जाना चाहता। यात्रा मात्र व्यर्थ हो गई।
"... जन्म-मरण का पूर्ण क्षय हो जाता है।"
"ऐसा भूतकंचुकी, विमुक्त पुरुष परम शिवरूप हो जाता है।"
वही ब्रह्म है, वही परमात्मा है। ऐसा भूतकंचुकी--यह शब्द बड़ा प्यारा है। भूतकंचुकी का अर्थ हैः पांचों तत्व, जिनसे शरीर बना है, उसके लिए वस्त्र जैसे हो गए, भूत कंचुक हो गए। जिसके लिए शरीर, मन--क्योंकि दोनों ही पंच भूतों से बने हैं; यह स्थूल पंच भूतों से जो बना है वह शरीर और जो सूक्ष्म पंच तन्मात्राओं से बना है वह मन, ये दोनों एक के ही सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं--ये दोनों ही जब वस्त्रों जैसे हो गए, और उसने अपने को पहचान लिया जो इन वस्त्रों के भीतर छिपा है; जिसने प्याज को पूरा खोल लिया; भीतर के शिवत्व को, शून्यत्व को जान लिया; ऐसा भूतकंचुकी, विमुक्त पुरुष स्वयं परमात्मा हो जाता है।
हम इस देश में किसी एक परमात्मा में भरोसा नहीं करते कि कोई एक परमात्मा आकाश में बैठा है, वह सब को चला रहा है। नहीं; हम इस देश में, सभी जीवन-यात्राओं का अंत परमात्मा में होता है, ऐसा भरोसा करते हैं। यहां सभी खिलते-खिलते परमात्म-रूप हो जाते हैं। परमात्मा कोई स्थिति नहीं है, सभी का भविष्य है। इस बात को थोड़ा गहराई में समझ लो।
दुनिया में दूसरे धर्म हैं, जो भारत के बाहर पैदा हुए--ईसाइयत, यहूदी, इसलाम, वे तीन बड़े धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। तीन बड़े धर्म भारत में पैदा हुए--हिंदू, बौद्ध, जैन। इन दोनों के बीच एक बुनियादी फर्क है। और वह बुनियादी फर्क है कि यहूदी, ईसाई और इसलाम परमात्मा को पीछे देखते हैं-- आदि कारण की तरह--उसने जगत को बनाया। हम परमात्मा को आगे देखते हैं--अंतिम फल की तरह। इससे बड़ा फर्क पड़ता है। परमात्मा भविष्य है, अतीत नहीं। परमात्मा बीज नहीं है, फूल है। इसलिए हमने बुद्धों को फूल पर बिठाया है-- कमल का फूल, सहस्रदल जिसके खिल गए हैं।

अगर परमात्मा पीछे है, दुनिया को उसने बनाया, तो वह एक है। और तब दुनिया एक तरह की तानाशाही होगी। और इस दुनिया में मोक्ष घटित नहीं हो सकता। क्योंकि स्वतंत्रता कैसी जब तुम बनाए गए हो? बनाए हुए की कोई स्वतंत्रता होती है? जिस दिन बनाने वाला मिटाना चाहेगा, मिटा देगा। जब वह बना सका तो मिटाने में क्या बाधा पड़ेगी? तब तुम खेल-खिलौने हो, कठपुतलियां हो। तब तुम्हारी आत्मा और स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।
इसलिए हम परमात्मा को स्रष्टा की तरह नहीं देखते, हम परमात्मा को अंतिम निष्पत्ति की तरह देखते हैं। वह तुम्हारा अंतिम विकास है। तो परमात्मा विकास का प्रथम चरण नहीं, अंतिम शिखर है। वह गौरीशंकर है। वह कैलाश है। वह आखिरी शिखर है जहां सभी चेतनाएं अंततः पहुंच जाएंगी; जिस तरफ सभी की यात्रा चल रही है। देर-अबेर सभी को वहां पहुंच जाना है। तुम रोज-रोज हो रहे परमात्मा हो।
तो परमात्मा कोई एक घटना नहीं है जो घट गई; परमात्मा एक प्रवाह है जो प्रतिपल घट रहा है। परमात्मा प्रतिक्षण हो रहा है। वह तुम्हारे भीतर बढ़ रहा है। तुम परमात्मा के गर्भ हो।
इसलिए यह शिव-सूत्र पूरा होता है इस अंतिम बात पर। यहीं सारे शास्त्र पूरे होते हैं। तुमसे शुरू होते हैं, परमात्मा पर पूरे होते हैं। तुम जैसे अभी हो, वह पहला चरण; तुम जैसे अंततः हो जाओगे, वह अंतिम चरण। बीज की तरह तुम, वह तुम्हारा भटकाव; वृक्ष की तरह तुम जब खिल जाओगे अपनी समग्रता में, वह तुम्हारी निष्पत्ति, वह तुम्हारा फुलफिलमेंट, वह तुम्हारा आप्तकाम, सब पूरा हो गया।
फूल जब खिलता है तो वृक्ष के प्राण पूरे हो गए। उसके खिलने में वृक्ष
ने अपनी पूरी सुगंध पा ली। वृक्ष जिस चीज के लिए पैदा हुआ था, वह घटित हो गया। फूल के खिलते के साथ वृक्ष एक नृत्य से भर जाता है। उसका रोआं-रोआं पुलकित है। वह व्यर्थ नहीं गया; सार्थक हुआ, फलीभूत हुआ; सुगंध, सौंदर्य उसमें खिल गए!
और जब एक वृक्ष एक फूल के खिलने पर इतना आनंदित होता है, जो कि क्षण भर टिकेगा और गिर जाएगा, जो फूल अभी खिला और सांझ के पहले मुरझा जाएगा, तो कितना आनंद है जब कोई वर्द्धमान महावीर होता है--जब फूल खिलता है; जब कोई गौतम सिद्धार्थ बुद्ध होता है--जब फूल खिलता है! और ऐसा फूल जो कभी नहीं मुरझाएगा! उस फूल को ही हम शिवत्व कहते हैं। वही परमात्मा है।
मंत्र का उपयोग करना, ताकि तुममें जो व्यर्थ है, वह कट जाए; और तुममें
जो सार्थक है, वह निखर आए। मंत्र का उपयोग करना, जिससे कि जैसे तुम हो, वह टूट जाए, बिखर जाए भूमि में; और तुम जो हो सकते हो, वह अंकुरित हो जाए। तुम्हारे भीतर परमात्मा को छिपाए तुम चल रहे हो; सम्हाल कर चलना, सावधानी से चलना। जैसे गर्भिणी स्त्री सम्हल कर चलती है, वैसा साधक सम्हल कर चलता है। क्योंकि तुम्हारे ही जीवन का सवाल नहीं है, तुम्हारे भीतर सारे अस्तित्व ने दांव लगाया है। सारा अस्तित्व तुम्हारे भीतर खिलने को आतुर है। उत्तरदायित्व बहुत बड़ा है! बहुत सावधानी से, सम्हल कर, होशपूर्वक एक-एक कदम रखना, क्योंकि तुमसे परमात्मा का जन्म होना है।
आज इतना ही।